निर्देशन के मूल तत्त्व

लेखक

डा० (श्रीमती) इन्दु दवे

एवं

डा० अरविन्द फाटक

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पिछले १९६९ में पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गयी है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चन्दनमल बैद
अध्यक्ष

हमारे विद्यार्थियो को
जोकि इस पुस्तक सृजन
के मूल प्रेरणा-स्रोत
रहे हैं।

प्राक्कथन

बीसवी शताब्दी की शैक्षिक विचारधारा म दो आग्रह स्पष्टरूपेण उभरते हुए दृष्टिगोचर होते हैं–और वे हैं अन्वेषित तथ्यों का व्यावहारिक प्रगति प्रणालियों म अनुप्रयोग तथा सैद्धान्तिक चिन्तन का प्रकार्यात्मिक कार्य-योजनाओं म सपुष्टिकरण। इसी प्रकार्यात्मक अनुप्रयोग का एक प्रतीक-पुष्प निर्देशन तथा उपबोधन के नूतन विज्ञान का स्वरूप लेकर शिक्षा के विकासमान उपवन म प्रस्फुटित हुआ। इसके सरस सौन्दर्य-सौरभ ने शिक्षाविदों का अवधान आवर्षित किया तथा उन्होंने इसे अपने कार्य-कानन म सहर्ष स्वीकृति भी प्रदान की। किन्तु आवश्यक पोषण के अभाव म इसका नवजात कलेवर कुम्हलाता सा प्रतीत होता है। वास्तविकता तो यह थी कि इस नूतन कुसुम के मूलभूत स्वरूप तथा इसके विशिष्ट भरण पोषण के विषय म इन कार्यकर्त्ताओं को पर्याप्त अभिज्ञता नही थी। अतएव इस पुस्तक के लेखकों ने आवश्यक समझा कि निर्देशन-उपबोधन के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भारत म इसके समुचित विकास तथा इसके द्वारा शिक्षा के समुन्नयन के विषय म कुछ प्रकार्यात्मक प्रयास किया जावे। प्रस्तुत पुस्तक जोकि हमारे कई वर्षों के अध्ययन अध्यापन क्षेत्रीय कार्य तथा शोध अनुभव पर आधारित है इसी प्रयास का साकार परिणाम है।

आदिकाल से मानव जीवन के विविध आयामों म अन्तरग रूप से घुले मिले निर्देशन के मूल महत्त्व को उभारते हुए हमने सर्वप्रथम उसके विकासात्मक स्वरूप का एक समाहारी चित्र प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात विविध वर्तमान विषयों से उसके मूलाधारों का सतर्क सम्बन्ध-स्थापन करके आधुनिक युग के विभिन्न क्षेत्रों म इसकी सहज सर्वव्यापिता दर्शाई है। इस सबल सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ म वास्तविक निर्देशन सेवाओं के परिगम तथा एक प्रकार्यात्मक निर्देशन-कार्यक्रम के संगठन की रूपरेखाओं को अधिक अर्थपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस समग्र चित्र के स्पष्टीकरण के पश्चात भी निर्देशन के क्षेत्रीय कार्मिक की कतिपय कार्य जिज्ञासाएं हो सकती हैं यथा व्यक्ति के अध्ययन हेतु किस प्रकार की प्रविधियां निर्मित की जावें? उनका प्रयोग किस प्रकार किया जावे? व्यक्ति को सर्वांगीण समजन हेतु सहायता देने के लिए किस प्रकार की पर्यावरणीय सूचनाएं किन साधनों द्वारा कितने स्तरों पर संकलित की जावें? तत्पश्चात उनका विधिवत प्रसारण किस भांति किन प्रविधियों द्वारा हो? ऐसे कितने ही व्यावहारिक प्रश्न हो सकते हैं जोकि कार्यकर्त्ता के मानस म उलझन पैदा करते हैं। अध्याय व ७ म इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान करने का प्रयत्न किया गया है।

किसी भी वनानिक-तकनीकी क्षेत्र म उपरोक्त सभी प्रकार की प्रवृद्धताए प्राप्त कर लेन पर भी एक मौलिक आवश्यकता जोकि क्षेत्रीय क्रियान्विता को प्रभावित करती है वह है कायकर्त्ताओ के विधिवत प्रशिक्षण तथा उनके अपेक्षित कार्यों के विषय म स्पष्टता की। अतएव हमन निर्देशन के विविध स्तरीय कार्मिको के वनानिक प्रशिक्षण तथा भारत म निदशन अभिकरणो के कायकलापो के सम्बध मे भी सूचना तथा सुझाव दिये हैं।

समूचा पुस्तक के प्रकार्यात्मक पट के अनुरूप ही अन्तिम अध्याय म भारतीय उच्चतर महाविद्यालय के लिये एक प्रस्तावित निर्देशन-कायक्रम का नचीनी रूप रेखा को प्रश्रेषित किया गया है।

मूलरूप से तो पुस्तक एम एड तथा बी एड की कक्षाओ म निर्देशन तथा उपबोधन म विशेषता अध्ययन करने वाले छात्रो के लिए लिखी गई है। वस्तुत इस नूतन वनानिक विषय पर हिन्दी म पुस्तक लिखने हेतु उनका सतत आग्रह इस प्रयास का मूलभूत प्रेरक रहा है। किन्तु पुस्तक की अन्तवस्तु का चयन तथा प्रस्तुतिकरण इस ढग स किया गया है कि निर्देशन के विभिन्न प्रशिक्षण-केन्द्रो म अध्ययन अभ्यास करन वाले प्रशिक्षार्थी पाठ्यवस्तु के रूप म इसका सफल उपयोग कर सकते हैं।

जसाकि हमन बारम्बार बल दिया है पुस्तक का ध्येय केवल सद्धान्तिक प्रशिक्षण तक ही सीमित न रह कर प्रकार्यात्मक प्रायोजनाओ को प्रेरित करने तक विस्तृत हुआ ह। तदनुसार इसके आयोजन-लेखन म इस बात का बराबर ध्यान रखा गया है कि निदशन के क्षेत्रीय कायकर्त्ताओ की प्रकार्यात्मक राहो को भी यह पुस्तक एक वास्तविक निर्देशन-आलोक प्रदान करती रहे। जहाँ एक ओर हमार निदशन-ब्यूरोज तथा एम्प्लायमेन्ट एक्सचेन्ज म काय करने वाले कार्मिको को यह चिन्तन के लिये सामग्री द सकती है वहाँ हमारी यह भी तीव्र अभिलाषा है कि माध्यमिक शाला स सम्बन्धित शिक्षाविदो को अपनी शालाओ मे व्यावहारिक निर्देशन-सेवाए प्रारम्भ करन हेतु प्रेरणा-प्रवाण प्रदान करे। यदि राजस्थान शिक्षा-विभाग इस पुस्तक की सिफारिशो के अनुकूल कतिपय शालाओ म ही एक न्यूनतम निदशन-काय प्रारम्भ करने की सुविधाए प्रदान करे तो हम अपने प्रयास को एक बहुत बडी सीमा तक सफल मानेंगे। साथ ही हम वतमान क्षेत्रीय कायकर्त्ताओ स हमारे सुझावों के प्रति अनुक्रियाए प्राप्त करके भी लाभान्वित होना चाहेंगे।

पुस्तक-सृजन का मूल श्रेय तो जसे पहले ही कह चुके हैं हमार निष्ठावान विद्यार्थियो को ही जाता है। अत हम सवप्रथम उन्हा के प्रति अपना आभार प्रकाशित करना चाहगे। साथ ही वास्तविक तथ्य यह भी है कि यदि राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रान्तीय भाषाओ म तकनीकी साहित्य-सृजन का उद्देश्य लकर हमे यास-प्रेरणा प्रदान न करती तो कदाचित यह ग्रन्थ इतना शीघ्र प्रकाशन-

प्रकाश न देख पाता। अतएव इस अवसर पर हम अकादमी के प्रति अपना अनुभूत आभार व्यक्त करते हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोई भी मौलिक पुस्तक का सृजन करने में भी कई विद्वानों के लिखित तथा व्यक्त विचार लेखक के प्रेरणाधार तथा पुस्तक के पुष्टि पदार्थ बनते हैं। हमने भी हमारे मौलिक विचारों के विकास में भी कई राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विद्वजनों के चिन्तन को चेतन अचेतन रूप से आत्मसात किया है। पुस्तक की समाप्ति पर हम उन सभी को हृदय से धन्यवाद देना चाहेंगे।

नूतन विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने पर भी उन्हें अधिक सजीव तथा प्रभावशाली बनाने हेतु कई बार चित्रों आरेखों तथा सारणीयों की आवश्यकता होती है। हमारे चिन्तन को इस प्रकार का मूर्त रूप देने में श्री कयूम अली बोहरा ने जिस अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। हम इस कार्य के लिए उनके कृतज्ञ हैं। मुद्रित होने के पूर्व पाण्डुलिपि का समयानुसार टंकन समाप्त करना भी आजकल के वर्धमान सजटिल काल में एक समस्या है। श्री शंकर शर्मा ने बड़ी ही दक्षतापूर्वक यह कार्य इस व्यस्त समय में सम्पन्न किया जबकि वे एम. एड. के शोध प्रबन्ध अथवा ग्रीष्मावकाश की कार्य संगोष्ठियों सम्बन्धी टंकन के भार से दबे हुए थे। हम उन्हें इसके लिए हृदय से धन्यवाद देते हैं।

हमारा अन्तिम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण आभार है अपने कुटुम्ब के सदस्यों के प्रति। पुस्तक के लेखन को समयानुसार सम्पन्न करने हेतु शाश्वत कार्यरत रहते समय न केवल उन्होंने कई निजी उत्तरदायित्वों में सहयोग का हाथ बटाया अपितु सतत प्रोत्साहन देकर कार्य पूर्ण करने में निरंतर प्रेरणा प्रदान की।

अपने विशेषता-क्षेत्र में यह मौलिक पुस्तक लिखते समय हमारी एक मूलभूत कामना यही है कि निर्देशन तथा उपबोधन का क्षेत्र अपना सही स्वरूप लेकर भारतीय शिक्षा जगत में विकसित हो।

उदयपुर
दिनांक ३१. १. १६७३

इन्दु दवे
अरविन्द फाटक

विषय सूची

१

विषय-प्रवेश

जीवन का मार्ग सादा नहीं है। संसृति की इन ऊँची नीची टेढ़ी मेढ़ी राहों पर सतत संसरण करने वाले समस्त जीवधारियों के लिये समुचित मार्ग का ज्ञान प्राप्त करना कदाचित सदैव से ही एक सहज प्रश्न रहा होगा। निर्देशन का शास्त्रीय श्रीगणेश भी होता है, ऐसा लिखना। अतएव आधुनिक युग की एक नवीनतम विचारधारा तथा नूतनतम कार्यक्षेत्र निर्देशन को मानव-जीवन का एक चिर पुरातन प्रश्न कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। मानव के आदि-काल से तथा कदाचित उससे भी पूर्व जीवविकास-सोपानी पर स्थित निम्नतर जीवधारियों का जीवनयापन हेतु की जाने वाली पर्यावरणीय अन्तक्रियाओं में भी वयस्क तथा परिपक्व प्राणियों द्वारा अपेक्षाकृत अपरिपक्व जातियों को मार्गदर्शन देना सम्पूर्ण जीवन की ही एक स्वाभाविक प्रक्रिया रही होगी।

उच्चस्तरीय जाति में भी यह सहज जीव-लक्षण स्वाभाविक रूप से ही विकसित हुआ। किन्तु एक बुद्धिजीवी प्राणी होने के कारण यह लक्षण केवल उसके मौलिक पर्यावरण तक ही सीमित न रहा। शैशव काल में तो अपनी मौलिक आनुरक्षिक (अनुरक्षण-सम्बन्धी) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी अल्पवयस्क मानव को न केवल अपने वयस्कों पर कई मात्रा में निर्भर रहना पड़ता है अपितु आत्मनिर्भरता की राह पर अग्रसर होने में उनका निर्देशन भी लेना पड़ता है। किन्तु जैसा कि कह चुके हैं मानव एक उच्चस्तरीय बुद्धिजीवी प्राणी है। अतएव निम्नतर जीवों के सदृश ही अपनी मौलिक आवश्यकताओं से उद्भूत प्राथमिक प्रश्नों के अतिरिक्त भी उसे कई प्रकार की समस्याएं व्यथित करती रहती हैं। उसके विकास क्रम के साथ-साथ उसकी मौलिक समस्याओं का स्वरूप भी मानो अनवगुण्ठित होता जाता है। जीवन के प्राथमिक काल में तो उसकी प्राथमिक क्रियाएं यथा खाना पीना चलना आदि भी अन्य जीवों के समान किसी वयस्क प्राणी की सहायता से सम्पन्न होती हैं। किन्तु शनैः शनैः उनके स्वरूप में भी एक विवेकपूरित अन्तर दृष्टिगोचर होने लगता है। मैय्या की अंगुली थाम कर चलना सीखने वाला बालक कुछ समय पश्चात विविध मार्गों की विभिन्न दिशाओं सम्बन्धी जिज्ञासाएं प्रकट करने लगता है। अपनी प्राथमिक आवश्यकता भूख को माँ की ममतामयी गोद में शमन करने वाला शिशु अपने विकास के मार्ग पर चलते हुए प्यास भूख तथा ऐसी कई अन्य मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नाना प्रकार के प्रश्नों से जूझता है। ऐसे प्रश्नों जिज्ञासाओं तथा सम्बन्धित

समस्याओं का अस्तित्व विकासमान मानव के गतिशील जीवन की एक सहज वास्तविकता है।

अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के नाना पक्षों में तथा अपने बहुमुखी पर्यावरण के कई क्षेत्रों में कई प्रकार की समस्याएं उसके सम्मुख आती हैं। अतएव जीवन के असीम विस्तार के अनुरूप ही इनके स्वरूपों में भी अनन्त विभिन्नता होती है। एक व्यक्ति इसलिये व्यथित हो सकता है कि उसकी दृष्टि कतिपय अनुपलब्धेय उद्देश्यों पर अटकी हुई है किन्तु कदाचित वह इसलिये भी सम्भ्रान्त हो सकता है कि उसके निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने हेतु एक से अधिक राहें हैं तथा वह उनमें से चयन नहीं कर पा रहा है। कोई व्यक्ति अपनी अनरक्षण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने पर भी एक अपर्याप्तता की दुःखदायी भावना से निरन्तर पीड़ित होता रहता है। अपने दैनन्दिन कार्यकलापों की व्यवधान रहित पूर्ति करते हुए भी उसकी कुशाग्रबुद्धि उच्चतर चुनौतियों के स्फुरण हेतु मचलनी-सी रहती है। एक समय मानव अपनी आकांक्षाओं के अनुकूल साधन-सुविधाओं के अभाव के कारण चिन्तित रह सकता है पारस्परिक सम्बन्धों की सन्तुष्टि हीनता से व्यवस्थित हो सकता है और कभी-कभी किसी निष्फलीकी मानसिक द [illegible] से [illegible] अनमना रह सकता है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि बुद्धिजीवी मानव के बहुआयामी जीवन को नाना प्रकार की समस्याएं विचलित कर सकती हैं।

यहां यह ध्यान रहे कि इस प्रकार की समस्याओं का अस्तित्व मानव में दुर्बलता का द्योतक हो यह आवश्यक नहीं। वस्तुतः कई बार समस्याओं की संवेदना ही उन्नति की सूचक हो सकती है। किसी कमी की अनुभूति ही व्यक्ति को वह कमी पूर्ण करने की ओर प्रेरित करती है। अतएव मानव जीवन में जिन समस्याओं का हमने उदाहरण दिया है वह उसके जीवन की एक सहज वास्तविकता के रूप में दिया है। यदि यों कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि बुद्धिजीवी होने के नाते ही वह इस प्रकार की समस्याओं का अनुभव भी कर सकता है। जैसाकि प्रारम्भ में ही कह चुके हैं—जीव विकास मापनी के उच्चतर बिंदु पर स्थित होने के कारण उसका यह विशेषाधिकार है कि वह अपने जीवन में इस प्रकार की कमियों से व्यथित होकर उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न करे। विवेक बुद्धि सम्पन्न होने के कारण ही वह जिज्ञासा से युक्त होता है—और जिज्ञासा ज्ञान की जननी है। कहने का तात्पर्य यह कि समस्याओं के अस्तित्व को किसी निषेधात्मक दृष्टिकोण से न देखा जावे यह हमारा वाचन से आग्रह है। यदि शोधकर्ता किसी समस्या से पीड़ित न होता तो उससे सम्बन्धित ज्ञान सूचनाएं एकत्रित करने हेतु क्रियाशील भी न हो सकता। प्रकृति पर मानव की अभूतपूर्व विजय के मूल में उसके अनन्त प्रश्न रहे हैं और इन प्रश्नों का समाधान करने में उसने किसी भी प्रकार की कठिनाइयों की परवाह नहीं की है। चन्द्रमा के स्वरूप की जिज्ञासा का शमन करने में उसने अपने जीवन की बाजी लगा दी है। जो व्यथा पीड़ा प्रश्न जिज्ञासा समस्या—इन शब्दों को हम

बुद्धिजीवी मानव के एक सहज जीवन सत्य के रूप म प्रस्तुत कर रहे हैं। किसी नए स्थान पर पहली बार पहुँच कर उसके विविध स्थलो के सम्बध म जिज्ञासा व्यक्त करना उन स्थानो तक पहुँचने के मार्गों के सम्बन्ध म प्रश्न पूछना ये सब जिस प्रकार जीवन के सामान्य अनुभव हैं उसी प्रकार अपने बौद्धिक भावात्मक सवेगात्मक आयामो के विकास मार्गों मे कई जिज्ञासाओ से युक्त होना भी मानव का विशेषाधिकार है। किन्तु समस्याओ के सहज अस्तित्व की इस स्वीकृति के साथ ही एक अधिक महत्त्व पूर्ण वास्तविकता यह है कि समस्या की सजटिलता एकक व्यक्ति की प्रकृति के अनु रूप परिवर्तित होती रहती है। मित्र न बना सकने के कारण एकाकी होना जहा एक व्यक्ति के लिए सतत हीनता-भावना का प्रेरक हो सकता है वहा पर व्यक्तियो के बडे समूह मे अपने आपको पाना ही अन्य व्यक्ति मे निरन्तर व्यग्रता उत्पन्न कर सकता है। साथ ही एक सी परिस्थिति म भी दो व्यक्तियो को समान अनुभूति हो यह भी आवश्यक नही। क्रौंच की पीडा यदि प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से व्यथित कर सकती होती तो न जाने कितने वाल्मीक अभी तक उत्पन्न हो गए होते। कहने का तात्पर्य यह कि समस्या की सजटिलता एकक व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप परि वर्तित होती रहता है। यो सामान्यत हम मोटे रूप से चाहे स्वीकार कर सकते हैं कि अमुक समस्या सरल है-अथवा अमुक कठिन। किन्तु अन्ततोगत्वा समस्या की सजटिलता तथा उसकी अनुभूति की गहनता दोनो ही एकक व्यक्ति की विशिष्ट पृष्ठभूमि उसके जीवन अनुभव तथा उसके विकसित सवेगो के अनुसार अनुबधित होती है।

उक्त विवेचनो के आधार पर निम्न बिन्दु स्पष्ट होते हैं —

—मानव जीवन म समस्याओ का होना एक सामान्य वास्तविकता है।

—बहुपक्षी मानव के बहुआयामी जीवन मे पाई जाने वाली समस्याओ म भी अगणित वभिन्नय हो सकता है।

—समस्या का स्वरूप तथा उसकी सवेदना की गहनता एकक व्यक्ति की प्रकृति तथा पृष्ठभूमि द्वारा अनुबधित होती है।

इन बिन्दुओ के सहज अनुवर्तन म प्रश्न उठता है— मानव इस प्रकार की परिस्थितियो मे क्या करता है? जहा तक सामान्य अनुभव की बात है सर्वप्रथम तो वह स्वय ही अपने प्रश्नो का हल ढूढने का प्रयास करता है। अपने आपम अपर्याप्त होने पर वह वयस्को से समाधान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है मित्रो से विचार विमर्श करता है सम्बन्धित साहित्य म शोध करता है अथवा किसी विशेषज्ञ से सूच नाए प्राप्त करता है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि औपचारिक अथवा अनौपचा रिक रूप से अपनी समस्या के समाधान हेतु प्रयत्नशील रहना मानव जीवन का सहज उपक्रम है। स्वाभाविक ही है कि इस सहज उपक्रम का स्वरूप भी संसृति की वर्धमान सजटिलता के अनुरूप परिवर्तित होता गया। इस विकासमान सजटिलता के अनुवर्तन म ही आधुनिक निर्देशन के बीज खोजे जा सकते हैं। अत वर्तमान युग की इस

नवीन कहलाने वाली वैज्ञानिक कार्य प्रणाली का यह किस प्रकार तथा किन किन स्वरूपो मे प्रस्फुटन विकसन हुआ इसका विकासात्मक वर्धमान एवं शृंखलाबद्ध रूप में निम्न अनुच्छेदो म प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। इसी वर्धमान गाथा में ही कदाचित् यह भी देखा जा सके कि विशेषकर शिक्षा के साथ निर्देशन का सम्बन्ध कब क्यो तथा किस प्रकार स्थापित हुआ। शिक्षा-क्षेत्र के इस आधुनिक प्रयशिल अंग का सामान्यत मानव जीवन तथा विशेषकर शिक्षा के विकास क्रम मे क्या स्थान है यह जानने हेतु शिक्षा के इतिहास म निर्देशन के जन्म तथा क्रमिक विकास की परिस्थितियो पर एक विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा।

मानव-जीवन के विकास क्रम मे निर्देशन का वर्धमान स्वरूप

जीवन शिक्षा तथा निर्देशन के पारस्परिक सम्बन्ध का एक प्राथमिक परिचय प्राप्त करने हेतु हम इस विकासमान गाथा को कुछ विशिष्ट भागो म विभाजित करके प्रस्तुत करेंगे।

(१) सरल समाज अनौपचारिक शिक्षा

यो तो शिक्षा के स्वरूप तथा कार्यों के सम्बन्ध म ही शिक्षा शास्त्री एकमत ही हो यह आवश्यक नही। अत शिक्षा की प्रकृति तथा लक्ष्यो से सम्बन्धित विभिन्न वादो के व्यूह म इस समय न उलझकर सामान्य रूप से स्वीकृत एक निर्विवाद तथ्य से हम यह विवेचन प्रारम्भ कर सकते हैं। साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा प्रक्रम का एक मौलिक उत्तरदायित्व है युग के सकलित ज्ञान तथा अर्जित अनुभवो का व्यवस्थित रूप से नूतन पीढी तक प्रेषण करना तथा इस प्रेषण द्वारा व्यक्ति को अपने वातावरण मे उपयुक्त समायोजन करने हेतु सामर्थ्य प्रदान करना। इसी प्रेषण के प्रभावस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार प्रारूपो मे वाछनीय परिवर्तन फली भूत किए जा सकते हैं। इन परिवर्तनो का मूल उद्देश्य ही है व्यक्ति को अपने सन्निकट स्वय तथा सजटिल पर्यावरण के सम्बन्ध मे प्रबुद्धता प्रदान करके उसे इन पर अधिक विवेकपूर्ण नियन्त्रण कर सकने योग्य बनाना इन्हें अपने विकास के अनुकूल मोड़ते हुए इनकी तथा अपने स्वय की शक्तियो का अधिकाधिक उपयोग कर सकना तथा इस प्रकार वैयक्तिक तुष्टि प्राप्त करते हुए सामाजिक उन्नयन को प्रेरित करना।

मानव के इतिहास का प्राथमिक काल वह था जबकि उसका पर्यावरण अत्यन्त ही सरल था उसम कोई पेचीदगियाँ नही थी। आदिम मानव को अपने इस सरल पर्यावरण म सफलता पूर्वक जीवनयापन करने हेतु जिन ज्ञान सूचना कला कुशलताओ की आवश्यकता होती थी वे सब उसे अत्यन्त ही स्वाभाविक रूप से समाज के वयस्को के साथ दिन दिन जीवन व्यतीत करने म ही प्राप्त हो जाया करती थी। जिस समाज म प्रकृति के मध्य उपलब्ध फलफूल अथवा निम्नकोटि के जीवों द्वारा क्षुधा का शमन हो सकता था तथा स्वाभाविक दैहिक बल के आधार पर आश्रय रक्षण यौन आदि की अन्य मौलिक आवश्यकताएं पूर्ण की जा सकती थी—वहा पर जीवन-यापन हेतु न तो बहुत अधिक सूचना-सामग्री की आवश्यकता पड़ती थी न

नाना भाति की कला कुशलताओं की । वस्तुत उस काल म कतिपय वयस्को द्वारा उनके अपरिपक्वो को प्रेषित की जाने वाली सामग्री का ही आकार प्रकार न तो बहुत विशाल था न उसका स्वरूप ही अत्यन्त सजटिल । साथ ही उसको प्रेषित करने की प्रक्रिया भी कठिन नही थी । जसाकि कह चुके हैं—समाज क वयस्को के साथ अपने दनन्दिन जीवन म ही मानव शिशु ये कुशलताए प्राप्त कर लेता था । जीविकोपाजन क व्यवसाय भी उस युग म इतने अल्प तथा सरल थे कि उनम विशिष्ट प्रशिक्षण के बिना केवल अपने वयस्को की क्रियाशीलता के अवलोकन तथा उन्हें काय मे सहायता ही व्यक्ति को उस व्यवसाय मे प्रकार्यात्मक रूप से निपुणता प्रदान कर देता था ।

(२) औपचारिक शिक्षा

शन शन समय की गति शोध की उन्नति तथा ज्ञान की प्रगति के साथ साथ ज्ञान-सूचना समूहो म अपूव वृद्धि होती गई । मानव का पर्यावरण अधिक सजटिल होता गया । या यो कहा जाय कि यह विवेकपूर्ण प्राणी अपने ससार पर अधिक नियत्रण प्राप्त करने हेतु उसके विविध आयामो क सम्बन्ध म परिवर्धित सूचना समूहो स सम्पन्न होने लगा । अतएव अपने बहुपक्षी पर्यावरण सम्बन्धी अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करता हुआ मानव विभिन्न प्रकार के ज्ञान-भेदो का सृजन करने लगा । स्वभावत इस ज्ञान राशि के ? का काय भी उत्तरोत्तर रूप से पेचादगी होता गया । जहा पुरातन सरल समाज म बालक अपने पुरखो के साथ स्वाभाविक रूप स जीवनयापन द्वारा ही अपने पर्यावरण मे समजन हेतु वाछनीय ज्ञान तथा आवश्यक सूचनाओ म सहज ही एक अनौपचारिक ढग स दीक्षित हो जाता था वहा अब इस परिवर्तित परिस्थिति मे समाज क वयोवृद्ध इस सहज उत्तरदायित्व के लिए अपने आपको असमथ अनुभव करने लगे । नूतन पीढ़ी के व्यक्ति भी आवश्यक ज्ञान सूचनाओ के इस प्राचीन स्रोत को अपर्याप्त समझने लगे ।

मानव समाज क स्थायित्व अनुरक्षण तथा अतिजीविता के लिये पर्यावरणीय ज्ञान सूचना-कुशलताओ का सचरण तो अनिवाय ही था । अतएव इस समस्या को हल करने हेतु कतिपय औपचारिक सस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ । सवप्रथम इन सस्थाओ का यह उत्तरदायित्व हुआ कि तत्कालीन वधमान ज्ञान सामग्री का निश्चित विषय भेदो क रूप म वर्गीकरण किया जावे जिससे निश्चित रूपरेखा के अनुसार उनम प्रगति होती रहे । तत्पश्चात् एक एक विषय क्षेत्रो की महत्ती सामग्री को भी प्रपरण हेतु अधिक व्यवस्थित करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ । परिणामस्वरूप प्रत्येक विषय क्षेत्र की वधमान सामग्री मे से विविध वय-स्तरो पर प्रपणाय नानाशा का चयन वर्गीकरण तथा व्यवस्थीकरण होने लगा । यह अपेक्षित था कि य नूतन शिक्षा-सस्थाए सरल व्यवस्थित क्रमिक तथा सन्तुलित रूप से वाछनीय ज्ञान सामग्री को अपक्षाकृत अपरिपक्व व्यक्तियो तक प्रेषित करके उन्हे तत्कालीन समाज म सुचारु रूप से समायोजित कर सकेंगी । यह है शिक्षण सस्थाओ के जन्म की कहानी या यो कहा जाव कि औपचारिक शिक्षा क प्रारम्भ होने की गाथा । समाज अनौप

चारिक शिक्षा से औपचारिक शिक्षण-व्यवस्था की ओर उन्मुख हुआ। मानव की शिक्षा-योजना में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ। निरन्तर बढ़ती हुई ज्ञान राशि में विषय-क्षेत्रों का तथा व्यवस्थित पाठ्यक्रमों की संख्या भी बढ़ती गई।

औपचारिक शिक्षण संस्थाओं में उपयुक्त उत्तरदायित्वों का उचित रूप से निर्वाह करने हेतु दक्ष व्यक्तियों की भी आवश्यकता पड़ी। अतएव व्यक्तियों को इन विशिष्ट क्षमताओं में दक्ष करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजनाएं बनने लगी।

इस युग में निर्देशन का स्वरूप आदिम युग की तुलना में कुछ अधिक विशिष्ट हुआ। व्यक्तियों को समाज के वयस्कों से जो स्वाभाविक मार्ग-दर्शन सहज रूप से दैनंदिन जीवन की नेमी क्रियाओं में ही प्राप्त हो जाया करता था उसके स्थान पर नियतकालीन पाठ्यचर्याओं के माध्यम से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा आवश्यक ज्ञान व्यवस्थित तथा क्रमिक रूप में प्रेषित होने लगा।

इस प्रेषण में प्रवृत्त करने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की बात अत्यन्त महत्व पूर्ण है। किसी भी युग में यदि मानव नवीन ज्ञान का केवल अर्जन करके ही अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री समझ ले तो कदाचित मानव जाति की अतिजीविता तथा अनुरक्षण को क्षतिमय की आशंका हो सकती है। नवीन ज्ञान का नूतन पीढ़ी तक संचरित किए बिना मानव-जाति प्रगति की राह पर अग्रसर नहीं हो सकती।

(२) विषयों का विशिष्टीकरण

उन्नति की राह पर अपने अगामी चरण बढ़ाते हुए मानव को विभिन्न विषयों का भी विशिष्ट क्षेत्रों में वर्गीकरण करने की आवश्यकता पड़ी। औपचारिक शिक्षण संस्थाओं के प्रारम्भिक काल में तो केवल विषय-क्षेत्रों में वर्धमान ज्ञान राशि का चयन सवर्गीकरण तथा व्यवस्थीकरण करने की ही समस्या थी। अपेक्षित था कि नवीन युग में रहने वाला व्यक्ति इन सभी विषयों की सूचनाओं से सम्पन्न होगा। भाषा गणित तथा विज्ञान के मौलिक विषयों का ज्ञान पर्यावरणीय नियन्त्रण तथा वयक्तिक दक्षता के लिये एक प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक था। शनै शनै अपने वैयक्तिक ज्ञान तथा पर्यावरणीय सूचनाओं से अधिक सम्पन्न होने के प्रक्रम में मानव ने इतिहास भूगोल के विषयों का सृजन आयोजन किया। तत्पश्चात आवश्यकतानुसार सामान्य विज्ञान सामाजिकज्ञान आदि भी अनिवार्य विषय क्षेत्रों के रूप में विकसित होते गए। अब अपने पर्यावरण में दक्षतापूर्वक मनोनुकूल जीवन व्यतीत करने हेतु व्यक्ति के लिये इन मौलिक विषयों का व्यवस्थित ज्ञान अनिवार्य-सा हो गया तथा यह व्यवस्थित रूप से यह ज्ञान औपचारिक शिक्षण-संस्थाओं में प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्राप्त करने लगा।

किन्तु इसके पश्चात समाज के इतिहास में वह युग आया जिसे वैज्ञानिक तकनीकी युग का प्रारम्भ कहा जाता है। औद्योगिक क्रांति हुई विज्ञान की उन्नति

हुए ज्ञान का अभूतपूर्व विस्फोटन हुआ। इस अनन्त राशि का समावेश केवल मौलिक विषयों की परिधि में ही कर सकना सम्भव नहीं था। अतएव सामान्य विषयों के साथ विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों में कई विशिष्टीकरण होने लगे। इन विशिष्टीकरणों की पृष्ठभूमि में तत्कालीन औद्योगिक विकास भी था। औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप विशिष्ट व्यावसायिक क्षेत्रों का बढ़ना स्वाभाविक था और इन क्षेत्रों में कार्य करने हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण भी एक महती पूर्वावश्यकता थी। अतएव विषय क्षेत्रों में ही विषय-चयन के फलस्वरूप जो विशिष्टीकरण हो रहा था उसके अतिरिक्त भी नूतन कौशल्य-क्षेत्रों का सृजन विकास होने लगा। हम कह सकते हैं कि ज्ञान का यह वर्धन एवं विशिष्टीकरण मानव की निरन्तर वर्धमान जिज्ञासा तथा उत्तरोत्तर रूप से संगठित होते हुए समाज का प्रतिबिम्ब मात्र था। विविध क्षेत्रों तथा विषयों के सम्बन्ध में वर्धमान कलाओं-कुशलताओं के लिए उतने ही प्रकार के पाठ्यक्रम शिक्षक तथा शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकता हुई। ज्ञान राशि के अभूतपूर्व समूहों का उचित रूप से नतन पीढ़ी तक संचरण आधुनिक काल के प्रारम्भ में शिक्षा-क्षेत्र की एक सबल चुनौती रही।

(४) विशिष्ट निर्देशन की आवश्यकता

इस वर्धमान विशिष्टीकरण से उत्पन्न चुनौतियाँ केवल नूतन पाठ्यचर्याओं के आयोजन तथा शिक्षकों के विशेष प्रशिक्षण तक ही सीमित नहीं रहीं। एक सम्बन्धित समस्या अधिकाधिक रूप से दृष्टिगोचर होने लगी शिक्षार्थियों के क्षेत्र से। सर्व प्रथम तो अत्यन्त द्रुत गति से वर्धमान विषयों विषय-क्षेत्रों विशिष्टीकरणों के सन्दर्भ में यह व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं प्रतीत हुआ कि नई पीढ़ी का प्रत्येक व्यक्ति—नवीन विषय-क्षेत्रों का हर विशेषता में दीक्षित हो सके। किन्तु इस व्यावहारिक कठिनाई के साथ-साथ इस सन्दर्भ में एक तकनीकी समस्या भी शिक्षाविदों को उत्तरोत्तर रूप से व्यग्र करने लगी। यह अधिकाधिक अनुभव में आने लगा कि प्रत्येक व्यक्ति हर एक विषय क्षेत्र में निपुणता प्राप्त नहीं कर सकता। सभी विशिष्टीकरणों में तो प्रशिक्षण की योजना ही अव्यवहारिक थी किन्तु सामान्य ज्ञान के माने जाने वाले मूल विषयों में भी देखा गया कि व्यक्तियों की उपलब्धियों में पर्याप्त अन्तर होता है।

बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल उस विज्ञान के जन्म से सम्बन्ध रखता है जब मानव-व्यवहार सम्बन्धी इस प्रकार के वैज्ञानिक प्रश्न व्यवस्थित रूप से पूछे जाने लगे थे। अपने शैशवकाल में तो मनोविज्ञान भी इन प्रश्नों का उत्तर देने हेतु अनावश्यक रूप से वंशानुक्रम पर्यावरण के विवाद में उलझा रहा। उस समय शिक्षक का कार्य था शिक्षा देना उसका उत्तरदायित्व यहीं तक सीमित था। विद्यार्थी यदि ग्रहण करने में असमर्थ है तो बात उसकी जन्मजात दुर्बलता तक सीमित रख कर समाप्त कर दी जाती थी।

बुद्धि नामक शक्ति जिसको सीखने से सीधा सम्बन्ध माना जाता था भी एक सम्पूर्णरूपेण जन्मजात वरदान के रूप में ही देखी जाती थी तथा सीखने व समायोजन के आवश्यक प्रक्रमों में बुद्धि के अतिरिक्त और अन्य विशयकों के सम्बन्ध में मानव को बहुत अधिक सूचनाएं नहीं थी।

किन्तु शनैः शनैः ज्ञान राशि के वर्धन विषयों के विशिष्टीकरण तथा प्रत्येक व्यक्ति के हर क्षेत्र में समर्जित न हो सकने के फलस्वरूप जो जिज्ञासा शिक्षाविदों को उत्तरोत्तर रूप से व्यग्र करती रही वह थी— **कौनसा विषय किसके लिये ? कौनसा कार्य-क्षेत्र किस व्यक्ति के लिये ?**

इसी प्रकार के प्रश्नों में वैज्ञानिक निर्देशन के बीजांकुरों को खोजा जा सकता है। वैज्ञानिक निर्देशन के व्यवस्थित विकास का इतिहास तो अगले अध्याय में कहेंगे। यहां पर तो केवल मानव-जीवन तथा शिक्षा के विकास क्रम में निर्देशन के स्थान पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं। इस काल में ज्ञान के क्षेत्रों में वर्धन एवं कई विशिष्टीकरणों के संदर्भ में प्रत्येक व्यक्ति के लिये समुचित मार्ग-दर्शन का प्रश्न बारम्बार शिक्षा के क्षेत्र में उभरने लगा।

(५) मानव-अध्ययन का केन्द्र

मानव के इस विकास क्रम में वर्तमान युग को मानव अध्ययन का युग ही कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अभी तक तो प्रगतिगामी मानव अपने वातावरण पर उत्तरोत्तर विजय प्राप्त करने में ही दत्तचित्त था। विभिन्न विषय-क्षेत्रों का आविष्कार करते हुए उसने जल-थल-नभ तथा पाताल— किसी भी क्षेत्र का अन्वेषण बाकी नहीं रखा। जहां पर गगन के नक्षत्रों की गति का वह विश्वासपूर्वक गणन करने लगा वहां पर भूगर्भों में अवगुण्ठित खनिजों रत्नों के विषय में सफलतापूर्वक प्रागुक्ति करता गया। प्रकृति के कई विनाशकारी तत्वों को भी उसने अपनी सेवा में इस प्रकार मोड़ा कि विविध भांति की उर्जाएं उसकी अनुचरी बन उसमें नियन्त्रित होकर सुख समृद्धि का वर्धन करने लगी।

किन्तु महत्वाकांक्षी मानव को इस समय एक अभिलाषा अधिकाधिक रूप से चुनौती देने लगी और वह थी उसका स्वयं अपने सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान। यों सामान्य रूप से तो अपने स्वयं के स्वरूप-सम्बन्धी जिज्ञासा मानव की आदिम समस्या रही है। आदि ज्ञान-क्षेत्र दर्शन के माध्यम से उसने प्रारम्भ से ही अपने स्वयं का ज्ञान करना चाहा था। किन्तु यह दर्शन सामान्यतः चिन्तन मनन की व्यक्तिनिष्ठ पद्धतियों से ही होता था। विज्ञान की वस्तुनिष्ठ पद्धतियों द्वारा विश्व के नाना रहस्यों का उद्घाटन करते हुए मानव इन पुरातन उपागमों से अधिकाधिक असन्तुष्ट होता गया। प्रारम्भ में तो ज्योतिष हस्तरेखा वाचन आदि कूट विज्ञानों द्वारा ही वह अपने आपका भाग्य वाचन करके भविष्य सम्बन्धी प्रागुक्तियां करने का प्रयत्न करता रहा। शनैः शनैः उसके स्वयं तथा उसकी जाति के विकास से सम्बन्धित

विज्ञान-यथा समाज विज्ञान, मानव विज्ञान आदि माध्यम से भी मानव तथा मानव जीवन के किसी न किसी पक्ष की व्याख्या होने लगी। इधर विकासमान शरीर क्रिया विज्ञान उसके स्थूल स्वरूप को अधिकाधिक स्पष्ट करने लगा। मानव का नाना पक्षों से अध्ययन करने वाले इन विज्ञानों के विकास के साथ ही शनै शनै मनोविज्ञान भी अपने आपको अपने पैतृक विभाग दर्शन से मुक्त करके एक मानव के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करने के उद्देश्य से अपने को स्वतन्त्र रूप से विकसित करने लगा।

मनोविज्ञान के विकास में स्वयं इसके शरीर से मानव जीवन से सम्बन्धित कई शाखाओं उपशाखाओं का प्रस्फुटन हुआ और मानव उत्तरोत्तर रूप में अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बनने लगा। जहां विकासमान शरीर क्रिया विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान द्वारा उसने अपने शारीरिक विकास, वृद्धि, व्याधि पर नियन्त्रण प्राप्त किया वहां मनोविकार विज्ञान द्वारा वह अपने चेतन अचेतन मन की गति विधियों के सम्बन्ध में अधिक प्रबुद्ध होने लगा। इसलिये कहा जा सकता है कि जिन विज्ञानों को उसने जन्म दिया था उन्हें भी वह अनिवार्यतः अपने स्वयं के अध्ययन की ओर मोड़ने लगा।

मनोविज्ञान जो कि अब स्वतन्त्र रूप से मानव के व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था उसके व्यवहार के नियन्त्रण तथा प्रायुक्तिकरण में अधिकाधिक रुचि लेने लगा।

अपने स्वयं के सम्बन्ध की इस प्रबुद्ध स्थिति ने पर्यावरणीय विशिष्टीकरणों के साथ मिल कर मानव के समन्जन की प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बना दिया। कौनसा विशिष्टीकरण किसके लिये ? के जिस प्रश्न में निर्देशन का जन्म हुआ था उस प्रश्न का स्वरूप अब और भी कठिन हो गया। अब तक तो इस प्रश्न का उत्तर देने में विभिन्न विषय तथा कार्य क्षेत्रों का विशिष्ट ज्ञान सामान्यतः पर्याप्त था। मानव पक्ष से सम्बन्धित घटकों में उसकी बुद्धि का परिचय प्राप्त करना ही आवश्यक समझा जाता था। किन्तु अब मानव पक्ष के ही कई अधिक घटक स्पष्ट होने लगे तथा उसे मार्ग-दर्शन देने में इनका ज्ञान आवश्यक होने लगा। केवल मनोविज्ञान ने ही बुद्धि के अतिरिक्त स्वयं बुद्धि को भी प्रभावित करने वाले कई कारकों के सम्बन्ध में बताया वर्धमान ज्ञान राशि के संचरण के समय व्यक्ति की रुचि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता, चित्तप्रकृति आदि की भूमिकाएं स्पष्ट होने लगीं। मानव के पर्यावरणीय समायोजन में भी समाज विज्ञान और संस्कृति विज्ञान द्वारा कई सामाजिक सांस्कृतिक घटक स्पष्ट हुए। मानव का अपने विषय में यह ज्ञान इतना प्रचुर तथा बहुआयामी होने लगा कि व्यक्ति को ही पूर्णरूपेण समझ सकना एक चुनौती सा सिद्ध होने लगा। इस युग में उसके लिये मार्ग दर्शन के प्रक्रम को भी अधिक तकनीकी वैज्ञानिक स्वरूप धारण करना पड़ा।

(६) समाहार

मानव के विकास क्रम में निर्देशन के विवेचन का सारांश निम्न बिन्दुओं में प्रस्तुत किया जा सकता है तथा निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है (देखिए चित्र १)

आदिम मानव एक सरल समाज में रहता था। उस काल से जीवनयापन तथा सुख समन्जन हेतु अत्यन्त ही अल्प ज्ञान-सामग्री की आवश्यकता होती थी जिसे वह अपने वयस्कों के मध्य दैनंदिन रहते हुए अनौपचारिक रूप से प्राप्त करता था।

—पर्यावरणीय ज्ञान के वर्धन के साथ आवश्यक ज्ञान प्राप्ति के ये अनौपचारिक साधन अपर्याप्त सिद्ध हुए। फलस्वरूप औपचारिक शिक्षण संस्थाओं का जन्म हुआ जहाँ व्यवस्थित विषय-क्षेत्रों के माध्यम से वह आवश्यक ज्ञान कौशल्य प्राप्त करता रहा।

—ज्ञान की उन्नति तथा शोध की प्रगति के साथ सामान्य विषय क्षेत्रों की परिधियाँ भी अपर्याप्त सिद्ध होने लगीं तथा फलस्वरूप विषय-क्षेत्रों का विशिष्टीकरण होने लगा।

—कई विशिष्टीकरण होने से शिक्षाविदों को जो प्रश्न व्यग्र करने लगा वह था कौनसा क्षेत्र किस व्यक्ति के लिये ? प्रत्येक व्यक्ति के हर क्षेत्र में सफल न हो सकने के तथ्य ने इस प्रश्न को और भी अधिक गाम्भीर्य प्रदान किया। इसी प्रश्न के मूल में निर्देशन के बीज खोजे जा सकते हैं।

—वर्तमान युग में मानव अपने आप के सम्बन्ध में अधिक रुचि लेने लगा है। वह अधिकाधिक अपने स्वयं के अध्ययन का केन्द्र बनता जा रहा है। पर्यावरणीय सजटिलताओं के साथ-साथ उसके स्वयं से सम्बन्धित वर्धमान ज्ञान शिक्षाविदों के सम्मुख उसके मार्गदर्शन की नवीन चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहा है।

इन सामान्य विवेचनों के अनुवर्तन में अब शिक्षा तथा निर्देशन का सम्बन्ध हम अधिक विशिष्ट रूप से देख सकेंगे।

शिक्षा तथा निर्देशन

(१) परिस्थिति की संजटिलता

यों तो शिक्षा के स्वरूप तथा उद्देश्यों पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है। किन्तु प्रस्तुत अध्याय के प्रारम्भ में हमने शिक्षा का जो सर्वमान्य स्वरूप स्वीकार किया था उसी को इस विशिष्ट विवेचन का भी आधार बनाना समुचित रहेगा। सामान्यतः यह स्वीकृत है कि शिक्षा का प्रमुख उत्तरदायित्व है युग के संकलित ज्ञान के समुचित प्रेषण द्वारा व्यक्ति को उसके वातावरण के साथ अनुकूलतम समायोजन कर सकने हेतु योग्य बनाना। अतएव शिक्षा का प्रत्यय समन्जन के दो पक्ष—व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण से सम्बन्धित होता है। इन दो पक्षों में से अभी तक शिक्षा केवल एक ही पक्ष पर्यावरण से अधिक सम्बन्धित थी। उसकी समस्या

मानचित्र संख्या १

(पुस्तक पृष्ठ संख्या १० देखें)

मानव-जीवन के विकासक्रम मे निर्देशन का व

यही थी कि पर्यावरण सम्बन्धी बधमान नान राशि को क्तिने अच्छे ढग स सरल व्यवस्थित तथा ग्राह्य बना कर प्रेषित किया जाए। यदि हम या कहे तो अति शयोक्ति नही होगा कि मानव का पर्यावरण विभिन्नताओ का एक सतत परिवतन शील समूह है जिसका समचित अध्ययन करने हेतु उसका चयन सकलन व्यवस्थी करण तथा सव्रीकरण करना औपचारिक शिक्षा का उत्तरदायित्व रहा था।

किन्तु हमने देखा कि वतमान युग के परिवर्धित नान ग्रन्थो म जो नवीनतम अध्याय जुडा वह था स्वय मानव का अध्ययन। अब परिस्थिति यह हो गई है कि जिस व्यक्ति तक शिक्षा द्वारा नान का प्रषण करना है उस व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व का भी अध्ययन किया तथा कराया जाए। मानव के इस नूतनतम बहु आयामी अध्ययन ने मानव को बतलाया कि प्रत्यक व्यक्ति अन्तसम्बन्धित विभिन्न ताओ का एक अश्लिष्ट प्रति रूप है। एक ओर तो मनोविनान न न कवल प्रत्यक व्यक्ति की बुद्धि रुचि कृति एव प्रवत्तियो म वभिन्य बताया अपितु इन विशे षको म नाना प्रकार की आन्तर्वैयक्तिक विविधताओ को दर्शाया जिन्हे तृतीय अध्याय में अधिक स्पष्ट किया जाएगा। दूसरी ओर सामाजिक मनोविनान ने व्यक्तियो म पारस्परिक सुखद अन्तसम्बन्धो की स्थापना म भी एकक व्यक्ति की व्यक्तिगत विभि न्नता की भूमिका का ओर इ गित किया। इस नवीनतम परिस्थिति क सन्दभ में शिक्षा क अपेक्षाकृत सरल उत्तरदायित्व का स्वरूप भी अत्यधिक सजटिल हुआ। सक्षेप में इसकी व्याख्या है—विभिन्नताओ के दो समूहो क मध्य उपयुक्त समायोजन स्थापित करना।

अपनी सामान्य परिस्थिति म औसत शिक्षण सस्थाओ ने अपने आप को इस सजटिल उत्तरदायित्व के लिये अपूर्ण-सा पाया। इसी अपूर्णता की भावना म शिक्षा के क्षेत्र म व्यावसायिक निर्देशन का प्रादुर्भाव एव विकास हुआ।

शिक्षा के इतिहास म विषयो के विशिष्टीकरण युग के समय ही हम निर्देशन क प्रथम प्रश्न कौनसा नान या काय क्षेत्र किसके लिए? की ओर इ गित कर ही चुके थे। अब शक्षिक इतिहास के नूतनतम अध्याय म पर्यावरणीय नान तथा शिक्षार्थी का व्यक्तित्व दोनो से सम्बन्धित परिवर्धित नान राशि के सन्दभ म शिक्षा म मार्ग दशन का स्वरूप और भी अधिक विशिष्ट हुआ। स्थिति यह थी कि समा योजन के दोनो पक्ष विभिन्नताओ के दो सजटिल प्रतिरूप थे। अतएव उपयुक्त समा योजन हेतु दोनो ही पक्षो का समुचित नान शिक्षा प्रक्रम के लिए अनिवाय हो गया। एक ओर जहा विविध पर्यावरणीय विषय-क्षेत्रो की तकनीकी विशषताओ का नान आवश्यक था वहा अब प्रत्यक व्यक्ति की बुद्धि रुचि योग्यता प्रकृति प्रवत्ति आदि से सम्बन्धित अवबोध भी अनिवाय हो गया। इस नूतन अवबोध हेतु किसी व्यव स्थित विधान की आवश्यकता पडी जो कि शिक्षा म निर्देशन के रूप म अवतरित हुआ। इस सन्दभ में उसके विशिष्ट ध्येय इस प्रकार रहे—

—व्यक्ति को अपने आप का सही अवबोध प्राप्त करने में सहायता देना

—अपनी क्षमताओं तथा सीमितताओं के वास्तविक स्वरूप से अवगत कराना
—अपनी क्षमताओं का इष्टतम विकास व उपयोग कर सकने में सहायता देना
—अपने सम्पूर्ण वातावरण में अनुकूलतम समायोजन स्थापित करने में सहायता देना
—अपने जीवन की विविध समस्याओं को समझने व सुलझाने में स्वतन्त्र रूप से सुयोग्य बनाना और
—अपने सर्वोत्तम योगदान समाज को देने में सफल बनाना।

उपर्युक्त ध्येयों के स्वरूप को देखकर एक सहज प्रश्न उठ सकता है कि शिक्षा व निर्देशन में अन्तर क्या हुआ ? उक्त कथित ध्येय आधुनिक शिक्षा के स्वीकृत उद्देश्यों से किस प्रकार भिन्न है ?

इस प्रस्तावना के अध्याय में हमारे प्रारम्भिक विवेचना के स्तर पर ही इन युक्तिसंगत प्रश्नों का उत्तर एक स्वर्ण सूत्र में पिरोना उपयुक्त होगा। विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में तो कार्यकर्ताओं को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि निर्देशन शिक्षा से कोई भिन्न प्रक्रिया नहीं है वह शिक्षा प्रक्रम का एक अविच्छिन्न तथा महत्त्वपूर्ण अंग है।

इस तथ्य का स्पष्टीकरण निम्न चित्र तथा व्याख्या द्वारा किया जा सकता है (देखिए चित्र 2)

यदि शिक्षा का अंतिम लक्ष्य मानव का सर्वांगीण विकास तथा अनुकूलतम समायोजन है तो निर्देशन इन मनोनीत ध्येयों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है। सर्वांगीण तथा समरस विकास शिक्षा का निर्धारित ध्येय होते हुए भी वस्तुतः एक आदर्श प्रक्रम है। वास्तविकता तो उस तथ्य में है जिसके साथ हमने यह अध्याय प्रारम्भ किया था—कि जीवन का मार्ग सीधा नहीं है। अतएव वस्तुस्थिति यह है कि मानव के समरस बनाने वाले विकास को जीवन की कई ऊँचाइयों निचाइयों के मध्य होकर गुजरना पड़ता है। कल्पना का समरस विकास वह सरल सी रेखा नहीं जो कि मानव-जीवन में अनवरोधित रूप से अग्रसर होती जाए। सर्वांगीण सतत तथा समरस विकास के ध्येय को प्राप्त करने हेतु अनिवार्य होगा कि विकास मार्ग की व्यावहारिक कठिनाइयों के स्वरूप का अवबोध प्राप्त करके उन पर यथासम्भव विजय प्राप्त की जाए। किन्तु इस विजय प्राप्ति हेतु व्यक्ति को कठिनाइयों के सन्दर्भ में ही अपने स्वयं की क्षमताओं सीमितताओं का सही ज्ञान भी अनिवार्य हो जाता है तो जीवन के मार्ग की प्रकृति का अवबोध तथा उस पर सतत अग्रगामी होने सकने हेतु अपने स्वयं की क्षमताओं का उचित अनुमान जो व्यक्ति लगाने में समर्थ हो सकता है वही शिक्षा के निर्धारित ध्येय सर्वांगीण विकास की उपलब्धि के साथ अपने

बहुपक्षी पर्यावरण में समुचित समजन भी प्राप्त कर सकेगा।

निर्देशन की वैज्ञानिक कला द्वारा उपयुक्त दोनों प्रकार की कुशलताएं व्यक्ति को प्राप्त हो सकती हैं। और ये कुशलताएं प्राप्त होने पर ही शिक्षा के ध्येय की उपलब्धि हो सकती है।

अतएव शिक्षा और निर्देशन के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए हम कह सकते हैं कि **निर्देशन का विधान शिक्षा जगत का ही वैज्ञानिक विशिष्टीकरण है।** ध्येय की *आधुनिक काल की जटिलता में उपलब्धेय बनाने हेतु शिक्षा के इस प्रकार्यात्मक अंग* का प्रादुर्भाव हुआ है।

(२) शिक्षा की वर्तमान विचारधाराएं

यहाँ तक तो शिक्षा के वर्धमान जटिल स्वरूप के सन्दर्भ में हमने निर्देशन का प्राथमिक परिचय प्राप्त किया। इसके अनुवर्तन में ही शिक्षा क्षेत्र की वर्तमान विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में भी निर्देशन की उदीयमान महत्ता का देख लेना समीचीन होगा।

(क) सैद्धान्तिकता से प्रकार्यात्मकता की ओर—सामान्यतः मानव के इतिहास और विशेष कर शिक्षा के क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी को यदि एक सैद्धान्तिक चर्चाओं का युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। परिवर्धित ज्ञान राशि के साथ-साथ उस समय मानव का वाग् वैतण्ड्य भी अपनी चरम सीमा पर था। जीवन, संसार तथा स्वयं मानव से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर वाग् विदग्धतापूर्ण विचार गोष्ठियों में शोधा जाता था। बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक उपागम ने इस प्रकार की सैद्धान्तिक चर्चाओं से प्राप्त परिणामों को संदिग्ध दृष्टिकोण से देखा। फलस्वरूप प्रयोग निरीक्षण द्वारा चर्चाओं के विषय तथा उनके परिणामों का व्यावहारिक परिस्थितियों में परीक्षण सत्यापन होने लगा। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा के अस्पष्ट अमूर्त तथा अनुपलब्धेय ध्येयों की भी क्रियापरक व्याख्याएं करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। विकास, समंजन, समरसता, सर्वांगीण आदि शब्दों के प्रकार्यात्मक स्वरूप को स्पष्ट करने के प्रयत्न होने लगे।

उक्त उदाहरण हमने शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र में व्यावहारिक व्याख्याओं के प्रश्न सम्बन्धी आन्दोलन से दिए। किन्तु वस्तुतः यह आन्दोलन वर्तमान युग के परिवर्तित उपागम का ही प्रतिबिम्ब मात्र है। बीसवीं शताब्दी का मानव मानव अध्ययन से सम्बन्धित विविध क्षेत्रों में इसी प्रकार की जिज्ञासाएं प्रदर्शित करने लगा। विभिन्न क्षेत्रों में वर्धमान ज्ञान को अपने लिए उपयोग में लाने हेतु वह उनके व्यावहारिक शब्दावलियों में व्याख्या की मांग करने लगा। एक दो उदाहरण इस बात को अधिक स्पष्ट कर देंगे। एक ओर शिक्षा-दर्शन ने प्रत्येक व्यक्ति के मूल्य के लिए आदर की घोषणा की ही थी। व्यक्ति के अध्ययन से सम्बन्धित मनोविज्ञान ने वैयक्तिक विभिन्नता की आस्था प्रतिपादित करके इस घोषणा को एक प्रकार से वैज्ञानिक सम्पूर्ति प्रदान की। कतिपय अन्य क्षेत्रों यथा—समाज विज्ञान, मानव विज्ञान, संस्कृति विज्ञान

आदि म भी किसी न किसी प्रकार मानव को समृद्धि की एक महत्त्वपूर्ण इकाई मान कर उसका अपने अपने ढग स अध्ययन करन की चेष्टाए प्रकट होन लगी थीं। किंतु पूव युग का सद्धातिक अध्ययन उपागम उक्त सभी क्षेत्रो म झलकता था। सद्धातिक रूप स व्यक्ति को नाना भांति स मान्यता दते हुए भी व्यक्ति-केंद्रित अध्ययन व्यावहारिक नहीं था। बीसवी शताब्दी की प्रवार्यात्मकता न अपने पूव युग की विभिन्न सद्धान्तिक मान्यताओ को एक क्रियात्मक रूप दना चाहा। निर्देशन का नतन क्षेत्र वतमान युग के नाना क्षेत्रो की सद्धातिक आस्थाओ का व्यावहारीकरण करन क उद्देश्य स प्रारम्भ हुआ। व्यक्ति क अवबोध की आवश्यकता को इसन अवबोध के अतगत आन वाल घटक तथा उन घटको का अध्ययन करन हेतु साधना की व्याख्याओ द्वारा स्पष्ट किया। उसके सर्वांगीण विकास की सवमान्य अस्पष्टता को मानव के विविध अगो तथा उसके विकास व स्वरूप का वज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके उसे अधिक अवबोधगम्य बनाया। समजन की शाब्दिक सुन्दरता को समजन क विविध आयामो उनकी अन्य प्रक्रियाओ तथा उनके लक्षणो के रूप म एक वज्ञानिक वास्तविकता प्रदान की। अतएव यदि सक्षेप म कहा जाए कि मानव केंद्रित अध्ययन क्षेत्रों क कल्पनाभासों तक वायवी को एक प्रकाशात्मक प्रकाश दन क उद्देश्य स निर्देशन का नतन नक्षत्र मानव जीवन क गगनागण म उदीयमान हुआ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(ख) ज्ञान का मानवीकरण—आधुनिक युग की द्वितीय महत्त्वपूर्ण विचार धारा है ज्ञान का मानवीकरण। प्रगतिगामी मानव अपने तथा अपन पर्यावरण क सम्बन्ध म नाना भांति के विषय क्षेत्रो स ज्ञान सूचनाए प्राप्त करता जा रहा था। किन्तु कई बार यह ज्ञान कवल ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य स ही होता था। वतमान युग म केवल ज्ञान के लिए ज्ञान वचन के स्थान पर जीवन म अनुप्रयोग के लिए ज्ञान के विकास को अधिक मान्यता मिलन लगी। फलस्वरूप *विभिन्न विकासमान ज्ञान-क्षेत्रों की परिवर्धित उपलब्धियों का मानवीकरण होने* लगा। शुद्ध शोध द्वारा विषय सिद्धान्तों को स पन्नता तो प्राप्त हुई ही साथ ही *न सिद्धान्तों द्वारा मानव का दनन्दिन जीवन किस प्रकार अधिक सुखी बनाया जा* सकता है इस ओर शास्त्रवत्ताओ का ध्यान आकर्षित होन लगा।

यह वह युग था जबकि पशुओं की प्रयोगशालाओं से उद्भूत जीवन-व्यवहारों की व्याख्याओ तक ही सीमित न रहकर मनोवज्ञानिक स्वतन्त्र रूप स मानवीय भाव *सवेग प्रेरणा अधिगम आदि म रुचि लेने लग थ। शुद्ध विज्ञानों यथा भौतिकशास्त्र* रसायन शास्त्र गणित जीव शास्त्र आदि क सिद्धान्तो का मानवीय उन्नयन हेतु अनुप्रयोग तो परिवर्धित हो ही रहा था। किन्तु इसके साथ ही व्यवहार विज्ञानों का एक स्वतन्त्र क्षेत्र हो मानव के अध्ययन म विशिष्ट रूप स रुचि लेन लगा।

वज्ञानिक-तकनीकी युग की कई मूल्यवान दनो की स्वीकृति के मध्य भी एक आशंका आभासित हो रहा था कि कहीं जीवन क अति-यान्त्रीकरण स मानवीय

मूल्यों का अत्यधिक ह्रास न होने पाए। औद्योगीकरण की द्रुत जीवन-गति व्याव सायिक प्रगति से उद्‌भूत सामाजिक गतिशीलता तथा तकनीकी विकास की देन यान्त्रिकता तीनों ही मानो मानव को मानव से दूर खींचती प्रतीत हो रही थी। जहाँ उक्त विकासों के फलस्वरूप मानव जीवन में सजटिलता आती जा रही थी वहां उन्हीं के परिणाम स्वरूप मनुष्य को अपने साथी के लिए समय की कमी का भी अनुभव होने लगा था। प्राचीन युग के सरल समाज में मानव मानव के अधिक निकट था अब वह यन्त्रों के अधिक समीप होता जा रहा था। पहले वह अपने सरल प्रश्नों के सम्बन्ध में भी एक दूसरे से बातें कर लेता था मन का बोझा हलका कर सकता था। अब अपने स्नेही का कुशल समाचार प्राप्त करने हेतु उसे दूरभाष पर केवल उसका यान्त्रिक कण्ठस्वर श्रवण करना पड़ता है। आज मानव की शोध निष्ठा तथा ज्ञान महत्वाकांक्षा इतनी अधिक प्रबल हो गई है कि वह चन्द्रमा के वासियों से मिलने हेतु अपने प्राणों की बाजी लगाने को तत्पर है किन्तु वह अपने पड़ोसी से बात करने में असमर्थ होता जा रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो समय की कमी के साथ यन्त्रों के आधिक्य के कारण उसकी सनातन योग्यता में उत्तरोत्तर रूप से कमी आती जा रही है तथा मानवीय सम्बन्धों में दुर्बलता प्रविष्ट हो रही है।

ऐसे समय मानवीय विज्ञानों की सबसे बड़ी चुनौती है मानव का उद्धार। अत्यन्त द्रुत गति से परिवर्तित वर्तमान युग में कदाचित पच्चीस वर्ष पूर्व का व्यक्ति आज का संसार पहिचानने में असमर्थ हो। उसे अपने आप को तथा अपने साथियों को पहिचानने हेतु भी आज विशिष्ट सहायता की आवश्यकता आ पड़ी है। युग की इस वास्तविक माँग में ही निर्देशन के नूतन क्षेत्र का आविर्भाव हुआ तथा वैज्ञानिक युग की वैज्ञानिक विधाओं द्वारा ही उसने इस आवश्यकता की पूर्ति की। इसके लिए इसका आज के युग में विशेष महत्व है।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय में हमने समस्त मानव जीवन में निर्देशन के सार्वत्रिक महत्त्व का विभिन्न दृष्टिकोण से परीक्षण किया। मानव विकास क्रम के विविध स्थलों पर इसके विभिन्न स्वरूपों का विहंगावलोकन करते हुए हमने आज के युग में इसके वैज्ञानिक स्वरूप की महत्ता देखी। तत्पश्चात् वर्तमान युग की कतिपय महत्त्वपूर्ण आस्थाओं सिद्धान्तों का व्यावहारीकरण तथा ज्ञान का मानवीकरण के एक महत्त्वपूर्ण प्रभावात्मक प्रतिबिम्ब के रूप में इसके उद्‌भव का निरीक्षण किया।

इस विस्तृत परिचयात्मक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अब निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप का अधिक विशिष्ट विवेचन अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा।

२

पृष्ठ भूमि

गत अध्याय के सामान्य विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव के इतिहास के साथ ही जीव संसार की प्रारम्भिक प्रक्रिया मार्ग दर्शन का दैनन्दिन जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया से व्यवस्थित निर्देशन के रूप में विकास हुआ। मानव व्यवहार को वांछनीय दिशाओं में परिवर्तन हेतु निर्देशन करते वाले शिक्षा प्रक्रम में व्यवस्थित निर्देशन की आज एक महत्वपूर्ण भूमिका है। यों तो समस्त संसार में निर्देशन वर्तमान शिक्षा क्षेत्र के एक नवीनतम अंग के रूप में देखा जाता है किन्तु हमारे देश में तो इसके सम्बन्ध में सज्ञान ही लगभग दो दशक पूर्व जाग्रत हुआ है।

यों किसी भी क्षेत्र के युक्तियुक्त विकास एवं संस्थापन हेतु दो दशक भी कोई बहुत ही अपर्याप्त नहीं है। किन्तु भारत में दो दशकों की अवधि में भी मानो यह क्षेत्र अभी जड़ नहीं पकड़ पाया है। कतिपय अन्य प्रगतिगामी देशों में तो निर्देशन न केवल शिक्षा के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यात्मक अंग के रूप में संस्थापित होकर अपनी विभिन्न विशिष्टीकरण शाखाओं उपशाखाओं में विकसित हो रहा है अपितु सामान्य जन जीवन के नाना पक्षों में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर उसे अधिक सुखी तथा सम्पन्न बना रहा है। किन्तु भारतवर्ष में सामान्य जनता को तो निर्देशन से कोई विशेष परिचय ही नहीं प्रतीत होता। बच्चों को नौकरी वगैरा के बारे में कुछ बताने की धारणा के साथ ही सामान्यतः अभिभावकगण तथा समाज के सदस्य निर्देशन का समीकरण करते हैं। शिक्षा जगत में भी इसका सम्प्रत्यय बहुत स्पष्ट नहीं है। क्या कारण है इस परिस्थिति का? सम्प्रत्यय की अस्पष्टता में तो निर्देशन का इतिहास भारतवर्ष तथा पश्चिम दोनों में ही एक समानान्तर स्थिति प्रस्तुत करता है। अपने प्रारम्भिक काल में पश्चिम में निर्देशन का सम्प्रत्यय स्पष्ट नहीं था। शनैः शनैः उसके विकास के साथ सम्प्रत्यय में स्पष्टता तथा कार्य क्षेत्र में वैज्ञानिकता आती गई। किन्तु भारत में जो अस्पष्टता प्रारम्भ में थी वही बीस वर्षों के पश्चात भी चली आ रही है। चूंकि इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य कार्यकर्ताओं को निर्देशन के मूल तत्वों से परिचय कराना है इसलिये गत अध्याय के परिचयात्मक विवेचन के पश्चात हम निर्देशन के वैज्ञानिक स्वरूप के सम्बन्ध में स्पष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। इसके सम्बन्ध में अस्पष्टता अथवा भ्रान्ति

म कारणों को सके इतिहास में खोजते हुए हम यह देखेंगे कि जिस देश में इसका व्यवस्थित उद्भव हुआ वहा पर किन किन स्थितियों म से गुजर कर इसने अपना आधुनिक स्वरूप प्राप्त किया। इसर आधुनिक वज्ञानिक स्वरूप की रूपरेखा क्या है ? तथा इस विकास की अवधि म इसर स्वरूप तथा कार्यों क सम्बन्ध में क्या क्या भ्रान्तिया किन कारणों से रही थी ? तथा वे किस प्रकार दूर हुई ? सक्षप में इस परिवर्तित सप्रत्यय की पृष्ठभूमि में हम इसर आधुनिक वनानिक स्वरूप का अधिक सम्पूर्ण एव युक्तिसगत अवबाध प्राप्त करेंगे। पश्चिम में इसका विकासा त्मक गाथा क समानान्तर ही भारत वत में भी इसक उद्भव विकास तथा वत मान स्थिति पर अधिक युक्तियुक्त अवबोध प्राप्त हो सकता है।

परिवर्तित सप्रत्यय यवस्थित

निर्देशन के उदभव तथा विकास का विहगावलोकन

(१) प्राथमिक बीजाकुर व्यावसायिक निर्देशन

या तो मानव जीवन के सहज प्रक्रम के रूप म निर्देशन अपने जन्मस्थल पश्चिम म भी वहा के कुटुम्बो म ही स्वाभाविक रूप म अवस्थित था। लगभग उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक इस सम्बन्ध म वहा की स्थिति अन्य देशो से बहुत भिन्न नहीथी अर्थात शिक्षा सम्बन्धी नाना प्रकार के प्रश्नो का उत्तर तथा व्यवसाय सम्बन्धी विविध भाति का मार्गदर्शन कुटुम्ब के वयस्क द्वारा ही व्यक्ति प्राप्त करता था।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ की औद्योगिक क्रान्ति न सम्पूर्ण विश्व म एक वनानिक हलचल मचा दी थी। पश्चिमीय जीवन म इसका प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप स दृष्टिगोचर हुआ। इस आन्दोलन का प्रथम प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जीवन के मन्यीय स्थल क उपायो– उपागमा पर पडा। विशाल नगरों म व्यवसायो के औद्योगीकरण से न केवल कई घरेलू व्यवसायो तथा कुटीर–उद्योगो को क्षतिमय हुआ अपितु औद्योगीकरण के सहज परिणाम व्यवसाय विभिन्नी ग तथा विशेष्टीकरण ने कई नवीन प्रकार की समस्याए प्रस्तुत की। सवप्रथम तो विभिन्न प्रकार के विशेष उद्योगो में काय कर सकने हेतु विशिष्ट प्रशिक्षणो की आवश्यकता हुई। इसके साथ ही पतृक व्यवसाय का स्वाभाविक रूप से अनुवतन करने की सरल स्थिति के स्थान पर अन्य प्रकार के नए अवसरा म से उपयुक्त चयन का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। जसाकि हम गत अध्याय म पढ चुके है– किस व्यक्ति के लिए कौन सा प्रशिक्षण ? अथवा किसके लिए कौनसा व्यवसाय ? इस प्रकार क निर्णायक प्रश्न समाज म व्यग्रता उत्पन्न करने लगे। स्पष्ट था कि कौटुम्बिक सदस्य कई नवीन व्यवसायो तथा सम्बन्धित शिक्षण व्यवस्था से प्राय अनभिज्ञ से थे अत उनके लिए उक्त प्रश्नो के सम्बन्ध में विश्वासपूवक सम्मति देना सम्भव नहीं था। उनकी यह अपर्याप्तता जीवन में प्रवेश करने वाले नव किशोरो में एक प्रकार की कुण्ठा उत्पन्न करने लगी। इस कुण्ठा का वधन हुआ सामाजिक गतिशीलता से उत्पन्न समस्याओ से। इस प्रकार

एवं परेलू समस्या अधिकाधिक रूप से सामाजिक उत्तरदायित्व बनती गई। पश्चिम के विभिन्न देशों में स्थानीय स्वायत्त शिक्षा क्षेत्र तथा औद्योगिक संस्थाओं ने इस उत्तरदायित्व को सम्भाला। उन्होंने किसी न किसी रूप में व्यवस्थित रूप से नव निशारों को सम्बन्धित सहायता देने के कार्यक्रम आयोजित किए। इंग्लैण्ड में यह कार्य अधिकांश में स्थानीय स्वायत्त तथा औद्योगिक संस्थाओं का रहा। किन्तु अमरीका में यह आन्दोलन सामान्य जनता में प्रारम्भ होकर भी उत्तरोत्तर रूप से शिक्षा के क्षेत्र का अन्तरंग भाग बनता गया। अतएव व्यवस्थित निर्देशन का पश्चिम में सामान्य उद्भव देखने के पश्चात् विशेषकर अमरीकन-समाज में इसके बीजांकुरों को खोजना अधिक उपादेय रहेगा। इसका एक कारण तो यह है कि अमरीका में ही इस आन्दोलन की स्पष्टतम प्रगति हुई है तथा इसके अधिकतम योगदान रहे हैं। दूसरे अमरीका में इसके विकास की कहानी का भारत में इसके उद्भव से एक सबल साम्य है।

(क) साहित्यिक स्फूर्ति

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से ही कतिपय अमरीकन नवक जीवन तथा व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के प्रश्न के सम्बन्ध में रुचि लेने लगे थे तथा उन्होंने लोकप्रिय समाचार-पत्रों और छोटी छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से इस महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचार व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया था। जीवन किस प्रकार प्रारम्भ किया जाय? एक नौजवान क्या कर सकता है? जीविकोपार्जन की चुनौती — आदि सामयिक विषयों पर इनके लिखित उद्गार तत्कालीन समाज की अनुभूत आवश्यकताओं के प्रतिरूप स्वरूप होने के कारण पर्याप्त स्वीकृति प्राप्त कर रहे थे। समाज के कुछ लोक हितैषी नागरिक तो इस प्रकार किए जाने वाले निर्देशन के स्वरूप को और भी अधिक विस्तृत करके उसमें युवकों का सामाजिक नैतिक वैयक्तिक मार्ग दर्शन भी सम्मिलित करने के पक्ष में थे। किन्तु अधिकांश में उस समय सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई।

(ख) लोक कल्याणी अभिकरण

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उक्त कथित साहित्यिक स्फूर्ति को निश्चित परिपुष्टि प्राप्त हुई कतिपय लोककल्याणी अभिकरणों के व्यावहारिक कार्य से। या इस समय अमरीका के कई विभिन्न नगरों में लोक हितैषी नागरिक (वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप से) युवकों को निर्देशन देने में नेतृत्व ले रहे थे। किन्तु इस सन्दर्भ में सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य रहा फ्रैंक पार्सन्स के बास्टन नगर में। फ्रैंक पार्सन्स Frank Parsons नामक एक नागरिक ने बास्टन के नागरिक सेवागृह में एक स्वयंसेवक के रूप में अपना कार्य प्रारम्भ किया था। वहाँ शिक्षा तथा व्यवसाय में असमंजित कई नवयुवकों के सम्पर्क में आकर इनकी सहायतार्थ कुछ अधिक विशिष्ट कार्य करने की उसकी इच्छा सबलतर होती गई। अतएव १९०५ के लगभग उसने

ब्र न बिनस न्स्टीट्यू ट (जीविकोपाजन सस्था) स्थापित की तथा इसके माध्यम से वह नवयुवकों को व्यावसायिक निर्देशन देने का काय सगठित करता रहा। मानवीय इतिहास में सवप्रथम व्यावसायिक निर्देशन व्यवसायिक यूरो तथा व्यावसायिक परामश दाता पदावलियों का प्रयोग हुआ। निर्देशन सेवाओं के इतिहास में फ्रैंक पासन्स व्यावसायिक निर्देशन का पिता तथा बास्टन का शहर व्यावसायिक निर्देशन का पालना के नाम से विख्यात हुए।

१६ ६ में पासन्स के असामयिक निधन के उपरात भी यूरो का काय उसके उत्साही अनुयायियों द्वारा चालू । एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम इस ओर शिक्षकों के प्रशिक्षण काय द्वारा उठाया गया—और अन्ततोगत्वा यह यूरो विश्वविख्यात हारवड विश्वविद्यालय का व्यावसायिक निर्देशन यूरो बना। इसी समय बास्टन के विद्यालयों संसार ने भी विद्यार्थियों को व्यावसायिक सहायता देने के काय में हाथ बटाना प्रारम्भ किया तथा शालाय अधिकारियों ने इस क्षेत्र में सक्रिय उत्तरदायित्व सम्भाला। व्यावसायिक निर्देशन का झोंका बास्टन से अन्य स्थानों पर इतना द्रुत गति से पहुँचा कि १६१ में व्यावसायिक निर्देशन की एक राष्ट्रीय सभा का बोस्टन में आयोजन हुआ इस सभा में अमरीका के भिन्न भिन्न नगरों का प्रतिनिधित्व रहा।

इस प्रकार स्थानीय अभिकरण तथा शैक्षिक सस्थाओं के सम्मिलित प्रभाव से व्यावसायिक निर्देशन का काय अपने शैशवकाल में भी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति करता रहा। अमरीका के विभिन्न क्षेत्रों में इस आन्दोलन को पर्याप्त लोकप्रियता तथा स्वीकृति प्राप्त हुई।

(ग) भारत में व्यवस्थित निर्देशन का प्रारम्भ

जसा कि हम पहले ही कह चुके हैं निर्देशन का इतिहास भारतवष तथा अमरीका में एक प्रबल साम्य दर्शाता है। यो समय के दृष्टिकोण से यह पश्चिम से लगभग आधी शताब्दी पिछड़ा हुआ है किन्तु निर्देशन सम्बन्धी सम्प्रत्ययों के जन्म तथा विकास दोनों देशों में लगभग समान परिस्थितियों में से होते हुए एक समान्तर रूप से प्रतीत होते हैं।

भारतवष में निर्देशन का इतिहास लगभग दो दशक प्राचीन ही है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात इसके सम्बन्ध में यह है कि भारत में भी व्यवस्थित निर्देशन का जन्म मानव की व्यावसायिक आवश्यकताओं में ही हुआ। नवयुवकों को व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाएं देने हेतु किए गए लोकहितैषी नागरिकों के उदार प्रयासों में ही इसका प्राथमिक प्रादुर्भाव हमारे देश में भी दृष्टिगोचर होता है।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व की उद्योग क्रांति की लहर के झोंके से ग्रामीण भारत भी बिल्कुल अछूता नहीं रहा था। फिर इस देश में भी विशाल औद्योगिक नगरों की समस्याएं किसी भी अन्य देश के औद्योगिक केन्द्रों से बहुत भिन्न

नही हो सकती थी। औद्योगिक भारत में बम्बई के पारव र का म व ही एक ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। बीसवी शताब्दी के लगभग मध्यकाल में औद्योगिक हलचल की सवेदना इस नगरी म अधिक हुई। यहाँ के व्यापार मस्तिष्की नागरिको ने नवयुवको को व्यापार उद्योग की नई दिशाओं के लिए तैयार करने के लिए उन्हे व्यावसायिक जीवन के प्रायमिक तथ्यो से अधिक प्रबुद्ध करना चाहा।

तदनुसार बम्बई म इस समय पारसी पचायत ब्यूरो नामक एक लाभ-रहती अनौपचारिक सस्था की स्थापना हुई। पश्चिम म उद्भूत निर्देशन की प्रारम्भिक व्यवस्थित सस्थाओ के सदृश हो इसका नामकरण भी पारसी पचायत वोकेशनल गाइडेन्स ब्यूरो हुआ।

इस सम्बन्ध म दूसरा अत्यन्त ही रुचिकर साम्य यह है कि पश्चिम के समान ही इस ब्यूरो ने भी अपनी प्राथमिक निर्देशन क्रियाए साहित्यिक प्रकाशनो के माध्यम से की। छोटी-छोटी पुस्तिकाओ के द्वारा यह ब्यूरो अत्यन्त ही सरल तथा व्यावहारिक रूप से नवयुवको को नवीन व्यवसायो सम्बन्धी सूचनाए प्रसारित करने लगा। इसके साथ ही इस ब्यूरो का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य रहा एक चिरस्मरणीय पत्रिका का प्रकाशन जिसे उन्होने जर्नल आफ वोकेशनल गाइडेन्स कहा। इस पत्रिका म बराबर उन्नति होती गई तथा यह भारत म निर्देशन आन्दोलन और गतिविधियों के सम्बन्ध म सूचना प्रसारण का एक मुख्य माध्यम रही। यह पत्रिका आज भी आल इण्डिया एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स असोसियेशन की मुख पत्रिका है। अत यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि भारतवर्ष म निर्देशन सेवाओ के क्षेत्र म इस ब्यूरो का कार्य अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रहा।

इस ब्यूरो के सचालक डा होशाग मेहता थे जिनका नाम आज भी व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र म अत्यन्त आदर पूर्वक लिया जाता है तथा जो अभी भी केन्द्रीय मन्त्रालय के वोकेशनल गाइडेन्स यूनिट म सम्माननीय पद पर स्थित हैं। इनकी विदुषी पत्नी डा श्रीमती परिन मेहता ने भी प्रारम्भ से ही इस कार्य म रुचि ली तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय से निदेशन म अग्रिम योग्यता प्राप्त की। व्यावसायिक निर्देशन के केन्द्रीय ब्यूरो की भी वे सचालिका रही। मिनिस्ट्री आफ लेबर मे डा होशाग मेहता द्वारा व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र म राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य किया गया। अमरीका म राष्ट्रीय स्तर पर विकसित डिक्शनरी आफ आक्युपेशन्स की ही दिशा मे केन्द्रीय वोकेशनल गाइडेन्स यूनिट म डा मेहता ने भारतवर्ष म भी व्यवस्थित ढग से व्यवसायो का राष्ट्रीय सवर्गीकरण (नेशनल क्लासिफिकेशन आफ आक्युपेशन्स) करवाया तथा राष्ट्रीय और प्रान्तीय दोनो ही स्तरो पर विविध व्यवसायो म प्रशिक्षण अवसरों पर अत्यन्त मूल्यवान साहित्य का प्रकाशन किया। निर्देशन आन्दोलन के प्राथमिक काल म अमरीका मे प्रकाशित व्यवसाय सूचना सम्बन्धी सरल साहित्य की ही भाँति डा मेहता के डी जी आर एण्ड ई (डाइरेक्टरेट जनरल आफ रिहैबिलिटेशन एण्ड एम्प्लायमेन्ट) ने भारत म प्रचलित विविध व्यवसायो से सम्बन्धित छोटे छोटे

वेरियर पेम्फलटस प्रकाशित किए जिनमें व्यवसाय सम्बन्धी सामान्य सूचना के साथ साथ उसमें आवश्यक प्रशिक्षण सम्बन्धित सूचनाएं भी सुस्पष्ट रूप से समाहित की जाती रही। ये पत्रिकाएं विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों के लिए भी अत्यन्त ही लाभप्रद सिद्ध हुई।

अमरीका के समान ही व्यावसायिक निर्देशन आन्दोलन भारत के अन्य प्रान्तों में भी प्रसारित हुआ। कुछ प्रान्तों में स्वतन्त्र रूप से व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरोज स्थापित करने के अतिरिक्त कतिपय मनोवैज्ञानिक ब्यूरोज ने भी निर्देशन के क्षेत्र में वैज्ञानिक रुचि लेना प्रारम्भ किया। इनमें इलाहाबाद ब्यूरो आफ साइकोलाजी का नाम उल्लेखनीय है।

किन्तु भारतवर्ष के सम्बन्ध में स्मरणीय तथ्य यह है कि यहां निर्देशन का बीजांकुर तो व्यावसायिक क्षेत्र में हुआ ही किन्तु इसके विकास तथा वर्तमान स्थिति में 'व्यावसायिक' सम्प्रत्यय की पुट अत्यन्त प्रबल रही।

(घ) 'व्यावसायिक' उपसर्ग का महत्व एवं अभिप्रेत अर्थ

पूर्वीय तथा पश्चिमीय दोनों ही देशों में निर्देशन के प्रारम्भिक बीजांकुरों की उपर्युक्त गाथा एक तथ्य की ओर संकेत करती है। स्पष्ट है कि व्यवस्थित निर्देशन के सम्प्रत्यय का ही जन्म व्यक्तियों की व्यावसायिक आवश्यकताओं तथा व्यावसायिक समायोजन के प्रारम्भिक प्रयत्नों में हुआ। जो भी यह सत्य है कि कालान्तर में इसका कार्य शिक्षण तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में विविधवत् विकसित हुआ यद्यपि जैसा कि हमने देखा इसके प्रारम्भिक काल से तो शिक्षाविदों अथवा मनोवैज्ञानिकों को इससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इसके मौलिक उद्भव की गाथा तो व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन के साथ ही सबल रूप से सगठित है। कदाचित् यही कारण रहा होगा जिसने निर्देशन शब्द के पूर्व प्रयुक्त उपसर्गों में से 'व्यावसायिक' विशेषण को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। जबसे निर्देशन शब्द का प्राविधिक प्रयोग जीवन में औपचारिक मार्गदर्शन जैसे साधारण अर्थ से अधिक विशिष्ट अर्थ में होने लगा तभी से व्यावसायिक विशेषण निर्देशन के साथ जुड़ा और आज भी सर्वसाधारण लोकधारणा के अनुसार निर्देशन का पर्यायवाची ही है व्यावसायिक निर्देशन। अपने आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप को प्राप्त कर चुकने पर भी यह विशेषण निर्देशन शब्द के साथ इतना अधिक सम्बन्धित हो चुका है कि पश्चिम तथा भारत जैसे स्थानों पर यह उपसर्ग एक लम्बी अवधि तक निर्देशन के साथ प्रयुक्त होता रहा। भारतवर्ष में तो अभी भी न केवल सामान्य जनता के मानस में अपितु शिक्षा जगत में भी निर्देशन का सम्प्रत्यय व्यावसायिक निर्देशन के रूप में ही अवस्थित है शब्दावलियों के प्रयोग में भी इसी पदावली का प्रचलन लोकप्रिय है। इसके इस लम्बे प्रयोग के विषय में एक और तथ्य की ओर वाचकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

यह एक सामान्य अनुभव तथा साधारण ज्ञान की बात है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन समन्जन में उसका व्यावसायिक समन्जन एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। वस्तुत उसके जीविकोपार्जन से सम्बन्धित क्रियाओं का उसके समस्त जीवन में केन्द्रीय महत्त्व होना एक अविवाद्य वास्तविकता है। जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का मुख्य साधन होने के कारण व्यक्ति अपने व्यवसाय को सर्वाधिक मान्यता देता ही है। किन्तु इसके साथ ही उसके सामाजिक व्यक्तिगत जीवन का सन्तोष असन्तोष भी एक बहुत बड़ी सीमा तक उसके व्यावसायिक समन्जन से अनुबन्धित रहता है। अपने जाग्रत जीवन का लगभग दो तिहाई भाग व्यक्ति अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्व पूर्ण करने में व्यतीत करता है। अतएव स्वाभाविक है कि उसके जीवन का सामाजिक पक्ष भी उसके व्यावसायिक सहकर्मियों के साथ अन्तरंग रूप से घुला मिला रहता है। उनके साथ समान रुचि सूचना ज्ञान आदि की सम्भागिता होने के कारण व्यवसाय की औपचारिक संगति के अतिरिक्त अपने अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों में भी सामान्यत एक ही व्यवसाय के व्यक्ति एक-दूसरे के निकट आ पाते हैं। वे एक ही भाषा बोलते हैं इसलिये एक दूसरे को बोली समझते हैं। निर्भर किए जाने वाले कार्य में रुचि विरुचि अवधान अनास्था कौशल्य अनभिज्ञता व्यक्ति के उस व्यवसाय की क्रियाओं से प्राप्त व्यक्तिगत सन्तोष को भी प्रभावित करती है। यही सन्तोष असन्तोष अपने मन में समेटे प्राय व्यक्ति काम करके घर लौटता है। स्वाभाविक है कि व्यवसाय की खुशियाँ उसके घर में भी बिखरे एवं वहा पर प्राप्त मान्यताओं व सतुष्टियों का प्रकाश उसके गृह जीवन को भी आलोकित कर दे। किन्तु यह भी आशंका हो सकती है कि वहा के तनावपूर्ण वातावरण की दमित घृणाएं विरक्तियां उसके सहज सुख से परिपूर्ण घरेलू जीवन में एक ऐसा विष घोल दें जिसकी कटुता की वह तथा उसके कुटुम्ब के सदस्य दोनों ही न समझ पायें। कार्यालय में अपने स्वामी के हाथ अनावश्यक रूप से अपने सम्मान पर ठेस पाते हुए विवशता पूर्वक मौन साधने वाला व्यक्ति जब संध्या समय घर आते ही अपने भोले बालक की स्वाभाविक जिज्ञासा पर झुंझला उठता है अथवा निर्दोष पत्नी के मुख से घर की नेमी आवश्यकताओं का विवरण सुनकर सन्तुलन खो बैठता है तब उसकी इस अपसामान्य मनोस्थिति पर उसके घर के व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ हो जाते हैं। कई बार वह स्वयं अपनी दुश्चिन्ता दुराग्रह दुर्बलता के कारण नहीं समझ पाता उस यह सज्ञान हो सकना कठिन है कि घर की ये समाप्याभासित घटनाएं तो केवल वे प्रक्षेपक कारण हैं जो कि कई संचित पुर प्रवर्तक तथा शाश्वतक कारणों के प्रस्फुटन के लिये केवल एक नन्ही सी अग्नि कणिका का कार्य कर रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन का सन्तोष असन्तोष केवल उसकी व्यावसायिक दृष्टि सृष्टि तक ही सीमित नहीं रहता। वह उसके सम्पूर्ण सामाजिक वैयक्तिक तथा घरेलू जीवन को भी सबल रूप से अनुबन्धित करता है।

ऐसी परिस्थिति में क्या आश्चर्य है यदि व्यक्ति अपने समूचे जीवन में अपने व्यवसाय को प्राथमिकता दे ? संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति का समस्त जीवन समजन एक अन्त की सीमा तक उसके व्यावसायिक समजन पर निर्भर करता है। व्यवस्थित निर्देशन के बीजांकुरों की शाखा से यह भी स्पष्ट हुआ कि मानव की व्यावसायिक समस्याओं में ही उस विधिवत् मार्ग दर्शन देने की प्राथमिक योजनाएं भी बनी थी। अतएव जीवन-समजन के मुख्य आधार व्यावसायिक समजन के हो दृष्टिगत यदि इस क्षेत्र में कार्यकर्त्ताओं का निरन्तर झुकाव रहा तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फलस्वरूप निर्देशन शब्द के साथ नाना उपसर्गों में से व्यावसायिक सबसे अधिक समय तक उसके साथ संयुक्त रहा। जीवन की सजीव आवश्यकताओं में जो प्रथम विशेषण निर्देशन के नाम के साथ जुड़ा वह आज निर्देशन के विकसित तथा व्यापक युग में भी जनमन में गहराई के साथ अंकित है। हमारे देश में तो अभी भी निर्देशन अभिकरणों का नामकरण अधिकांश में व्यावसायिक निर्देशन पूरा ही होता है।

निर्देशन शब्द के साथ इस प्रकार के उपसर्ग प्रयुक्त करने से इसके सैद्धान्तिक सम्प्रत्यय तथा व्यावहारिक कार्य क्षेत्र में जो अवांछनीय सीमितताएं उत्पन्न होती हैं उनका विवेचन आगे करेंगे। अभी तो इसके परिवर्तित तथा विकासमान सम्प्रत्यय में व्यावसायिक निर्देशन की धारणा का महत्व निर्देशन आन्दोलन के प्राथमिक बीजांकुर के रूप में प्रस्तुत मात्र किया जा रहा है।

(२) निर्देशन के सम्प्रत्यय का विकास शैक्षिक निर्देशन

(क) पश्चिम में

पश्चिम के व्यावसायिक जीवन में निर्देशन के बीजांकुरों के प्राथमिक प्रस्फुटन के विवरण में हमने इंगित कर दिया था कि स्थानीय नागरिक अभिकरणों के जन हितार्थ काम की परिपुष्टि में कई शिक्षण संस्थाओं ने भी विद्यार्थियों को इस दिशा में व्यवस्थित सहायता देने हेतु सक्रिय चरण उठाए थे। व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो तथा व्यावसायिक निर्देशक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना कतिपय विख्यात विश्वविद्यालयों के अन्तरंग विभागों के रूप में हो चुकी थी तथा माध्यमिक स्तर पर शिक्षाविद् और शिक्षा-अधिकारी भी इस दिशा में सक्रिय रुचि लेने लगे थे। फिर भी सामान्यतः निर्देशन कार्यकर्ताओं का ध्यान इसके व्यावसायिक पक्ष पर ही केन्द्रित था। अमरीका में इस समय व्यावसायिक निर्देशन आन्दोलन को प्रभावित करने वाली दो राष्ट्रीय विचारधाराएं, वैज्ञानिक प्रबन्ध व्यवस्था तथा संस्कारी शिक्षा के नाम से प्रचलित थी।

औद्योगीकरण के इस तकनीकी युग में व्यवसाय सचालन हेतु प्रबन्ध-व्यवस्था को अधिकाधिक रूप से वैज्ञानिक बनाना आवश्यक था। लागत के न्यूनतम उपयोग से अधिकतम उत्पादन हो सके यह सामान्यतः उद्योग की मूल समस्या रहती है।

इन प्रश्नों के समाधान में मानव कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण, चयन, नियुक्ति तथा पदोन्नति के प्रश्न निहित रहते हैं। स्वभाविक है कि औद्योगीकरण की प्रगति के साथ व्यवसाय व्यवस्थापक इस प्रकार के प्रश्नों से चिंतित रहते थे। व्यावसायिक निर्देशन को भी इन प्रक्रियाओं से सम्बन्ध था। वैज्ञानिक व्यवसाय व्यवस्था आन्दोलन से उसे और भी अधिक स्फूर्ति प्राप्त हुई। औद्योगिक उन्नति हेतु वैज्ञानिक ढंग से कार्य संचालन के फलस्वरूप व्यवसायपद उद्योगपतियों ने यह भी अधिकाधिक अनुभव किया कि किसी भी व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने हेतु कार्यकर्ताओं में एक विशिष्ट क्षमिक पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। पृष्ठभूमि में प्रत्येक व्यवसाय की आवश्यकताओं के अनुरूप वर्गित हो सकता है। विविध व्यवसायों के अन्तर्गत किए गए व्यवसाय विश्लेषणों तथा समय व गति शोधों के माध्यम से वैज्ञानिक औद्योगिक व्यवस्थापक इस प्रकार की विशिष्ट कुशलताओं का निर्माण विभिन्न व्यवसायों हेतु कर रहे थे। इनके परिणामों के आधार पर ही विविध व्यवसायों में प्रवेश तथा सफलता प्राप्त करने हेतु मपयुक्त प्राविधिक प्रशिक्षण की योजना बनाई जा सकती थी। साथ ही चयन तथा पदोन्नति के समय भी कार्यकर्ता में इन कुशलताओं का अस्तित्व एक वैज्ञानिक मापदण्ड हो सकता था।

इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना तथा धारण में प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के स्वरूप के सम्बन्ध में एक तथ्य अधिकाधिक स्पष्ट होता गया। उत्तरोत्तर रूप से यह आस्था प्रबल होने लगी कि इन कार्यक्रमों में एक व्यावहारिक वास्तविकता का पुट होना आवश्यक है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की कक्षाओं में दिये जाने वाले सैद्धान्तिक ज्ञान की सम्पूर्ति व्यवसाय स्थल पर दिये गये वास्तविक प्रशिक्षण द्वारा की जानी चाहिए। इस प्रकार की सम्पूर्ति को प्रतिपादित करने वाली विचारधारा सहकारी शिक्षा के नाम से विकसित हुई। फ्रैंक पार्सन्स के समकालीन डा. श्नाइडर का नाम इस आन्दोलन में उल्लेखनीय है। डा. श्नाइडर इस समय सिनसिनेटी विश्वविद्यालय में इन्जीनियरिंग महाविद्यालय के प्रमुख थे। व्यावसायिक निर्देशन आन्दोलन से निकट रूपेण सम्बन्धित होने पर भी सहकारी शिक्षा पद्धति में व्यावसायिक निर्देशकों की इतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी कि कार्यक्रम-संयोजकों की। जैसा कि इस नामकरण से ही स्पष्ट है, कार्यक्रम संयोजकों से यह अपेक्षित था कि इनमें—व्यवसाय की आवश्यकताओं, नाना के प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के उद्योग क्षेत्र की परिस्थितियों—तीनों के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान व अवबोध हो। इस अवबोध के आधार पर वे प्रशिक्षण के दोनों पक्षों—शाला का सैद्धान्तिक ज्ञान तथा व्यवसाय क्षेत्र का व्यावहारिक अनुभव—में समुचित सम्बन्ध स्थापन कर सकते थे। साथ ही शैक्षणिक प्रशिक्षण क्षेत्रीय अनुभव तथा व्यावसायिक कार्य में एक सुन्दर समायोजन उत्पन्न कर सकते थे। इस प्रकार के प्रवेश पूर्व संयोजित प्रशिक्षण से प्रशिक्षार्थी कार्यकर्ता में व्यवसाय में सफलता हेतु अपेक्षित ज्ञान सूचना तथा व्यावहारिक दक्षता

दोनों के ही विकसित होने की अन्त अधिक सम्भावनाएं थीं। पहले ही कहा जा चुका है कि व्यवसाय में अपेक्षित कुशलताओं का निदान व्यवसाय विश्लेषण तथा अन्य शोध प्रविधियों द्वारा कर लिया जाता था तथा इनके परिणामों के आधार पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की अधिक वास्तविक योजनाएं बनाई जाती थीं। इस प्रयोग द्वारा उत्पादन की परिमाणात्मक तथा गुणात्मक—दोनों प्रकार से वृद्धि हुई तथा व्यावसायिक क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त हुई।

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्यों से निकट सामाप्य रखने के कारण इस प्रयोग का भी निर्देशन आन्दोलन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सबसे अधिक स्पष्ट तो यह प्रभाव निर्देशन के परिवर्तित होते हुए सम्प्रत्यय में प्रतिबिम्बित हुआ। उद्योग में वैज्ञानिक प्रबन्ध व्यवस्था तथा सहकारी शिक्षा दोनों ही आन्दोलनों ने व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन के निकट अन्तसम्बन्धों की ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान आकर्षित किया था। इस क्षेत्र में यह उत्तरोत्तर रूप से स्पष्ट होता गया कि शैक्षणिक निर्देशन की शून्यता में व्यावसायिक निर्देशन नहीं दिया जा सकता। किसी भी व्यवसाय का चयन करने हेतु तथा उसमें प्रवेश प्राप्त करने हेतु निर्देशन देने के पूर्व व्यक्ति को सम्बन्धित शैक्षिक कार्यक्रम के चयन तथा समुचित प्रशिक्षण के माध्यम से अपेक्षित व्यावसायिक दक्षताएं प्राप्त करने के उद्देश्य से निर्देशन देना भी एक महत्त्वपूर्ण पूर्वावश्यकता है। इस प्रकार की आस्थाओं के फलस्वरूप अभी तक के व्यावसायिक निर्देशन के आकार-प्रकार में एक अन्तरङ्गी आयाम शैक्षणिक निर्देशन के नाम से जुड़ा। निर्देशन के स्वरूप की व्यावसायिक सम्प्रत्यय की संकुचित सीमाओं से मुक्ति हुई तथा उसका शैक्षिक-व्यावसायिक निर्देशन के अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र में विकास हुआ। जब अर्थपूर्ण व्यावसायिक निर्देशन देने हेतु सम्बन्धित पूर्व प्रशिक्षण की महत्ता अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी वहां सप्रयोजन शैक्षिक निर्देशन देने के लिये भी व्यक्ति की व्यावसायिक अपेक्षाओं आशाओं अभिलाषाओं तथा क्षमताओं को ध्यान में रखना आवश्यक समझा जाने लगा।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन के निकट अन्तसम्बन्ध एवं उनकी अनिवार्य अन्योन्याश्रिता अधिकाधिक स्पष्ट हो चली। इस अन्तसम्बन्ध के वैज्ञानिक संधान में ट्रूमन केली का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सन १९१४ में अपनी डाक्टरल थीसिस शैक्षणिक निर्देशन में व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन का सम्बन्ध शोध के आधार पर प्रदर्शित किया।

हम देख चुके हैं कि इंगलैण्ड में भी निर्देशन का प्रारम्भ मानव की व्यावसायिक आवश्यकताओं में ही हुआ था तथा वहां पर भी राष्ट्रीय औद्योगिक केन्द्रों ने इस विषय में विशेष रुचि ली थी। किन्तु समय की गति के साथ ग्रेट ब्रिटेन में व्यावसायिक निर्देशन को व्यवसाय-सम्बन्धी सलाह प्रशिक्षण तथा नियोजन के रूप में देखने की अपेक्षा उसे मोटे रूप से शैक्षिक कार्यक्रम का ही एक अंग मानने की

प्रवृत्ति रही। इंगलैण्ड में सन् १९४४ के एजूकेशन एक्ट के प्रभावस्वरूप जब अनिवार्य शालीय शिक्षा का वयस्तर बढ़ा दिया तब माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन की योजना को अधिक सफल बनाने की आवश्यकता की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित हुआ। शालाओं में स्थापित चालू रखने वालों के अतिरिक्त जो शाला-शिक्षा सम्पूर्ण करके उसे छोड़ने वाले विद्यार्थियों की भी पर्याप्त व्यावसायिक निर्देशन के महत्त्व स्वीकार होने लगा।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की व्यावसायिक आवश्यकता के प्रति इस संवेदना के फलस्वरूप शालाओं में कैरियर मास्टर्स के पद का आरम्भ हुआ। यह एक रुचिकर तथ्य है कि भारतवर्ष ने माध्यमिक शालाओं में शक्ति व्यावसायिक सूचनाएं प्रसारित करने वाले निर्देशन कार्यकर्ताओं के लिए कैरियर मास्टर्स पद स्वीकार किया। यों इसके शाब्दिक अर्थ तथा गुणार्थ दोनों के। इसी से इस शब्द के प्रयोग से भारतवर्ष में निर्देशन के सम्बन्ध में सम्बन्धी सम्भ्रान्तियों में वृद्धि ही हुआ।

(ख) भारतवर्ष में

मोटे रूप में कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में भी निर्देशन के इसके संकुचित व्यावसायिक अभिप्राय से विस्तृत होकर शैक्षिक कार्य से संयुक्त होने के प्रक्रम में लगभग इसी प्रकार की विचारधारा एवं गतिविधियाँ रहीं जिस प्रकार की हमने पश्चिम में देखीं। यों तो निर्देशन के प्राथमिक कक्षा में भी निर्देशन के शैक्षिक तथा व्यावसायिक पक्षों के अन्तर्सम्बन्धों का महत्त्व तो पाया जाता था। किन्तु माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक निर्देशन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता के प्रति दृष्टिगत अवस्था सन् १९५२ के माध्यमिक शिक्षा सर्वेक्षण के पश्चात् तीव्रतर हुई। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शालीय विद्यार्थियों की परिवर्धित संख्या की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उनकी वर्गगत विभिन्नताओं की महत्ता प्रदर्शित की। उसने स्पष्ट किया कि शिक्षा जगत की इस समस्त विशालमान जनता की बुद्धि, रुचि क्षमता आदि में वर्तमान होने के कारण सभी के लिए एक ही शैक्षिक कार्यक्रम कल्याणप्रद नहीं सिद्ध हो सकता। इसके साथ ही देश की औद्योगिक उन्नति के परिप्रेक्ष्य में भारत में भी विविध प्रकार के तकनीकी व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने पर बल दिया। इन दोनों आवश्यकताओं के सन्दर्भ में आयोग ने बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की योजनाएं प्रस्तावित की।

किन्तु इस प्रस्तावना के साथ ही उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि बहुउद्देशीय पाठ्यक्रमों की योजना अपने आप में ही अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकती। यदि व्यक्ति की क्षमताओं के अधिकतम सदुपयोग के साथ राष्ट्रीय उत्पादन में भी अनुकूलतम उत्पन्न करना है तो व्यक्ति की उसकी क्षमताओं तथा भविष्य की व्यावसायिक योजनाओं के सन्दर्भ में ही विशिष्ट वर्गीकृत पाठ्यक्रमों में निर्देशित करना अनिवार्य होगा।

अत जिन उद्देश्यो को लेकर बहुउद्देशीय शक्षिक सस्थाओ का जन्म हुआ था उनकी वास्तविक उपलब्धि हेतु शक्षणिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के निकट अन्तसम्बन्ध तथा अन्योन्याश्रिता की अनुभूति शिक्षा जगत के लिए आवश्यक समझी गई। अत हम कह सकते है कि भारतीय समाज म विकासमान शक्षिक कायक्रमो औद्योगीकरण की परिवर्धित योजनाओ तथा इन योजनाओ के अन्तगत आयोजित विभिन्न व्यवसायो के विशिष्टीकरण ने शक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के पारस्परिक सम्बन्धो को स्पष्ट किया।

यह आस्था देश म शन शन बल पकडने लगी। निर्देशन ब्यूरो के नामकरण म निर्देशन शब्द के पूव शक्षिक — व्यावसायिक दोनो ही उपसग सम्मिलित रूप स प्रयुक्त होने लगे। राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन सघ का नामकरण भी आल इण्डिया एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस असोसिएशन हुआ तथा पारसी पचायत ब्यूरो की जो प्रारम्भिक मुख पत्रिका इस असोसिएशन द्वारा चल रही थी उसका नाम भी जनल आफ एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस हुआ।

(३) निर्देशन क सप्रत्यय मे अग्रिम विस्तार व्यक्तिगत-सामाजिक निर्देशन

(क) पश्चिम म

अपने प्रारम्भिक विकासमान वर्षो म निर्देशन का काय शक्षिक-व्यावसायिक निर्देशन के नाम स सामान्यत माध्यमिक शाला के विद्यार्थियो एव उनके समवयी नवकिशोरो तक ही सीमित रहा। ऐसा अनुमान था कि महाविद्यालय म पढने वाले नवयुवको को इस प्रकार के निर्देशन की बहुत आवश्यकता नही था।

अमरीका के महाविद्यालयो म निर्देशन का काय इस स्तर पर अध्ययन करने वाली नवयुवतियो की सामाजिक व्यक्तिगत आवश्यकताओ म प्रारम्भ हुआ। जब प्रथम बार देश के महाविद्यालयी जीवन मे युवतियाँ उच्च अध्ययन हेतु प्रवेश लेने लगी तो सह शिक्षा से उद्भूत सामाजिक व्यक्तिगत समस्याओ की आशका शैक्षिक अधिकारियो को चिन्तित करने लगी। अतएव उन्हे इन प्रश्नो म निर्देशन देने हेतु एक महिला पदाधिकारी डीन पद की स्थापना की गई। तत्पश्चात इस पद का विश्वविद्यालयो म विद्यार्थियो के डीन के रूप मे विकास हुआ। तदनन्तर महाविद्यालय म भी शिक्षार्थियो की सख्या वधमान होने के कारण नवयुवकों के लिए भी डीन की व्यवस्था की जाने लगी। शन शन अमरीका के कई महाविद्यालयो में युवक युवतियो के व्यक्तिगत सामाजिक समायोजन में विविध भाति का निर्देशन देने हेतु कायक्रम आयोजित किए जाने लगे। महाविद्यालयो में छात्रो की सख्या में वृद्धि विश्वविद्यालयो के आकार प्रकार म अभूतपूव वधन तथा इनमें दिए जाने वाले शक्षणिक कायक्रमो का भी असीम विविधता के कारण पाया जाने लगा कि प्राय शाला के अपेक्षाकृत सुरक्षित पर्यावरण से आने वाले छात्र सहसा इतने विशाल शक्षिक क्षेत्र के बहुआयामी भविष्य में सम्भ्रान्त हो जाते थ अपने आपको खोया हुआ

सा पाते थ। इनके बाद बड़ विश्वविद्यालयों में जाकि प्रायः आप म छोटी मोटी नगरियाँ के सदृश ही थे शिक्षा चयन तथा समायोजन के अतिरिक्त भी कई अन्य समस्याओं का सामना प्रवेशार्थियों को करना पड़ता था। वहाँ के छात्रावास अथवा उसस बाहर आवास-स्थल प्राप्त करना भोजन विश्राम मनोरंजन की सुविधाओं के विषय म अवगत होना आंशिक समय व्यवसाय के अवसरों के विषय म सूचनाएं प्राप्त करना अथवा विविध भाँति के के ों से पुस्तकों प्राप्ति सम्बन्धी सहायता प्राप्त करना ये और इस प्रकार की अन्य कई समस्याएं थी जिनम महाविद्यालयी छात्र को सहायता की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार की सहायताएं देने हेतु विश्वविद्यालयों म भाँति भाँति के व्यवस्थित अभिस्थापन कार्यक्रमों की भी आयोजना होन लगी। निर्देशन के सम्प्रत्यय के इस विस्तृत विकास म हम दो प्रकार का परिवतन स्पष्ट देखते हैं प्रथम तो वयस्तर सम्बन्धी तथा द्वितीय जीवन के आयाम सम्बन्धी। वयस्तर म निर्देशन के काय क्षेत्र का विस्तार माध्यमिक कक्षा के नवकिशोरों से महाविद्यालय की उच्च कक्षाओं म अध्ययन करने वाले व्यक्तियों तक हुआ। जीवन आयामों के दृष्टिकोण से निर्देशन काय केवल व्यवसाय चुनाव म सहायता देने से विस्तृत होकर अब शैक्षिक व्यावसायिक व्यक्तिगत तथा सामाजिक सभी प्रकार के क्षेत्रों म व्यक्ति का मार्गदर्शन करने म विस्तृत होने लगा।

(ख) भारत म

इस प्रकार के विस्तार का भारत म परीक्षण करने पर पुनः वही ऐतिहासिक समानान्तरता पाई जाती है जोकि इस बिन्दु के पूर्वांश विवेचना म हम दृष्टिगोचर हुई थी। भारतवर्ष म भी निर्देशन का मानव के व्यक्तिगत सामाजिक प तक विस्तार महाविद्यालय म प्रवेश पाने वाले नवयुवक-युवतियों अथवा उच्चत्तर माध्यमिक शालाओं की अंतिम कक्षाओं म सन्निशिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र छात्राओं की समायोजन-समस्याओं म हुआ। हमारे यहाँ भी सह शिक्षा और सक्रामक वय दोनों ने मिलकर निर्देशन कार्यकर्ताओं का ध्यान इस वय की विशेष कठिनाईयों के प्रति आकर्षित किया। मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र म प्रगतिगामी बड़ौदा विश्वविद्यालय म प्रथम बार विद्यार्थी निदेशन की व्यवस्थित रूप से स्थापना हुई। यो इस वयस्तर पर तथा महाविद्यालयों म छात्रों के व्यक्तिगत सामाजिक समायोजन म निर्देशन की आवश्यकता की संवेदना तो भारत म कई स्थानों पर हुई किन्तु इस सम्बन्ध म व्यावहारिक काय बहुत अधिक नहीं हो पाया। बम्बई तथा दिल्ली के महाविद्यालयों से सम्बन्धित कतिपय व्यक्तियों ने इस विषय पर साहित्य-सृजन अवश्य किया किन्तु इसका कोई प्रकार्यात्मक स्वरूप हमारे यहाँ स्पष्ट रूप से विकसित नहीं हो पाया। सुरक्षित शालीय जीवन से महाविद्यालयों के अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र तथा स्व उत्तरदायित्वपूर्ण वातावरण म प्रविष्ट होते समय तथा उस शिक्षा स्तर पर अध्ययन अध्यापन की परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ म भी महाविद्यालय म प्रवेश पाने वाले छात्रों को कई बार विविध समञ्जन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस

प्रकार की कठिनाइयों मे निर्देशन देने की ओर भारतीय कार्यकर्ताओं ने कोई सक्रिय कदम नहीं उठाए। इसके अतिरिक्त हम देख चुके हैं कि बढ़ती हुई विद्यार्थी संख्या वाले विशाल विश्वविद्यालयों की अपनी कतिपय विशिष्ट समस्याएं होती हैं। अतएव ऐसे स्थानों पर पश्चिम में नवीन प्रवेशार्थियों के लिये व्यवस्थित रूप से अभिस्थापन कार्यक्रमों का आयोजन करना निर्देशन का एक विशिष्ट उत्तरदायित्व समझा जाता है। भारत में इस प्रकार की भी चेतना विशिष्ट रूप से परिलक्षित नहीं हुई। वस्तुतः भारतवर्ष में व्यक्तिगत निर्देशन का सम्प्रत्यय सैद्धान्तिक स्तर पर ही थोड़ा बहुत विकसित हो पाया। अधिकांश में वह शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन तक ही सीमित रहा।

(४) इस सम्प्रत्यीय विस्तार के अभिप्रेत अर्थ

गत अंशों में निर्देशन शब्द के साथ प्रयुक्त विविध उपसर्गों के संयुक्त होने की जिस विकासात्मक गाथा का हमने पश्चिम तथा भारत दोनों स्थानों पर विहंगावलोकन किया उसमें निर्देशन के सम्प्रत्यय सम्बन्धी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य उभरता सा दृष्टिगोचर होता है। निर्देशन शब्द के साथ मानव जीवन के अधिकाधिक क्षेत्रों से सम्प्रत्यय उत्तरोत्तर रूप से संयुक्त होकर इन विविध क्षेत्रों के अन्तर्सम्बन्ध की ओर स्पष्टरूपेण इंगित करते से प्रतीत होते हैं। हमने देखा कि शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक निर्देशन में कोई विभाजन नहीं था। बल्कि वे कालान्तर में एक दूसरे के पूरक के रूप में ही विकसित हुए। तत्पश्चात् पाया गया कि मानव की शैक्षिक-व्यावसायिक समस्याओं को भी उसके व्यक्तिगत सामाजिक प्रश्नों की शून्यता में देखना सम्भव नहीं था। अतएव निर्देशन के कार्यों में व्यक्ति के इन पक्षों या समस्याओं को भी समाहित किया गया। किन्तु ध्यान देने का तथ्य यह रहा कि किसी भी क्षेत्र में निर्देशन का कार्य एक दूसरे पक्ष की शून्यता में नहीं हो सका।

यह वास्तविकता मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की अन्तर्सम्बन्धित सुसंगठितता को सुस्पष्ट करती है। व्यक्ति न केवल शैक्षिक पक्ष होता है न केवल व्यावसायिक अथवा केवल सामाजिक। मानव व्यक्तित्व एक ऐसी सम्बद्ध इकाई है जहाँ एक पक्ष की स्थिति अन्य पक्षों की गतिविधियों पर प्रभाव डालती है। इस तथ्य का विशिष्ट विवेचन तो अगले अध्यायों में प्रस्तुत किया जावेगा। यहाँ तो निर्देशन के सम्प्रत्ययीय विकास से सम्बन्धित तथ्य के रूप में ही इस पर कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे।

तो सम्प्रत्ययीय दृष्टिकोण से पूर्व विवेचनों के आधार पर अब हम यह कह सकते हैं कि निर्देशन शब्द के पूर्व किसी भी क्षेत्रवाचक (कार्यवाचक) विशेषण का प्रयोग करना मानो निर्देशन के विस्तृत कार्य को उस विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित कर देना होगा। इस प्रकार की सीमाएं बहुपक्षी मानव व्यक्तित्व की प्रकृति के ही विपरीत हैं। निर्देशन कार्यकर्ताओं ने अपने कार्य अनुभव से इस तथ्य का वास्तवीकरण किया। जीवन के व्यावसायिक क्षेत्र की समस्याओं में कार्य प्रारम्भ करने के कारण व्यावसायिक उपसर्ग द्वारा ही इसके कार्य की परिधि की व्याख्या हो सकती थी शैक्षिक क्षेत्र तक कार्य विस्तार हो जाने पर शैक्षिक व्यावसायिक दोनों विशेषणों का

प्रयोग होने लगा। तत्पश्चात् छात्रों की सामाजिक व्यक्तिगत समस्याओं की सचनतना ने इस पक्ष में भी निर्देशन की आवश्यकताओं को स्पष्ट किया।

यद्यपि व्यक्तित्व के उक्त सभी पक्षों की अन्तःसम्बद्धिता के विषय में निर्देशन कार्यकर्त्ता स्पष्ट हो चुके थे फिर भी इस अन्तःसम्बन्ध को व्यक्त करने हेतु निर्देशन शब्द के पूर्व चार विश्लेषण शैक्षिक व्यावसायिक सामाजिक व्यक्तिगत प्रयुक्त करना अटपटा सा लगता था। अतः के सरल तथा स्वाभाविक मार्ग था सभी पूर्व उपसर्गों को हटा देना तथा केवल निर्देशन शब्द का प्रयोग करते हुए इसके सम्प्रत्यय में इन सभी पक्षों में कार्य करने की आवश्यकता को निहित मानना।

शाब्दिक प्रयोग तथा व्यावहारिक कार्यक्षेत्र दोनों ही दृष्टिकोणों से कालान्तर में निर्देशन के सम्प्रत्यय में इसी प्रकार का विकास हुआ। किन्तु उस विकसित कार्यात्मक स्वरूप की व्याख्या करने के पूर्व एक और महत्त्वपूर्ण प्रभाव निर्देशन के क्षेत्र पर पड़ा। चूँकि इस प्रभाव ने न केवल निर्देशन के सम्प्रत्यय अपितु उसकी कार्य विधाओं को भी कई मानों में प्रभावित किया इसलिए निर्देशन के आधुनिक स्वरूप तथा कार्य उपागम के विवेचन के पूर्व उसे भी इसके सम्प्रत्यय की विकासमान गाथा में समाहित करना समीचीन होगा।

(४) प्रथम महायुद्ध निर्देशन पर मनोविज्ञान का प्रभाव

(क) मनोवैज्ञानिक उपकरणों का उद्भव—निर्देशन के प्रारम्भिक बीजांकुरों के अध्ययन में हम देख चुके हैं कि व्यवस्थित निर्देशन का जन्म औद्योगिक क्रान्ति के बदलते युग में नवकिशोरों को जीवन समायोजन हेतु सहायता देने के उदार प्रयत्नों में हुआ था। यहाँ स्वयं सेवा करने वाले व्यक्ति न तो शिक्षाविद् थे न मनोविज्ञानवेत्ता। वे तो उदार धार्मिक वृत्ति वाले परोपकारी नागरिक थे जो कि अपने साधारण ज्ञान तथा जीवन के अनुभवों के आधार पर ही इस सहायता का व्यवस्थित रूप से आयोजन करते थे। फलस्वरूप इनके द्वारा आयोजित निर्देशन को प्रेरित करने वाली सद्भावना अत्यन्त ही प्रशंसनीय थी। किन्तु इस सद्भावना उदार उपागम तथा परोपकार वृत्ति को आदर पूर्वक स्वीकार करते हुए भी यह तथ्य स्पष्ट था कि न तो इन प्रारम्भिक कार्यकर्ताओं की निजी पृष्ठभूमि वैज्ञानिक थी न इनके कार्य उपागमों अथवा विधाओं में कोई प्रचुर वस्तुनिष्ठता। निजी अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर ही वे व्यक्तिनिष्ठ उपागम लिए हुए जो कुछ भी कर सकते थे उतना सद्भावनापूर्वक अवश्य करते थे।

प्रथम महायुद्ध ने निर्देशन के नवजात कार्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ दिया। इस महायुद्ध की अवधि में सैनिक कार्यकर्ताओं के चयन नियुक्ति पदोन्नति प्रतिस्थापन आदि को विधिवत् सम्पन्न करने हेतु वैज्ञानिक उपकरणों का जन्म हुआ। ये उपकरण सेना के कार्य हेतु प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यवस्थित रूप से निर्मित किए जाते थे। उस समय में जितनी भी शोध अथवा पूर्व परीक्षण सम्भव हो सकता था उसे इन उपकरणों के निर्माण में विधिवत् अपनाया जाता था। आशा की जाती

था कि निरे अनुभव की अपेक्षा वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा किए परीक्षणों पर आधारित प्रागुक्तियां अधिक सही हो सकेंगी।

व्यक्तियों के सेना व्यवसायों में चयन नियुक्ति हेतु किए गए बहुमूल्य शोध तथा वैज्ञानिक उपकरणों की ओर निर्देशन कार्य में रत तत्कालीन औद्योगिकों तथा शिक्षाविदों का भी ध्यान आकर्षित हुआ। उन्होंने अत्यंत उत्साहपूर्वक इन उपकरणों का प्रयोग उद्योग तथा शिक्षा दोनों में ही करना प्रारम्भ कर दिया। इस घटना को हम शिक्षा में मनोविज्ञान के सूत्रपात के रूप में देख सकते हैं।

(ख) निर्देशन को मनोविज्ञान की देन—इस युग की नवीनतम विचारधारा तथा कार्यरीति निर्देशन के व्यावहारिक कार्य के लिए सेना हेतु बनाए हुए उपकरण अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। निर्देशन कार्यकर्त्ता अधिकाधिक यह अनुभव करते जा रहे थे कि व्यक्तियों को अर्थपूर्ण निर्देशन दे सकने हेतु वैयक्तिक विभिन्नताओं का वैज्ञानिक ज्ञान एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता है। उदीयमान नवीन व्यवसायों तथा उनमें भी प्रस्फुटित विविध विशिष्टीकरण शाखा उपशाखाओं का ज्ञान तो फिर भी लिखित साहित्य अनौपचारिक विचार विमर्श प्रत्यक्ष अनुभव अथवा सामान्य ज्ञान के आधार पर अधिकांश में प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु सजटिल व्यक्तित्व के नाना अमूर्त लक्षणों का केवल अनुभव अनुमान के आधार पर निश्चय करना अन्य अधिक वैध एवं विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता था। अतः अधिक वैज्ञानिक आधार पर व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रागुक्तिकरण करने वाले नवीन मनोवैज्ञानिक उपकरणों का निर्देशन कार्यकर्त्ताओं ने अत्यन्त ही उत्साहपूर्वक स्वागत किया। अब तक व्यक्तियों को जो सहायता केवल निजी अनुभव तथा सामान्य ज्ञान के आधार पर दी जाती थी उसके स्थान पर अब निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को वैज्ञानिक साधनों का अधिक विश्वासपूर्ण आधार प्राप्त हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निर्देशन आन्दोलन को मनोविज्ञान की सबसे बड़ी देन यह रही कि उसने निर्देशन को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। निजी अनुभव तथा सामान्य ज्ञान द्वारा दी गई व्यक्तिनिष्ठ सलाह का प्रतिस्थापन वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक उपकरणों के आधार पर व्यवस्थित रूप से प्रायोजित 'निर्देशन' से हुआ।

(ग) इस देन का दूसरा पक्ष—मनोविज्ञान की निर्देशन को उक्त देन एक अमिश्रित वरदान के रूप में नहीं आई। वस्तुतः निर्देशन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के साथ साथ उसने निर्देशन के सम्प्रत्यय में एक अवाञ्छनीय सीमितता को प्रविष्ट किया। वह सीमितता थी—निर्देशन कार्यक्रमों को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के पर्याय रूप में देखना।

मनोवैज्ञानिक उपकरणों के दर्शनीय स्वरूप तथा वैज्ञानिक उपायों के आकर्षण से मनोविज्ञान में अप्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित व्यक्ति भी इनका अनाधिकार प्रयोग करने हेतु अग्रसर होने लगे। दो महायुद्ध के बाद में भी कभी कभी समय की कमी से कई नवीन मनोवैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग उनकी वैधता विश्वसनीयता

के पर्याप्त पूर्व-परीक्षण के बिना ही प्रारम्भ हो जाया करता था। ये उपकरण इनके प्राथमिक स्वरूपों में ही शिक्षा तथा निर्देशन के क्षेत्र में भी अपनाये जाते थे। पश्चिम में तो उक्त दोनों प्रवृत्तियां तुरन्त ही राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षण संस्थाओं की स्थापना करके नियन्त्रित की गईं। ये संस्थाएं मनोवैज्ञानिक उपकरणों का विधिवत् निर्माण करती थीं, निर्मित उपकरणों के राष्ट्रीय मानक विकसित करती थीं तथा प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक उपकरणों द्वारा प्राप्त दत्त सामग्री का विधिवत् विवेचन करने की सेवाएं प्रदान करती थीं।

किन्तु इन संस्थाओं के इस योगदान के बावजूद भी मनोविज्ञान के निर्देशन कार्य पर पड़े संप्रत्यय सम्बन्धी प्रभाव का समुचित नियन्त्रण नहीं हो सका। चूंकि मनोवैज्ञानिक परीक्षण का एक चकाचौंधमय आयोजन शास्त्र के सामान्य से प्रवीण होने वाले तमाम कार्यक्रमों को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता दृष्टिगोचर होता है इसलिए इसकी दर्शनीयता से प्रभावित होकर शालीय कार्यकर्ताओं ने केवल परीक्षण के निये ही परीक्षणों का उपयोग करना चाहा। स्पष्ट है कि इस परिस्थिति का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुआ—साधन साध्य में सम्भ्रान्ति। हम देख चुके हैं कि निर्देशन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था वैयक्तिक विभिन्नताओं एवं वातावरण विशिष्टताओं के व्यापक अध्ययन तथा समुचित मान के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को उसके अनुकूलतम समायोजन एवं विकास हेतु बोधगम्य तथा विश्वसनीय सहायता प्रदान करना। इस दृष्टिकोण के अनुसार तो इन विभिन्नताओं के अवबोध अथवा विशिष्टताओं के अध्ययन हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले सभी उपकरण साधन मात्र हैं। अन्ततोगत्वा व्यक्ति का सुखी समायोजन ही एक अन्तिम साध्य के रूप में देखा जाना चाहिये। नवीन साधनों के वैज्ञानिक स्वरूप से असन्तुलित रूप से प्रभावित होकर कार्यकर्ताओं ने इन्हें ही अन्तिम साध्य मान लिया। एक साधन मात्र को ही साध्य मान बैठने से साध्य की प्राप्ति में जो अवरोधन हो सकता है उसके प्रति पश्चिम में निर्देशन कार्यकर्ताओं की संवेदना कुछ काल पश्चात् जाग्रत हो गई तथा वे इस दिशा में त्रुटि करने से सम्भल गए।

भारतवर्ष का शिक्षा क्षेत्र तथा उदीयमान निर्देशन कार्य भी एक सीमा तक सुरक्षा सेवाओं के उच्चस्तरीय मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उच्च स्तरीय मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से आकर्षित हुआ था। किन्तु सेना के कार्य के लिये परीक्षण प्रायः गोपनीय हुआ करते थे। अतः सामान्य जनता उनका प्रयोग नहीं कर सकती थी। भारत में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्राथमिक प्रयोगों के सम्बन्ध में एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह रही कि इन उपकरणों का इसी देश की जनता पर निर्माण करने के बजाय कार्यकर्ताओं ने पश्चिमीय पृष्ठभूमि में विकसित तथा वहां की जनसंख्या पर मानकीकृत साधनों को यथावत् अंगीकार करके उनका भारतीय जनता पर अन्धाधुन्ध उपयोग किया। अनुपयुक्त साधनों द्वारा मापे जाने वाले अमूर्त वैयक्तिक लक्षणों का अनुमान विश्वसनीय नहीं हो सकता तथा इन मापों के आधार पर की गई भविष्योक्ति में भी वैधता का अभाव हो सकता है। इस ओर हमारे कार्यकर्ताओं का ध्यान नहीं गया।

शनः शनः इस तथ्य की ओर सवेदनाएं जागत हुई तथा पश्चिमीय उपकरणों को यथातथ्य अंगीकार करने के स्थान पर उनके अनुकूलन के प्रयत्न होने लगे। समय की गति के साथ भारतीय जनता को आधार मान कर स्वतन्त्र रूप से इसी जन संख्या हेतु परीक्षण निर्माण करने का काय भी प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार के निर्माण काय तथा अनुकूलन प्रमलों के विषय में उपयुक्त स्थल पर विशद चर्चा की जावेगी। यहां तो ज्ञान की विविध गतिविधियों का निर्देशन के परिवर्तित संप्रत्यय पर जो प्रभाव पड़ा उसी से हमारा प्रत्यक्ष वास्ता है।

भारतवर्ष में इन परीक्षणों के उपयोग का सबसे अधिक अवांछनीय प्रभाव पड़ा निर्देशन के संप्रत्यय पर। विशेष कर—मनोविज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के क्षेत्र में पश्चिम से अपेक्षाकृत पिछड़े हुए होने के कारण भारतीय कार्यकर्ताओं ने कदाचित प्रतिक्रिया स्वरूप इस वैज्ञानिक भासित होने वाले—कार्यक्रम को एक असन्तुलित प्राधान्य दिया। सर्वप्रथम तो निर्देशन के क्षेत्र में वे लोग काय कर रहे थे जिन्हें निर्देशन के दर्शन में दीक्षा के स्थान पर पश्चिमी देशों में मनोविज्ञान में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ था। इनके साथ भारत में मनोविज्ञान में प्रशिक्षित अथवा अर्धप्रशिक्षित कार्यकर्ता भी निर्देशन काय की ओर उन्मुख थे। इनके सम्मिलित प्रारम्भिक उत्साह में कभी-कभी यह मूल मनोवैज्ञानिक तथ्य दृष्टि से परे हो जाता था कि अवध उपकरण के प्रयोग पर आधारित प्राक्कथित करने की अपेक्षा अनुभव के आधार पर दी गई राय कम हानिकारक होती है।

निर्देशन काय को वैज्ञानिक बनाने हेतु कई बार मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रशासन तथा गणन ही पर्याप्त समझा जाता था तथा अधिक महत्त्वपूर्ण काय निर्वचन को इतना अधिक महत्त्व नहीं मिल पाता था। स्पष्ट है कि परिणामस्वरूप निर्देशन क्षेत्र में साधन साध्य की सम्भ्रान्ति हमारे देश में व्यापक रही। दुर्भाग्यवश अभी भी यह सम्भ्रान्ति निर्देशन तथा मनोविज्ञान दोनों के ही क्षेत्र में से तिरोहित नहीं हो पाई है। अभी भी कई उत्तरदायी पदों पर शिक्षित व्यक्ति केवल निष्पादन परीक्षणों को समानता ही मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से करने को सहमत होते हैं। उनके विचार में जब तक वैज्ञानिकी-तकनीकी यन्त्रों के सदृश प्रायोगिक तड़क भड़क उत्पन्न नहीं होती तब तक किसी उपकरण को मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानना उचित नहीं। आश्चर्य की बात है कि कई सहकारी अनुदान करने से **मनोवैज्ञानिक परीक्षणों** हेतु धनराशि केवल निष्पादन परीक्षण —जिन्हें उपकरण कहा जाता है—प्राप्त होती है। इस उपागम के अनुसार रोरशा तथा थीमेटिक अपरसेप्शन टेस्ट के सदृश उच्चस्तरीय सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण के सवर्ग में नहीं आते। उनके क्रय हेतु पुस्तकालय शीर्षक से अनुदान प्राप्त होना है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में मनोवैज्ञानिक परीक्षण का समीकरण अभी भी अधिकांश में वैज्ञानिकी आभासित होने वाली तड़क भड़क से है तथा निर्देशन

काय का समीकरण मनोवैज्ञानिक परीक्षण से।

निदशन म विशेष रूप स दीक्षित व्यक्ति इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न अवश्य कर रहे हैं। किन्तु सामान्य जनता के मानस म—तथा कई अशो म शिक्षा जगत म भी निर्देशन का सप्रत्यय इस सीमितता म ग्रस्त है। कई बार शाला अधिकारी अपने विद्यालयो म निर्देशन कायक्रम की कल्पना एक प्रभावपूर्ण मनोवैज्ञानिक परीक्षण आयोजन के रूप म ही करने पाए जाते हैं। उन्हें अभी इस बात का सवज्ञ तथा मनन न हो है कि निर्देशन के लिए उपयुक्त कई साधनो म से मनोवैज्ञानिक परीक्षण-व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाए एकत्रित करने का केवल एक उपकरण है। निर्देशन म इस साधन को सही भूमिका के विषय म तो यथा स्थान विवेचन करेंगे। यहा पर तो निर्देशन के परिवर्तित सप्रत्यय म मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रभाव का विवेचन मात्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

(५) निर्देशन के सप्रत्यय पर नवीनतम प्रभाव

निर्देशन के परिवर्तित सप्रत्यय पर जो सबसे अर्थपूर्ण आधुनिक प्रभाव पड़ा है वह है व्यक्ति के अध्ययन सम्बन्धी वतमान विचारधारा का। इस अग्रगामी चिंतन के अनुसार व्यक्ति के अवबोध हेतु एक अत्यन्त विस्तृत उपागम अपनाना वांछनीय समझा जाता है। उसके सर्वांगीण बहुपक्षी व्यक्तित्व के सम्पूर्ण ज्ञान हेतु न तो केवल एक शास्त्र पर्याप्त है न किसी भी शास्त्र द्वारा प्रयुक्त कोई सकीर्ण उपागम। फलस्वरूप जहा मानव के बहुआयामी व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु इस युग म नाना विज्ञानो का अन्तःशास्त्रीय उपागम अधिकाधिक रूप से स्वीकृत होता जा रहा है वहा मानव-व्यवहार का विशेष रूप स अध्ययन करने वाले मनोविज्ञान म भी सर्वांगिक उपागम को उत्तरोत्तर मान्यता प्राप्त होती जा रही है।

चूकि इस युग म निर्देशन को शिक्षा-क्षेत्र का एक अतरग भाग स्वीकार किया जा रहा है इसलिए यह भी स्वाभाविक ही था कि उस पर आधुनिक शिक्षा दशन का प्रभाव पड़े। केवल जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा के सकुचित ध्येय से विस्तृत होकर आज के जनतात्रिक शिक्षा-दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सतत सर्वांगीण विकास है। तदनुसार शिक्षा के अग निर्देशन का उद्देश्य भी व्यवसाय प्राप्ति में सहायता की सीमित परिधि से बहुपक्षी व्यक्ति को बहुआयामी सहायता के रूप म विस्तृत हुआ।

इस स्थल पर अब निर्देशन के कार्यक्षेत्र म प्रयुक्त कतिपय शब्दावलियो का विवेचन निर्देशन के सप्रत्यय विकास के अनुवर्तन में करने के पश्चात हम आधुनिक युग म निर्देशन के स्वीकृत स्वरूप की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

निर्देशन शब्दावलियों का स्पष्टीकरण

किसी भी नवीन कार्यक्षेत्र का प्रारम्भ करने की प्राथमिक कठिनाई होती हैं सम्बधित शब्दावलियो का निर्धारण। यह निर्धारण दो प्रकार से हो सकता है। या तो नूतन शब्दावली का नए सिरे से निर्माण हो सकता है अथवा सामान्यतः प्रचलित शब्दा

म स ही प्राय समानार्थी शब्दों का चयन करके इन शब्दों को क्षत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकी अर्थ दे दिया जाता है। मानव व्यवहार के विज्ञान ने सामान्यत द्वितीय उपागम को ही अपनाया जिसके स्वभावत अधिक लोकप्रिय होने की सम्भावना है। विकासमान मनोविज्ञान का एक विशिष्ट अनुप्रयुक्त स्वरूप होने के कारण निर्देशन के क्षेत्र ने भी इस सम्बन्ध में मनोविज्ञान के उपागम को ही अपनाया।

किन्तु इस उपागम को अपनाने में इस क्षेत्र म एक कठिनाई रही। निर्देशन के ऐतिहासिक विकास की जो गाथा हमने पूर्व शा म पढ़ी उसमें निर्देशन के स्वरूप सम्बन्धी कई सम्भ्रान्तियों की कहानी भी छनी मिली है। निर्देशन सम्बन्धी विकासमान शब्दावलियों पदावलियों का अध्ययन भी ऐसी ही कतिपय मत्प्रत्यीय सम्भ्रान्तियों की ओर संकेत करता है। इसीलिए निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप का विवेचन इन शब्दावलियों के स्पष्टीकरण के बिना अधूरा ही रह जायगा। अतएव कतिपय सम्बन्धित शब्दावलियों के उद्भव विकास एव गुणार्थ का संक्षिप्त विवरण निम्न अनुच्छेदों म प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) मार्ग दर्शन एव निर्देशन

हम देख चुके हैं कि भारतवर्ष म व्यवस्थित निर्देशन का सम्प्रत्यय विकसित होने में पश्चिम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। निर्देशन के लिए अंग्रेजी शब्द है गाइडेंस जिसकी मार्गदर्शन स समानता है। प्राय नवीन स्थान पर राह दिखाने वाले को गाइड कहा जाता है तत्पश्चात् गाइड का गुणार्थ नवीन स्थान पर राह दिखाने वाले उस स्थान सम्बन्धी ज्ञान सूचना भी प्रदान करने वाले तक विस्तृत हुआ। फलस्वरूप गाइडेंस का अर्थ हुआ किसी विषय वस्तु स्थल या व्यक्ति सम्बन्धी ज्ञान-सूचना प्रदान करना। शिक्षा व्यवसाय अथवा जीवन के सम्बन्ध म गाइडेंस के समानार्थी मार्गदर्शन का प्राथमिक प्रयोग उसके लक्ष्यार्थ के अनुसार ही हुआ। जिस प्रकार एक गाइड स्थल स्थानों म अनजाने लोगों को मार्ग दिखाता है उस स्थल सम्बन्धी सही सूचनाएं उपलब्ध करता है उसी प्रकार मानव जीवन के कई अपरिचित क्षेत्रों में प्रविष्ट होते समय जो विशेषज्ञ सम्बन्धित ज्ञान सूचनाएं प्रदान कर सके वह गाइड कहला सकता था तथा उसके द्वारा दी गई विशिष्ट सहायता मार्ग दर्शन कहलाती थी। निर्देशन के लिए प्रयुक्त इस आदर्श पदावली की एक विशेषता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। दर्शन का शब्दार्थ दिखाने से अधिक स्वयं देख सकना के अधिक निकट है। मैं समझती हूं स्वयं देख सकना का गुणार्थ निर्देशन के विशिष्ट ध्यान स अधिक सम्बन्धित है जहां व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से निश्चित राह दिखा देने के बजाय सम्बन्धित सूचनाओं के आधार पर उसे स्वयं अपनी राह का दर्शन कर सकने हेतु समर्थ बनाया जाता है। वस्तुत निर्देशन द्वारा दिया गया दर्शन केवल मार्ग का ही दर्शन नहीं—अपितु व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं का भी सही मात्र में दर्शन होता है। हिन्दी भाषा में कई व्यक्तियों द्वारा गाइडेंस के लिए मार्ग-दर्शन शब्द का प्रयोग इसके प्रारम्भिक काल में देखने में आता है। किन्तु

चूंकि मार्ग-दर्शन में मार्ग पर ही अधिक बल दिया सा प्रतीत होता है इसलिए इस शब्द का निर्देशन के क्षेत्र से स्वाभाविक विकास एवं दृष्टि से तो ठीक नहीं हुआ। अभी भी अनौपचारिक क्षेत्रों में इच्छित सहायता के लिए मार्ग-दर्शन शब्द का प्रयोग सामान्यतः प्रचलित है। किन्तु वैज्ञानिक निर्देशन के क्षेत्र में अब इसका विशेष प्रयोग नहीं पाया जाता।

(२) निदेशन एवं निर्देशन

उक्त दोनों शब्दों में एक निकट शाब्दिक साम्य होने पर भी दोनों के दार्शनिक निहितार्थों में बहुत अन्तर है। भारत में शिक्षा मन्त्रालय द्वारा तकनीकी शब्दावली का निर्माण होने के पूर्व निर्देशन शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के Direction शब्द के समानार्थ में होता था। तदनुसार डायरेक्टर को निदेशक तथा डायरेक्टोरेट को निर्देशालय कहा जाता था।

शाब्दिक गुणार्थ के अनुसार डायरेक्शन शब्द में एक आदेश एवं अधिकार की भावना निहित रहती है जिसकी कि गाइडेंस शब्द के विकासमान दर्शन से न केवल प्रत्यक्ष असंगति अपितु प्रत्यक्ष विरोधिता है। इधर सामान्य बोलचाल में गाइडेंस के लिए मार्ग-दर्शन निर्देशन परामर्श आदि कई शब्द चल पड़े थे। अतएव तकनीकी शब्दावली आयोग ने डाइरेक्शन के लिए निर्देशन तथा गाइडेंस के लिए निदेशन शब्द निश्चित करके इन दोनों समरूपी शब्दों के गुणार्थों में स्पष्ट विभेद कर दिया। डायरेक्शन तथा गाइडेन्स इन दोनों ही अंग्रेजी के शब्दों में निहित विभिन्न दर्शन के अनुसार यह विभेदीकरण उपादेय ही रहा। निदेशन के समान निर्देशन के प्रक्रम में कभी आज्ञा या आदेश नहीं दिया जाता वहाँ अनुमति सम्मति देने का भी प्रश्न उपस्थित नहीं होता। निदेशन द्वारा कार्य करवाया जाता है निर्देशन द्वारा व्यक्ति स्वयं करता है। निदेशन द्वारा करवाए हुए कार्य का उत्तरदायित्व सामान्यतः निदेशक पर होता है निर्देशन द्वारा किए गए कार्य में व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र उत्तरदायित्व निहित रहता है। निदेशन द्वारा करवाए हुए कार्य के परिणामों के लिए भी जहाँ निदेशक उत्तरदायी होता है वहाँ निर्देशन के फलस्वरूप किए गए कार्य के परिणामों को व्यक्ति ही स्वयं स्वीकार करता है।

(३) निर्देशन-परामर्श

जैसा कि कह चुके हैं निर्देशन कार्य के लिए प्रयुक्त प्रारम्भिक शब्दावलियों में परामर्श का प्रयोग भी पाया जाता है। परामर्श का शाब्दिक अर्थ है राय देना। निर्देशन के प्रक्रम में प्रत्यक्ष रूप से कोई निश्चय देने हेतु व्यक्ति को राय नहीं दी जाती। उसे केवल परिस्थिति विशेष की विश्वसनीय सूचनाएँ तथा उसके स्वयं के विषय का वैज्ञानिक ज्ञान एक दूसरे से सम्बन्धित करके इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह इस चित्र के आधार पर व्यक्ति स्वयं अपने को राय दे सके अर्थात् उक्त सामग्री के दर्शन द्वारा स्वयं अपना उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय ले सके। हम देख चुके हैं कि व्यवस्थित निर्देशन के प्रारम्भिक काल में तो परिवार व्यवस्था द्वारा नवयुवकों

को व्यवसाय चयन सम्बन्धी परामर्श ही दी जाती था यह परामर्श उनके जीवन अनुभव पर ही आधारित रहती थी तथा स्वभावत एक व्यक्तिनिष्ठ रूप लिए रहती थी। निर्देशन पर मनोविज्ञान के प्रभाव के पश्चात इस परामर्श म न केवल एक वाञ्छनीय वस्तुनिष्ठता प्रविष्ट होती गई अपितु यह प्रक्रम वैज्ञानिक आधार पर स्वय व्यक्ति द्वारा लिए गए उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय मे परिवर्तित होती गई।

(४) निर्देशन एव अनुदेश

निर्देशन के सप्रत्यय का व्यावसायिक सहायता की परिधि से जब शिक्षा के क्षेत्र तक विस्तार हुआ तब "व्यावसायिक शक्षिक" निर्देशन की अन्तसर्वा धता अधिकाधिक रूप से स्वीकृत होने लगा तब एक सम्भावित सम्भ्रान्ति कतिपय कार्यकर्ताओ के विचारो म दृष्टिगोचर होने लगी। शिक्षा का उद्दश्य उत्तरोत्तर रूप से व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा समुचित समायोजना के रूप म स्वीकारा जा रहा था। शिक्षा क क्षेत्र से अधिकाधिक सम्बन्धित होता हुआ निर्देशन का विकासमान स्वरूप भी इसी अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जा रहा था। अतएव एक स्वाभाविक शका निर्देशन की आवश्यकता के ही सम्बन्ध म कतिपय विचारको क मन म उत्पन्न होने लगी। प्रश्न उठ कि दोनो के ध्येयो मे क्या अन्तर है? यदि दोनो के प्रक्रमो क ध्येय एक ही हैं— तो निर्देशन का कार्यक्रम क्या एक अतिरिक्त योजना नही है?

मोटे रूप से उक्त सन्दर्भ म शिक्षा एव निर्देशन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध तो पूर्व अध्याय के अन्तिम अश से स्पष्ट किया जा चुका है। यहा पर विशिष्ट रूप से शास्त्रीय अनुदेश के सन्दर्भ म निर्देशन का अर्थ तथा उद्दश्य स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा।

यह सत्य है कि शास्त्रीय अनुदेश सेवाओ द्वारा भी व्यक्ति का निर्देशन ही किया जाता है। किन्तु अनुदेश का निर्देशन सर्वप्रथम तो समूह केन्द्रित होता है दूसरे व्यक्ति विकास का स्पष्ट आदर्श स्वीकार करते हुए भी व्यावहारिक रूप म तो वह विषय-केन्द्रित ही होता है। अनुदेश द्वारा दिए गए निर्देशो का एक निर्धारित समय सीमा म पारण हो जाना अपेक्षित है जब कि निर्देशन को समय के बन्धन में नही बाधा जा सकता। एकक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताओ के सन्दर्भ में व्यक्ति-केन्द्रित निर्देशन का कार्य अपनी गति से चलता है। यो सामान्य शैक्षिक व्यावसायिक सूचनाए प्रसारित करने हेतु निर्देशन सेवाओ की योजना भी समूह परिस्थिति में होती है किन्तु अन्ततो गत्वा निर्देशन का कार्य व्यक्ति को ही लेकर अग्रसर हो सकता है। अनुदेश-पश्चात परीक्षा के स्थान पर निर्देशन कार्य का मूल्याकन सतत अनुवर्तन द्वारा किया जाता है।

इस सन्दर्भ में एक बात ध्यान देने योग्य है। निर्देशन कार्य के भी विभिन्न कार्य स्तर होते है। अत्यन्त विस्तृत दृष्टिकोण से तो प्रत्येक अनुदेशक एक सीमा तक निर्देशन कार्यकर्ता कहा जा सकता है क्योंकि व्यक्ति के विकास के साथ वह उसे जीवन-समायोजन के लिए तैयार करता है। किन्तु कक्षा के सभी विद्यार्थियो को इस साधारण उद्दश्य से दिए गए अनुदेश के पश्चात जब विशिष्ट विद्यार्थियो को व्यक्ति

गत कठिनाइयों का बोध आता है तो अनुदेशक केवल विषय-स्तर तक ही सामान्यत इन कठिनाइयों में सहायता प्रदान कर सकता है। कई बार विषय वस्तु सम्बन्धी कठिनाइयों का सम्बन्ध भी कक्षा से बाहर की परिस्थितियों तथा विद्यार्थी के कतिपय मनोवैज्ञानिक घटकों में निहित हो सकता है। इस प्रकार की कठिनाइयों का निदान निवारण तथा उपचार एक सामान्य अनुदेशक के द्वारा सम्भव नहीं। अपने प्रशिक्षण कार्य भार तथा समय सीमा—सभी के दृष्टिकोण से इस प्रकार का विशेषता कार्य सभी सामर्थ्य सीमा से परे है। वस्तुत शिक्षक की विभिन्न कार्य भूमिकाओं में उसकी अनुदेशक की ही भूमिका इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसके परे उसके लिए बहुत अधिक कार्य करना सम्भव नहीं।

हाँ यह ध्यान रहे कि निर्देशन तथा अनुदेशन न केवल अन्तरंग रूप से परस्पर सम्बन्धित है अपितु इन दोनों से अन्तगत दी गई विद्यार्थी की सेवाएं एक दूसरे की पूरक होती हैं। विद्यार्थी को निर्देशन देने हेतु बहुत कुछ वैयक्तिक सूचना सामग्री शिक्षक द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है। और विद्यार्थियों को पर्यावरणीय सूचनाएं प्रसारित करने में भी उपबोधक को अनुदेशक की ही सहायता लेनी पड़ती है।

अतएव संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनुदेश तथा निर्देशन एक दूसरे के पूरक हैं किन्तु पर्याय नहीं।

(७) निर्देशन तथा उपबोधन

निर्देशन और उपबोधन दोनों ही मनोविज्ञान क्षेत्र की स्वीकृत तकनीकी शब्दावलियाँ हैं। ये दोनों ही एक दूसरे परस्पर सम्बद्ध प्रक्रमों के द्योतक हैं किन्तु समानार्थी नहीं हैं। फिर भी शिक्षा-क्षेत्र में कई बार इन पदों का अन्तर्विनिमित उपयोग पाया जाता है। अत क्षेत्रीय शब्दावलियों के स्पष्टीकरण में हमने इन दोनों पदों को भी समाहित करना समीचीन समझा।

वस्तुत निर्देशन एक विस्तृत कार्यक्रम है जिसका एक अत्यन्त ही विशिष्ट अंग उपबोधन कहलाता है। सम्पूर्ण निर्देशन कार्यक्रम की विविध व्यावहारिक सेवाओं में (जिनका वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया जायगा) उपबोधन एक केन्द्रीय सेवा है। व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण से सम्बन्धित विविध भाँति की सूचनाओं का जब संग्रह कर लिया जाता है तब उनके आधार पर व्यक्ति को उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय लेने में सहायता देने की कला को उपबोधन कहा जाता है। वास्तव में इस कला की प्रकृति अत्यन्त ही तकनीकी है। केवल वाणी के प्रमुख उपकरण से एक व्यक्ति को अपनी जीवन समस्याओं के विभिन्न पक्षों में प्रबुद्धता प्रदान करते हुए उस परिपक्वता को राह ले जाना उपबोधन की वार्तालाप कला द्वारा ही सम्भव है। उपबोधन का शाब्दिक अर्थ ही है विशेष प्रकार का बोध देना। यह बोध व्यक्ति को उसके पर्यावरण की पृष्ठभूमि में अपना वास्तविक चित्र देख सकने की क्षमता प्रदान करता है। अतएव हम कह सकते हैं कि जहाँ निर्देशन में व्यापक विस्तार है वहाँ उपबोधन में सूक्ष्म गहनता है। जहाँ निर्देशन की अपेक्षा उपबोधन पूर्व-सेवाएं व्यक्ति तथा उसके पर्या

वरण सम्बन्धी नाना प्रकार की सूचनाओं के एकत्रित करने से सम्बन्धित है वहा उपबोधन में एकत्रित सामग्री के निवचन का तकनीकी काय सम्पन्न होता है। काय कर्ताओं की दृष्टि से वहा निर्देशन के सामान्य काय में अन्य शालीय सामाजिक तथा घरेलू अभिकरणों का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है वहा उपबोधन का सूक्ष्म वज्ञानिक काय एव विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। समूचे निर्देशन काय का केन्द्र उपबोधन है किन्तु पुन उपबोधन का प्रबुद्ध प्रकाश समूचे निर्देशन कायक्रम को भी आलोकित करता रहता है। प्रशिक्षित उपबोधक नाना स्तरों पर निर्देशन काय करने वाले अभिकरणों को एक प्रबुद्ध नेतृत्व प्रदान करता है।

निर्देशन का वज्ञानिक स्वरूप

निर्देशन के परिवर्तित सम्प्रत्यय की विकासमान गाथा तथा इस क्षेत्र से सम्बन्धित शब्दावली के स्पष्टीकरण में निर्देशन के वज्ञानिक स्वरूप का विवेचन स्थान स्थान पर कई बार आ चुका है। किन्तु कहीं कहीं पर पुनरावृत्ति की आशंका होने पर भी अध्याय के इस अन्तिम अंश में निर्देशन के आधुनिक वज्ञानिक स्वरूप का एक समाहारी चित्र कई मार्गों में उपयोगी रहेगा। परिवर्तित सम्प्रत्ययों के साथ हमने इस क्षेत्र के स्वरूप सम्बन्धित सम्भ्रान्तियों एव सीमितताओं का सकारण विश्लेषण किया। शब्दावलियों के विवेचन में भी किसी भी वैज्ञानिक क्षेत्र में अवाछनीय अन्तर्विनिमित शब्दावली प्रयोग का स्पष्टीकरण किया। अत यदि यह कहा जाय कि अभी तक के विवेचनों में सामान्यत निर्देशन क्या नहीं है की ही धारणाए अधिक स्पष्ट हुई हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अब निर्देशन के वज्ञानिक स्वरूप सम्बन्धी इन कारणों की निदाई हो जाने के पश्चात ही इस नूतन पुष्प का आधुनिक स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से हमारे मानस में प्रफुल्लित हो सकता है। इस चित्र की रेखाओं को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से हम कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की पृष्ठभूमि में सकी व्याख्या करने का प्रयत्न करेंगे।

(१) प्रक्रम का विस्तार

अपने आधुनिक स्वरूप के अनुसार निर्देशन एक अत्यन्त ही विस्तृत प्रक्रम है जिसका काय व्यक्तिजीवन के किसी एक या दो पक्षों तक ही या उसकी आयु के किन्हीं विशिष्ट स्तरों तक ही सीमित नहीं है। हमने अपने पूर्व अध्यायों के विवेचन में ही देख लिया था कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समस्याए हो सकती हैं और ये समस्याए होना मानव जीवन का एक सहज वास्तविकता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के विविध स्तरों पर उस वय विशेष की परिस्थितियों के अनुसार निर्देशन की आवश्यकता होती है। साथ ही उसके अन्तसम्बन्धी बहुआयामी व्यक्तित्व में ये समस्याए उसके जीवन के विविध पक्षों को अन्योन्याश्रित रूप से स्पर्श करती है। निर्देशन के विस्तृत प्रक्रम द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को दी गई वज्ञानिक सहायता उसे इन समस्याओं का सामना करने में अधिक समर्थ बनाती है। सक्षेप में कह सकते हैं कि

निर्देशन एक व्यक्ति को उसके सभी व्यवहारों पर दी जाने वाली वह बहुआयामी सहायता है जिससे वह अपने आन्तरिक स्वरूप तथा समूचे पर्यावरण का सही अवबोध प्राप्त कर सके तथा इस अवबोध के आधार पर सर्वोत्तम समायोजना को प्राप्त हो सके।

प्रत्येक व्यक्ति को दी जाने वाली यह सहायता वैयक्तिक दृष्टि के साथ साथ व्यक्तियों के सुखी अन्तःसम्बन्धों की भी द्योतक होती है।

(२) मानव का सन्तुलित विकास

स्वभाव से ही मानव स्वयं अपनी शक्तियों का अनुकूलतम उपयोग नहीं करता कई बार तो वह अपनी क्षमताओं से पूर्णरूपेण परिचित भी नहीं रहता। हम समझते हैं कि व्यक्तियों के सम्बन्ध में यहाँ कवि ग्रे (Gray) की निम्न पंक्तियाँ मानवीय क्षमताओं पर भी कई मानों में लागू हो सकती हैं —

Full many a gem
of purest ray serene
The dark unfathomed
caves of ocean bear
Full many a flower
is born to blush unseen
And waste its sweetness
to the desert air

व्यावसायिक निर्देशन अपने वैज्ञानिक साधनों द्वारा यह प्रयत्न करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का सही अवबोध हो सके जिससे वह अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग कर सके।

व्यक्ति के सन्तुलित विकास हेतु उसके लिए अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं के साथ-साथ अपनी दुर्बलताओं तथा सीमितताओं का भी सही अवबोध आवश्यक है। अपनी सीमितताओं के अज्ञान में कई बार व्यक्ति कतिपय अनुपलब्ध उद्देश्यों पर दृष्टि गड़ा कर अपनी क्षमताओं की परिधि में आने वाले लक्ष्यों को भी भुला बैठता है। ऐसी परिस्थिति में दोनों ओर से केवल निराशा ही होगी। वह अनावश्यक कुण्ठा व भग्नाशा का शिकार बन जाता है जो कर सकता है वह भी नहीं कर पाता तथा जो नहीं कर सकता उसकी निराशा में दुःखी होता है तथा दूसरों तक भी अपना दर्द ही प्रसारित करता है। व्यक्ति को अपनी क्षमताओं तथा सीमितताओं दोनों के सन्दर्भ में अपनी वास्तविक तस्वीर दिखा कर ही निर्देशन के उत्तरदायित्व की इतिश्री नहीं हो जाती। एक पद अग्रसर होकर यह व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुकूल अवसरों की सूचना भी प्रदान करता है। तथा उन अवसरों में उसके नियोजन में भी सहायता प्रदान करता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार एक व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुकूलतम उपयोग हेतु दी गई इस सहायता द्वारा अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण

समाज का उनयन होगा। प्रत्यक व्यक्ति वयक्तिक रूप म तुष्ट होकर समाज को अपना श्रेष्ठतम योगदान दे सकेगा।

(३) सहायता —न कि सलाह

निर्देशन के वनानिक स्वरूप के समस्त विवेचना म पाठकों ने हमारे सहायता शब्द के निरन्तर प्रयोग पर ध्यान दिया ही होगा। यदि यह कहा जाए कि सहायता सम्पूर्ण निर्देशन क्षेत्र का मौलिक कुंजी शब्द है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। निर्देशन से सम्बन्धित शब्दावलियों के स्पष्टीकरण म ही हमने सलाह न देने के बिन्दु पर पर्याप्त बल दिया था। यह स्पष्ट है कि सलाह देने का प्रक्रम अपेक्षाकृत सरल तथा लघु है। किसी समस्या म दुखी व्यक्ति के सम्मुख समस्त सम्बन्धित सूचना सामग्री प्रस्तुत करना तथा उसे उस सामग्री के अवबोध के आधार पर निर्णय लेने की ओर अग्रसर करना न केवल उपबोधक के लिए एक समय लेने वाला प्रक्रम है अपितु उपबोध्य के धैर्य की भी सच्ची परीक्षा है। कभी तो व्यक्ति स्वय चाहता है कि कोई मुझे बता दे क्या करना है। इस प्रकार के बता देने से वह न केवल अपनी समस्या से त्वरित मुक्ति चाहता है अपितु अचेतन रूप से निश्चय के उत्तरदायित्व से भी मुक्त होना चाहता है। किन्तु प्रवीण सहायता प्राप्त करके जब व्यक्ति अपनी समस्या स्वय सुलझाता है तो न केवल उसे आत्मपूर्ति का सन्तोषप्रद अनुभव होता है अपितु अन्य समस्यात्मक परिस्थितियों म उसे पुनः उपबोधक के पास नहीं दौड़ना पड़ता। मनोवैज्ञानिक शब्दावली म हम कह सकते हैं कि वह परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है क्योंकि निर्देशन की सहायता द्वारा अपनी समस्याओं का स्वतन्त्रतापूर्वक सामना करने म अधिक समर्थ होता है।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय म हमने निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप का विहगावलोकन किया। उसके विकासात्मक स्वरूप का गाथा म उसके परिवर्तित सम्प्रत्ययों का सकारण विश्लेषण किया तथा निर्देशन के क्षेत्र म प्रचलित शब्दावलियों का भी विधिवत् विवेचन किया।

इस पृष्ठभूमि म निर्देशन के आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप का एक सुस्पष्ट चित्र हम पा सके।

इस चित्र के अनुवर्तन म अगले अध्याय म निर्देशन के मूल आधारों का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

———

व्यक्ति कामना करता है व भी उसकी आस्थाओं के अनरूप निश्चित होती है तथा उन्हें ही प्राप्त करने हेतु वह अपनी जीवन ऊर्जा लगा देता है। इस बिंदु का अधिक विस्तृत विवेचन अध्याय के अगले अंशों में किया जायगा। यहां तो व्यक्ति के जीवन मूल्यों के रूप में निर्देशन के मूल दार्शनिक आधारों का प्रतिपादन मात्र किया जा रहा है।

(२) स्वयं का दर्शन

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि निर्देशन का एक मुख्य उद्देश्य रहता है व्यक्ति को उसकी वास्तविक तस्वीर से परिचित कराना। अपने स्वयं के स्वरूप का वस्तुनिष्ठ दर्शन कर सकना तथा इस दर्शन के प्रकाश में अपनी जीवन योजनाएं ढाल सकने की क्षमता प्राप्त कर लेना ही कदाचित् वास्तविक दर्शन का सर्वोपरि लक्ष्य होता है। अपने निज के इस सही रूप में केवल व्यक्ति की क्षमताएं ही नहीं उभरती रहती हैं। इस वास्तववादी चित्र में तो उसकी क्षमताओं का आलोक उसकी सीमितताओं की रेखाओं में घुला मिला रहता है। या यों कहें कि उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण रूप ही उसकी शक्तियों—स्वतन्त्रताओं की धूप छांह का भण्डार रहता है। अपने पर्यावरण से उत्तम अनुकूलन प्राप्त करने हेतु तथा अपनी शक्तियों—क्षमताओं का अधिकाधिक लाभ उठा सकने हेतु व्यक्ति के लिए अपने वास्तविक स्वरूप से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। तभी वह वैयक्तिक तुष्टि के आनन्द के साथ समाज को भी अपने श्रेष्ठतम योगदान से लाभान्वित कर सकता है। एक व्यक्ति को इस सन्तुष्टि की ओर ले जाते हुए अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण समाज का उन्नयन करना निर्देशन के मूल उत्तरदायित्वों में भी एक केन्द्रीय महत्व रखता है।

स्पष्ट है कि मानव जीवन के आदि शास्त्र दर्शन में निर्देशन का मूलाधार निहित है। Know they self अपने आपको जानो यह इस आदि शास्त्र की चिरंतन पुकार रही है। हिन्दी में तो इस विषय क्षेत्र का नामकरण ही इसके स्वरूप को स्पष्ट करता है। दर्शन का अन्तिम ध्येय है स्व का ज्ञान तथा सत्य का दर्शन। यह सत्य है कि यह दर्शन तात्त्विक स्तर का होता है। किन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि तात्त्विक स्तर तक पहुँच सकने हेतु व्यक्ति को कतिपय दैहिक भौतिक स्तर की सीढ़ियां को पार करना अनिवार्य होता है। आत्मसिद्धि के दार्शनिक ध्येय की उपलब्धि के लिए स्व वास्तवीकरण की मनोवैज्ञानिक सीढ़ी में से व्यक्ति को गुजरना पड़ता है। और निर्देशन का इस स्व वास्तवीकरण से सीधा सम्बन्ध है।

फिर जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है दर्शन की सैद्धान्तिक मूर्तियों को एक प्रकार्यात्मक रूप देने में निर्देशन के शास्त्रीय क्षेत्र की एक प्रमुख भूमिका रहती है। इस कथन का निहित बिन्दु के विवेचन में पाठक और भी अधिक स्पष्टता से आत्मसात् कर सकेंगे।

(३) व्यक्तित्व का आदर

गणतान्त्रिक शिक्षा का तो सम्पूर्ण भवन ही व्यक्तित्व के आदर की सुदृढ़ नींव

पर निर्मित हुआ है। एकक यक्ति के अनन्य यक्तित्व के प्रति समुचित सम्मान उसके गौरव तथा मूल्य का उचित आशासन उसके विशिष्ट बुद्धि-वभव के अनुकूल अवसरों का आयोजन ये सब वयक्तिक शिक्षा-दर्शन की सामान्य स्वीकृत सक्तियां हैं। इन सूक्तियों को यदि वास्तविकता का आलोक देना है तो इनकी व्याख्या व्यावहारिक शब्दावलियों म करनी होगी इनकी उपलब्धि हेतु प्रकार्यात्मक योजनाएं बनानी होंगी।

वास्तविकता तो यह है कि यदि व्यक्तित्व के स्वरूप का मबबोध ही नहीं तो उसका आदर किस प्रकार किया जा सकता है? उसके मूल्यों के सम्ब ध म अभिज्ञता ही नहीं तो उसका आश्वासन किन आधारों पर किया जा सकता है? और यदि उसके बुद्धि वभव की विशिष्टता ज्ञात ही न हो तो उसके अनुकूल अवसरों का आयोजन किस भांति हो सकता है? इन वास्तविक प्रश्नों का एकात्मक उत्तर देने हेतु निर्देशन दर्शन के मौलिक क्षेत्र मे अपने मनाधार शोधता है। एकक यक्ति के अनन्य व्यक्तित्व के सही स्वरूप का दर्शन उसे कराते हुए तथा उसके गौरव म य का उचित आश्वासन करते हुए ही निर्देशन उसके विशिष्ट बुद्धि वभव के अनुरूप अवसरों से उसे परिचित कराता है तथा उस उन अवसरों का श्रेष्ठतम उपयोग कर सकने की राह भी दर्शाता है।

प्रत्यक यक्ति के मूल्य के आदर की दार्शनिक पुकार का यदि निर्देशन की शब्दावली मे भाषान्तर नहीं होगा तो वह शोध वने की भांति केवल धनी बाजती ही रह जायगी। वस्तुत निर्देशन के नूतन क्षेत्र के समचे काय का केन्द्र बिन्दु ही यक्ति है और यह केन्द्र बिन्दु निर्धारित करन म उसका दार्शनिक काय आधार स्पष्टतया निभाई देता है।

विशेषकर अध्यात्मवादी भारतीय दर्शन म तो प्रत्यक यक्ति को आत्मन् के रूप म उस चरम परमात्मन् का एक ज्वल त अंश माना गया है। इस मा यता म यह आस्था निहित है कि चरम ज्योति के प्रति लघुरूप म भी निम ल य ज्योति के समस्त लक्षण अवस्थित रहते है। भारतीय दर्शन के अनुसार विकास का अर्थ ही विलयन है यह विलयन बद बूंद का असीम सागर म होना है लघ प्रकाश कणिका का अमर ज्योति म होता है। अतएव यह विलयन एक प्रकार से आत्मन् का विस्तार ही है। किन्तु इस विलयन विस्तार का प्राथमिक अनुबन्ध है यक्ति की मौलिक शक्तियों म आस्था तथा प्रारम्भिक प्रतिबन्ध व्यक्ति द्वारा अपनी असीम क्षमता की पहिचान। तभी भारतीय दर्शन म आत्म विश्लेषण आत्मदर्शन आत्म सिद्धि प्राप्ति शब्दावलियों द्वारा इस आत्म के स्वरूप पर मौलिक बल दिया जाता है। हमारे विचार में निर्देशन के दार्शनिक आधार भारतीय दर्शन म तो और भी गहराई से अवस्थित हैं। इस दर्शन म व्यक्तित्व के गौरव तथा म य का आदर केवल सामाजिक आर्थिक अथवा मनोवैज्ञानिक स्तर तक ही सीमित नहीं है। इन सोपानों को पार कर के वह मानव जीवन की उच्चतर सामग्री को स्पर्श करता है। एकक यक्ति के उन्नयन में

है। उचित संरक्षण तथा इष्टतम उपयोग में अभाव एवं अपव्यय का अवरोधन भी गौण रूप से निहित रहता है।

पुनः प्रश्न उठता है इस ध्येय की उपलब्धि किस प्रकार हो? इन भौतिक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति कैसे हो? निर्देशन तथा समाज की आवश्यकताओं उद्देश्यों का विश्लेषणात्मक परीक्षण करने पर उक्त प्रश्नों के उत्तर निर्देशन कार्यक्रम तथा समाज व्यवस्था की कतिपय मूलभूत समानताओं में दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों का ही ध्येय है शक्तियों, साधनों का समस्त संरक्षण, समुन्नयन तथा उपयोग।

मानवीय शक्तियों—क्षमताओं का समुचित उपयोग हो सकने हेतु एक ओर सम्बन्धित आवश्यकता है पर्यावरणीय साधन सुविधाओं का निदान परीक्षण तथा मानवीय क्षमताओं के साथ उनका सम्बन्ध-स्थापन। सामाजिक सुदृढ़ता, सुरक्षा तथा समुन्नति की यह एक महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षा है कि किसी भी समाज के भौतिक अथवा प्राकृतिक साधनों का समन्वित संरक्षण तथा अनुकूलतम उपयोग हो। अन्ततोगत्वा मानवीय शक्तियों का इष्टतम विकास तथा अनुकूलतम उपयोग उन्हीं पर्यावरणीय साधन सुविधाओं के परिप्रेक्ष्य में सम्भव हो सकता है। अतएव किसी भी उन्नति अभिलाषी समाज के लिए इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसके द्वारा उसकी शक्तियों तथा उसके पर्यावरण की समस्त शक्तियों सुविधाओं का उचित निदान होकर उनका सुसम्बन्धित उपयोग हो सके। निर्देशन की नूतन सामाजिक व्यवस्था द्वारा ही इस उन्नति उन्मुखी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। चूंकि निर्देशन का ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के उचित विकास पर केन्द्रित रहता है अतएव वह न केवल उसकी इस अनूठी इकाई की इष्टतम उन्नति पर बल देता है अपितु उसकी विशिष्टता के अनुरूप अवसरों की व्यवस्थित आयोजना तथा उपलब्धि को भी बराबर महत्ता प्रदान करता है। इस प्रकार आदर्श सामाजिक व्यवस्था तथा उन्नयन के सैद्धान्तिक ध्येय का प्रकार्यात्मक निर्देशन व्यवस्था की व्यावहारिक योजनाओं के माध्यम से वास्तवीकरण हो सकता है। अतएव कहा जा सकता है कि मानवीय एवं पर्यावरणीय शक्तियों के संरक्षण उपयोग में निर्देशन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक आधार निहित रहता है।

(ख) भारतीय परिस्थितियों में

इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को यदि भारतीय परिस्थितियों की विशिष्ट पृष्ठभूमि में परखा जाय तो इसकी महत्ता कई गुनी हो उठती है। किसी भी देश की सम्पन्नतम सम्पत्ति उसके उच्चस्तरीय मानवीय साधनों में निहित होती है। किन्तु यह एक कटु सत्य है कि इस उच्चस्तरीय साधन जनशक्ति में अग्रणी ही सम्पन्न होने पर भी भारत की गणना आज संसार के निर्धन तथा अल्पविकसित देशों में की जा रही है। कारण स्पष्ट है। परिमाणात्मक दृष्टि से जनसंख्या में संसार का एक अग्रगामी देश होने पर भी भारत में न तो इस वृहद् मानव सम्पत्ति का आवश्यक संरक्षण है न समुचित सदुपयोग। इससे बड़ी बात तो यह है कि इस ओर हमारी कोई तीव्र सजगता भी

नहीं है।

जनसम्पत्ति की इस सहज व्यवस्था के साथ साथ सम्पन्न पर्यावरणीय साधनों के प्रति भी हमारे देश में न तो बहुत वैज्ञानिक सतर्कता रहा है न उनके अनुकूलतम उपयोग के व्यवस्थित आयोजन। यह सत्य है कि आधुनिक काल में उक्त कमियों की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित होता जा रहा है तथा इनकी पूर्ति की ओर सक्रिय कदम भी उठाये जा रहे हैं। किन्तु साधन सम्पत्ति के विस्तार के परिप्रेक्ष्य में ये प्रयास अपर्याप्त से हैं। साथ ही आधुनिक समाज की तुलना में हममें वैज्ञानिकता की भी कमी है जो कि राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त नियोजन योजनाओं द्वारा पूरी हो सकती है।

यह सच है कि गत दो दशकों में भारतवर्ष में कई क्षेत्रों में प्रगति हुई है। विविध स्तरों पर विद्यालयों विद्यार्थियों तथा प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या में वृद्धि हुई है उद्योग के क्षेत्र में नाना भाँति के नवीन उद्योगों का विकास तथा विशिष्टीकरण हुआ है। कृषि में जहाँ प्रति एकड उत्पादन में वृद्धि हुई है वहाँ पर प्रति व्यक्ति आय भी वर्धमान हुई है। किन्तु इन परिमाणात्मक प्रगतियों के साथ साथ जहाँ पर कतिपय सर्वाधिक राष्ट्रीय आयामों में अधिक उन्नति हुई वहाँ पर भी उनमें एक अवांछनीय उन्नति ही दिखाई देती है। उदाहरणस्वरूप शिक्षित व्यक्तियों की संख्या वृद्धि के साथ साथ उनमें बेरोजगारी या अपूर्ण रोजगारों के आँकडे परिवर्धित होते जा रहे हैं। यह एक विचित्र अवस्था है कि जहाँ तकनीकी या इन्जीनियरिंग में प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या बढ रही है वहाँ पर इन क्षेत्रों के कई उन्नत विशिष्ट उद्योगों में उपयुक्त कार्यकर्ताओं की कमी भी अधिकाधिक अनुभव होती जा रही है। मानवीय ऊर्जा के संरक्षण तथा सदुपयोग की दृष्टि से यह स्थिति अत्यन्त ही शोचनीय है। इसका निवारण व्यवस्थित निर्देशन का क्रमागत रूप से ही सकता है। और इन कार्यक्रमों का आयोजन भी राष्ट्रीय स्तरों पर होना चाहिए जिससे देश के शैक्षिक तथा औद्योगिक विकास का यात्रायें एक दूसरे की पूरकता में न बन पावें। मानवीय ऊर्जा के संरक्षण हेतु निर्देशन के ऐसे कार्यक्रमों की अत्यन्त आवश्यकता है। आधुनिक भारत के वर्तमान व्यावसायिक क्षेत्र में स्थिति के उक्त असंगत चित्र का अवसाद और भी सघन हो उठता है जब हम इस क्षेत्र में प्रचलित एक और अवांछनीय स्थिति को पनपते मिलते हुए पाते हैं। सामान्यतः ऊपरी सतह पर तो बेरोजगारी तथा निरक्षरता का प्रत्यक्ष व्यवधान ही हमारे देश की वांछनीय प्रगति को अवरुद्ध करता सा प्रतीत होता है। किन्तु हमारे विचार में इस स्पष्ट कमी से अधिक गम्भीर तथा हानिकारक स्थिति होती है अपनियोजन की। कई मानों में कहा जा सकता है कि अपनियोजन से बेरोजगारी अधिमान्य है तथा अपशिक्षा प्राप्त करने से अशिक्षित रहना बेहतर है। इस कथन का मनोवैज्ञानिक महत्व तो उपर्युक्त स्थल पर स्पष्ट किया जायेगा किन्तु यहाँ पर निर्देशन के सामाजिक आधारों के परिप्रेक्ष्य में तो यही कहा जा सकता है कि असंगत मार्गों में प्रवाहित वैयक्तिक ऊर्जा समाज की विनाशकारिणी

शक्ति का ही काय कर सकती है। ऊजा का सही मान में इष्टतम उपयोग कर सकने के लिए उपयुक्त स्वनो की ओर ही निर्देशित करने की आवश्यकता है।

( ) सामाजिक परिवतनशीलता

अभी तक तो हमने समाज की लघुत्तम इकाई के रूप म व्यक्ति को समाज की अतिम उन्नति के आधारभूत अङ्ग के रूप मे देखा। इसी चित्र का दूसरा पक्ष है व्यक्ति की अतिम उन्नति के निधारक प्रेरक के रूप म सामाजिक स्थिति की निर्णायक भूमिका।

यह एक स्वाकृत सत्य है कि सतत सामाजिक गतिशीलता के परिप्रेक्ष्य म ही व्यक्ति के जन्म विकास तथा समजन के प्रक्रम सम्पन्न होते है। स्पष्ट है कि इस सहज गतिशीलता का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जीवन के सब पक्षो पर पड़े। साथ ही यह भी अबबाध्य है कि इस सतत गतिशीलता के मध्य मे भी सतुलित समजित बने रहने के लिए व्यक्ति को समाज की सहज गत्यात्मकता तथा सतत परिवतनशीलता से अनुकूलतम परिचय बनाये रखने की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इस आवश्यकता की पूर्ति निर्देशन के प्रबुद्ध कायक्रमो द्वारा ही हो सकती है।

वतमान स्थिति यह है कि जहा प्रतिदिन जीवनयापन के सामान्य उपकरणो तथा विधियो म एक स्पष्ट परिवतन दृष्टिगोचर होता है वहाँ पर मस्तिष्कीय चितन की अप्रत्यक्ष मानवीय प्रक्रियाओ पर भी कई अन्य दृश्य-सामग्रियो का अनिवार्य प्रभाव पड़ता जा रहा है तथा उन्हे नवीन दिशाओ की ओर उन्मुख कर रहा है। सूचना प्रसारण के विविध अभिकरणो मे अभूतपूर्व वृद्धि होने के कारण आज का औसत नवयुवक अपने पूवज नवयुवक की अपेक्षा बहुत अधिक प्रबुद्ध है। किन्तु सूचना सामग्री के इस उमड़ते प्रवाह म बिना उचित सहारे के उसके बह जाने की आशका है। यह सहारा उस निर्देशन द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। हम प्रथम अध्याय म इस तथ्य से प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर चुके हैं। यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि पर्यावरण म जानने के तथ्य ही बहुत कम हो तो व्यक्ति को उन पर अधिकार प्राप्त करने म कठिनाई नही होगी। किंतु यदि पर्यावरणीय सूचना सामग्री बहुत अधिक हो तो केवल आकार प्रकार की समस्या से कुछ आगे बढ़कर उसमे वविध्य का लक्षण भी सहज रूप से समाहित हो जाता है। विभिन्नता के अनुवतन मे विरोधिता का होना भी बहुत अस्वाभाविक नही। और ऐसी स्थिति म चयन का प्रश्न उपस्थित हो जाता है जोकि शुद्धरूपेण निर्देशन का उत्तर दायित्व है।

(४) औद्योगिक क्रांति

इन दशको के सामाजिक परिवतनो मे जिस घटना ने मानव जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया वह है बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ की वज्ञानिक औद्योगिक क्रांति। निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप के अध्ययन मे हम इसके विषय म

कुछ पढ़ चुके हैं। यहाँ पर इस निर्देशन के एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि यह कहा जाय कि एक प्रकार से सामाजिक परिवर्तनशीलता भी कई अर्थों में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई तो अनुचित नहीं होगा।

इस क्रान्ति ने सबसे पहले व्यावसायिक क्षेत्र में एक नवीन हलचल प्रविष्ट कर दी। नवीन उद्योगों तथा उन्हें सम्पन्न करने के नूतन वैज्ञानिक तरीकों ने बाल युवक वयस्क सभी के लिए कई व्यावसायिक उलझनें प्रस्तुत कर दीं। नित्यप्रति आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ प्राप्ति का प्रश्न जटिलतर बनता गया। न केवल उद्योगों को सम्पन्न करने के तरीकों में वैज्ञानिक उन्नति ने एक प्रगतिगामी परिवर्तन प्रविष्ट किया अपितु मशीन युग ने कई नवीन व्यवसायों को जन्म देकर औद्योगिक संसार का स्वरूप ही बदल डाला। ऐसी स्थिति में किसी परिचित उद्योग को प्राप्त मात्र करने का प्रश्न इन उद्योगों में से चयन तथा चयन के पश्चात् उसकी प्राविधियों में प्रशिक्षण प्राप्त करने की समस्याओं से जटिलतर बनता गया। जैसा कि हम पूर्व अध्याय में देख चुके हैं यह परिस्थिति पश्चिमीय देशों में पहले आई और इसीलिए वहाँ पर व्यवस्थित निर्देशन संस्थाओं का जन्म भी हमारे देश से पूर्व हुआ। किन्तु समय की गति के साथ आज औद्योगिक रूप से जागृत-तथा क्रियाशील भारत में भी यह परिवर्तित स्थिति निर्देशन का एक महत्त्वपूर्ण आधार बनती जा रही है। वस्तुतः यदि कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वैज्ञानिक औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप परिवर्तनों की तुलना में आवश्यक निर्देशन कार्यक्रमों की ओर न तो हमारी राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त संवेदना जागृत हुई है न कोई व्यवस्थित कार्य ही हो पाया है। हमारे विचार में कई प्रगतिगामी योजनाओं के बावजूद भी हमारे अपेक्षाकृत पिछड़ेपन का यह एक प्रमुख कारण है। मानवीय ऊर्जा के संरक्षण तथा उपयोग के अन्तर्गत हम इस तथ्य के प्रत्यक्ष उदाहरण दे चुके हैं।

(४) नारियों की परिवर्तित भूमिकाएँ

आधुनिक संसार के जीवन प्रतिरूप का एक सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है नारियों की क्रियाशीलता का स्वरूप। युग युग से समाज इसी धारणा पर संजोकर आस्था में हुए था कि स्त्री का मुख्य स्थान उसके घर की चहारदीवारियों के मध्य ही रहता है। यह विचार पाश्चात्य समाजों में भी उतनी ही प्रचुरता से प्रचलित था जितना कि वह पूर्वीय चिन्तन में परम्परा से प्रचलित रहा है।

धीरे धीरे इस विचार में परिवर्तन आने लगा तथा स्त्री का कार्यक्षेत्र घर के उत्तरदायित्वों से विस्तृत होकर जीवन साधन के संकलन की ओर भी उन्मुख होने लगा। इस परिवर्तन का एक सामान्य कारण तो औद्योगिक संसार में मानव जीवन की सतत वर्धमान आवश्यकताएँ थीं जिनकी पूर्ति परिवार के एक ही व्यक्ति द्वारा हो सकना कठिन था। इस कार्य में और भी तीव्र होता गया जीवनयापन के स्तर में उन्नति के साथ मनुष्यों की व्यय शक्ति के हास द्वारा। यहाँ कहना हुआ

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक धन की आकांक्षा थी वहाँ आवश्यकता पूर्ति के साधनों की कमी हुई कीमत ने समस्या को और भी जटिल बना दिया। ऐसी परिस्थिति में स्त्री को समुचित स्थान-सीमाएं सहज रूप से विस्तृत होने लगी। इधर राजनतिक क्षेत्र में प्रजातन्त्र स्थापनाओं ने व्यक्ति एवं तथा निज की निरपेक्षता से प्रत्यक व्यक्ति की गरिमा को प्रतिष्ठित किया। इस सद्धान्तिक गौरव ने उपरोक्त आर्थिक कारणों से उद्भूत नारी की नवीन भूमिका को और भी सपुष्टि प्रदान की। अत्यन्त आत्मविश्वास पूर्वक वह सही मान में जीवन के वर्तमान क्षेत्रों में पुरुष की सहचारिणी बन कर अग्रसर होने लगी।

विशेष कर भारतवर्ष में नारी को पुरुष की इस समकक्षता को पर्याप्त प्ररेणा मिली हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन से। उस समय उसने पुरुष के कन्धे से कन्धा मिला कर देश के लिये की गई कुर्बानियों में न केवल हिस्सा बटाया अपितु पुरुष को इन बलिदानों के लिए साहस तथा प्ररेणा प्रदान की। उस समय से भारत वर्ष की नारी भी पुरुष की अनुगामिनी मात्र न रह कर उसकी सहगामिनी बनी तथा जीवन के विविध क्षेत्रों में उसका कार्यभार हलका करने लगी।

किन्तु इस परिवर्तित परिस्थिति का एक अनिवार्य परिणाम व्यावसायिक औद्योगिक क्षेत्रों में स्पष्टरूपेण दृष्टिगोचर होने लगा। हम देख चुके हैं कि कई कारणों के फलस्वरूप बेरोजगारी अपूर्ण रोजगार तथा अनियोजन की समस्याएं आधुनिक आर्थिक सामाजिक व्यवस्था में समस्या स्वरूप बनती जा रही थी। अभी तक इस वर्तमान समस्या से पुरुष वर्ग ही सम्बन्धित था। किन्तु अब महिलाओं ने भी व्यवसाय के क्षेत्र में उतर कर परिस्थिति को और भी जटिल बना दिया। उनके शैक्षिक व्यावसायिक प्रशिक्षण के प्रश्न ने निर्देशन कार्यक्रमों की आवश्यकता को और भी प्रबल करने लगे।

किन्तु महिलाओं के व्यवसाय प्रवेश से उद्योग विज्ञान में एक मौलिक तथ्य का उद्घाटन भी हुआ। उनकी शक्तियां तथा अभिक्षमताओं के सन्दर्भ में कतिपय व्यवसायों के विश्लेषण ने यह इंगित किया कि कुछ विशिष्ट व्यवसाय स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता पूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं। दूसरी ओर विकासमान मनोविज्ञान ने पुरुष-स्त्रीत्व के सिद्धान्त को चुनौती देकर इन दोनों लिंगों में इन लक्षणों की केवल सापेक्षिक अभिव्यक्तता पर ही बल दिया। तात्पर्य यह कि शैक्षिक-व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता केवल पुरुष वर्ग के ही लिए न समझी जाकर दोनों ही वर्गों के लिये समान रूप से स्वीकृत होने लगी। इस परिवर्तित परिस्थिति ने स्वभावतः निर्देशन के सामाजिक आधारों को प्रतिष्ठित कर स्थान दिया।

(६) संस्कृति के मूल्य

हम अध्याय के प्रारम्भ में ही कह चुके हैं कि मानव की मूल्य मापनी का निर्माण तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन निर्देशन का एक मुख्य उत्तरदायित्व रहता है। और चूंकि किसी भी समाज की मूल्य मापनी उस समाज की संस्कृति में

मे विकसित होती है इसलिये हम कह सकते हैं कि निर्देशन कार्य के विविध आधारों में से उसके सांस्कृतिक आधार एक केन्द्रीय महत्व रखते हैं। वस्तुतः निर्देशन के अंतिम ध्येय सुख समायोजन आदि के स्वरूप की ही कल्पना संस्कृति विशेष के मानकों के अनुसार निर्मित होती है। इसलिये किसी भी निर्देशन कार्यक्रम की योजना को संस्कृति के मूल्यों पर आधारित करना पड़ता है।

यहां पर संस्कृति के मूल्य कहने के तात्पर्य का कुछ अधिक स्पष्टीकरण पाठकों के लिये वाञ्छनीय होगा। संस्कृति के मूल्य कह कर हम इन मूल्यों को जीवन के मूल्यों से कुछ अधिक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। एक दृष्टि से समस्त मानव जाति के कुछ सामान्य जीवन मूल्य हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इन मूल्यों का भी एक सोपानिक संरचना के रूप में विवेचन किया है। सामान्य अनुरक्षण आवश्यकताओं सम्बन्धी मूल्यों के प्राथमिक स्तरों से प्रारम्भ करके उन्होंने स्व वास्तवीकरण की आवश्यकताओं से सम्बन्धित मूल्यों को इस सोपानी के उच्चतम बिन्दु पर रखा है। इस बिन्दु के विषय में निर्देशन के मनोवैज्ञानिक आधारों के अन्तर्गत अधिक विस्तार से कहा जायगा। यहां पर तो मानव जीवन के सामान्य मूल्यों की तुलना में सांस्कृतिक मूल्यों के विशिष्टत्व की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

संक्षेप में इस विभेद को निम्न सूत्र में प्रस्तुत किया जा सकता है। मानव जीवन की विविध-स्तरीय आवश्यकताएं तो प्रायः समान होती हैं किन्तु इन आवश्यकताओं की पूर्ति जिन साधनों से जिस प्रकार की जाती है वह संस्कृति विशेष द्वारा निर्धारित होता है। सर्वप्रथम हम अनुरक्षण सम्बन्धी भौतिक मानवीय आवश्यकताओं से ही कतिपय उदाहरण लेकर इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। भूख पर्यावरणीय प्रभावों से रक्षण तथा प्रजनन कुछ ऐसी अनुरक्षण आवश्यकताएं हैं जो कि मानव ही क्या-समस्त प्राणि-जगत् में समान रूप से पाई जाती हैं। किन्तु किन पदार्थों को किस रूप में किस प्रकार खाकर भूख का शमन किया जाता है यह संस्कृति प्रतिरूप पर निर्भर करता है। यह अत्यन्त सामान्य सी लगने पर भी मनुष्य के समायोजन को यह किस प्रकार प्रभावित कर सकती है यह कतिपय वास्तविक उदाहरणों के विवेचन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। आधुनिक प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में स्थान तथा समय की दूरियां इतनी संकुचित हो गई हैं कि विशिष्ट शिक्षा तथा अनुसंधान हेतु व्यक्तियों का अन्य देशों के साथ विनिमय आज के संसार का एक साधारण सत्य होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में विकसित देशों के निवासियों का एक सामान्य अनुभव रहा है सांस्कृतिक आघात। जीवन की इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति भी जिन पद्धतियों से जिस प्रकार की जाती है उनमें परिवर्तन होना मानव के लिए कुसमायोजन का कारण हो सकता है। कई बार निरामिष व्यक्ति की प्रारम्भ से ही सामिष भोजन के प्रति इतनी गहन विरक्तियां बन जाती हैं कि इस भोजन का आभास उसके मन में

जीवित प्राणियों के हनन द्वारा की वीभत्स कल्पनाएं उत्पन्न कर देता है। यहां तक कि हम भोजन को खाने वाले के प्रति भी उसके मन में एक अचेतन घृणा उत्पन्न हो सकती है। यहां निर्देशन से सम्बन्धित जो तथ्य महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि दैनन्दिन जीवन के सामान्य प्रतिरूप भी संस्कृति विशेष के मानवों की कुछ समान बातों के आधार पर निर्मित होते हैं तथा उस संस्कृति में पले व्यक्ति के लिए उनमें विचलन दुखदायी सिद्ध होता है। इसी प्रकार पर्यावरणीय प्रभावों से बचने का मौलिक ध्येय लिए हुए भी वेशभूषा का स्वरूप संस्कृति विशेष के रहन सहन के तरीकों द्वारा निर्धारित होता है। प्रजनन सम्बन्धी यौन आवश्यकताएं प्राणीमात्र में मूलरूप से विद्यमान होने पर भी उनकी सन्तुष्टि की मात्रा तथा उपागम संस्कृति विशेष की अनुज्ञात्मकता तथा सत्तावादिता द्वारा नियन्त्रित होता है। केवल इतना ही नहीं विवाह पूर्व तथा विवाहोपरान्त स्त्री पुरुष सम्बन्धों का स्वरूप भी प्रत्येक संस्कृति में अपने अपने मानकों के अनुसार एक अनन्य स्वरूप लिए रहता है जो कि दूसरी संस्कृति में पले व्यक्ति के लिए कुछ अटपटा सा सिद्ध हो।

यह तो सामान्य अनुरक्षण सम्बन्धी शारीरिक भौतिक आवश्यकताओं की बात हुई जो कि संस्कृति—विशेष के मानकों के अनुसार परिपूर्ण की जाती है। समाज विशेष के प्रगति स्तर के अनुसार इन आवश्यकताओं की पूर्ति में अर्थ व्यवस्था का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब एकक व्यक्ति की अर्थ आवश्यकता तथा अर्थ आकांक्षा कितनी है—अथवा कितनी होनी चाहिये—यह भी समाज विशेष के आर्थिक मानक पर निर्भर करता है। इसी आर्थिक मानक के आधार पर व्यक्ति की वैयक्तिक तुष्टि का स्वरूप निर्धारित होता है। अमरीका तथा भारत में गरीब तथा अमीर की परिभाषाएं ही किसी निश्चित धनराशि से निरपेक्ष रूप पर निर्मित न होकर समाज के औसत आर्थिक स्तर द्वारा अनुबन्धित होती है। स्पष्ट है कि एकक व्यक्ति की वैयक्तिक तुष्टि का मापदण्ड यही औसत स्तर होगा—न कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की वास्तविक पूर्ति के लिए वांछनीय धनराशि।

आर्थिक सामाजिक स्तर से भी कुछ और उच्च स्तरीय मनोवैज्ञानिक मूल्यों के सन्दर्भ में ये ही आवश्यकताएं स्व वास्तवीकरण के सम्बन्ध में गहनतर स्वरूप धारण कर लेती हैं जिसका विवेचन अगले अंश में प्रस्तुत किया जायगा। किन्तु आर्थिक क्षेत्र में भी वैयक्तिक तुष्टि के साथ सामाजिक प्रतिद्वन्द्विता का जो नाजुक प्रश्न घुला मिला रहता है वह संस्कृति विशेष के मूल्यों द्वारा एक बड़ी सीमा तक प्रभावित होता है। कुछ संस्कृतियां ऐसी हैं जिनमें समाज में व्यक्ति का स्थान उसकी आर्थिक स्थिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति सन्तोषप्रद सामाजिक समंजन की उपलब्धि हेतु अपनी अधिकांश ऊर्जा अर्थ प्राप्ति के प्रयासों में लगा दे। इसके विपरीत जिन संस्कृतियों में भौतिक के स्थान पर आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का अधिक आदर है वहां पर स्वभावतः व्यक्ति का

दृष्टिकोण हा कुछ परिवर्तित हो जायगा। धार्मिक उपलब्धियों को व अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति का एक अनिवार्य साधन मात्र समझते हुए उनसे अग्रसर होकर आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति में अपनी शक्तियाँ लगायेगा। स्पष्ट है कि समाज में उसका स्थान भी उसके आध्यात्मिक उन्नयन की सीमा के अनुसार निर्धारित होगा।

इस प्रकार जब युग-युग जन की कल्पना की संस्कृति विशेष के मूल्यों द्वारा अनुप्राणित होती है तो हम कह सकते हैं कि संस्कृति के मूल में ही निर्देशन का सबल तम आधार खोजा जा सकता है।

मानसिक आधार

शिक्षा का अन्तिम ध्येय तो व्यक्ति का सम्यक् विकास तथा सर्वांगीण समायोजन है। हम प्रथम अध्याय में कह चुके हैं कि निर्देशन का मानसिक प्रक्रम किस प्रकार साम वन एवं अन्तिम ध्येय की उपलब्धि में सहायक होता है। इस पृष्ठभूमि के संदर्भ में निर्देशन के मानसिक आधारों का अधिक विस्तृत विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) ज्ञान का विस्तार तथा विशिष्टीकरण

सर्वप्रथम तो वर्तमान युग की मानसिक औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान-सामग्री का इतना अधिक विकास हुआ है कि साधारण सका सर्वस्वित प्रबन्ध कर सकना कठिन है। शिक्षा क्षेत्र की एक महती समस्या बनी हुई है। विषय क्षेत्रों के विकास के साथ साथ ज्ञान संख्या के विशिष्टीकरण ने निर्देशन के क्षेत्र में कई नवीन चुनौतियाँ प्रदान कीं। प्रथम तो इस परिवर्धित ज्ञान सामग्री का उसकी व्यावसायिक उपयोगिता तथा अभिवृत्तियों के विशिष्टता के अनुसार उपयुक्त पाठ्यक्रमों में वर्गीकरण करने का प्रश्न उपस्थित होता है। इन वर्गीकरण को विधिवत् कर सकने के लिए व्यवसाय विश्लेषण के नूतन मनोवैज्ञानिक विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है जो कि निर्देशन सेवाओं का एक प्रमुख आधार है। स्पष्ट है कि पश्चिम में भी अपेक्षाकृत नूतन इस विज्ञान में हमारा देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है।

व्यवसाय विश्लेषण के औद्योगिक आधार पर व्यवसाय विशेष के कार्य लक्षण तथा उसमें अपेक्षित क्षमताओं का स्वरूप स्पष्ट होता है जिसके आधार पर व्यावसायिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम निर्मित किए जाने चाहिए। निर्देशन कार्यक्रम की नियोजन सेवाओं को न केवल इस माध्यम से बल मिलता है अपितु समुचित पुष्टि भी उपलब्ध होती है।

व्यवसाय विश्लेषण के माध्यम से व्यवसायों के स्वरूप का अध्ययन करने के साथ साथ ही व्यक्ति की प्रकृति का उसकी रुचि, बुद्धि, अभियोग्यता, अभिवृत्ति आदि मनोवैज्ञानिक घटकों के सन्दर्भ में परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। इस समय

नान्तर उपागम के बिना दोनों ही आयामों का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन होने पर भी वाञ्छनीय परिणाम नहीं प्राप्त हो सकता। वस्तुतः ये दोनों अध्ययन इसलिए किए जाते हैं कि दोनों ही पक्षों के मनोवैज्ञानिक पक्षों के ज्ञान के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के अनुरूप शिक्षण तथा प्रशिक्षण का आयोजन किया जा सके। यह इसलिए आवश्यक है कि इस प्रकार के आयोजन द्वारा उसके उच्च तम वैयक्तिक विकास तथा उसके द्वारा अनुकूलतम सामाजिक योगदान की आशा की जा सकती है।

निर्देशन के क्षेत्र का ज्ञान यह स्पष्ट इंगित करता है कि उक्त प्रकार के अध्ययन आयोजन उसके उत्तरदायित्वों में एक प्रमुख स्थान रखते हैं।

(२) शिक्षा की उद्देश्यहीनता

उक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में हमारे देश में शिक्षा की उद्देश्यहीनता की सामान्य चर्चा का परीक्षण करना कदाचित् इस स्थान पर असंगत सिद्ध होगा। हमारे देश में शिक्षा के विविध स्तरों तथा शाखाओं में परिमाणात्मक विकास—और कई स्थलों गुणात्मक भी—होते हुए भी शिक्षित तथा प्रशिक्षित दोनों ही समाजों में इस विकसित तथा विकासमान शिक्षा के प्रति एक अनास्था तथा अनाशा की भावना प्रचलित है। कारण स्पष्ट है जो कि अपने डिप्लोमा तथा डिग्रियों को विश्वविद्यालयों के सम्मुख फाड़कर इस डिग्री नहीं नौकरी चाहिये नारा लगाने वाले विद्यार्थियों के आक्रोश में खोजा जा सकता है। केवल उच्च शिक्षा के निरपेक्ष आयोजन मात्र से शिक्षा अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकती। उसकी आयोजना सामाजिक औद्योगिक स्थिति तथा आवश्यकताओं के सन्दर्भ में की जानी चाहिए।

जैसा कि हम पूर्व विवेचनों में भी देख चुके हैं इस क्षेत्र में असंगत योजनाओं से न केवल शिक्षा की उद्देश्यहीनता परिलक्षित होती है अपितु औद्योगिक क्षेत्र की उन्नति में भी अवरोध उत्पन्न होता है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शिक्षा तथा उद्योग के क्षेत्रों की इन निरपेक्ष प्रगतियों से दोनों में केवल निरर्थकता की ही अभिवृद्धि होती जा रही है। एक विकासमान देश में धन शक्ति समय तथा साधन सभी का यह एक निर्मम रूप से खोया हुआ मात्र है जिसका कि वैज्ञानिक निर्देशन कार्यक्रमों द्वारा अवरोधन किया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा के स्वातन्त्र्योत्तर प्रथम वृहद् सर्वेक्षण के प्रतिवेदन में ही माध्यमिक शिक्षा आयोग ने बहुउद्देशीय शिक्षा योजना तथा शालाओं में निर्देशन कार्यक्रम दोनों की समान रूप से सिफारिश की थी। किन्तु हास्यास्पद वास्तविकता यह रही कि न तो माध्यमिक शिक्षा संस्थाएं ही सही मान में बहुउद्देशीय हो सकीं न उनकी सफलता के लिए आवश्यक निर्देशन कार्यक्रमों की ही योजना हो सकी। परिणाम यही हुआ कि शिक्षण संस्थाओं तथा शिक्षित व्यक्तियों की संख्या मात्र वृद्धि होने पर भी उद्देश्यहीन निर्बल शिक्षण व्यवस्था तथा अनास्थाहीन असन्तुष्ट व्यक्तियों की ही उत्पत्ति एवं वृद्धि होती रही। निर्देशन के समुचित कार्यक्रमों द्वारा ही इस शोचनीय स्थिति में

सुधार लाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक कार्यक्रमों की आयोजना-समितियों में प्रशिक्षित निर्देशन-कार्यकर्ताओं को भी स्थान दिया जाना चाहिये। केवल विषय-विशेषज्ञों द्वारा ही बनाए गए शैक्षिक पाठ्यक्रमों में विषय-विशेष की विकासमान मूलभावनाओं का भले ही समावेश हो जावे किन्तु विभिन्न वय रुचि बुद्धि एवं क्षमता के व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर पाठ्यक्रम अथवा पाठ्यचर्याओं का निर्माण कर सकना बिना व्यक्ति विज्ञान से परिचित विशेषज्ञ के सम्भव नहीं। इसीलिए पाठ्यचर्या निर्माण में इस प्रकार के विशेषज्ञों को सम्मिलित करने का नूतन-प्रामाणिक प्रस्ताव पेश किया जा रहा है।

वस्तुतः तो न केवल शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन अपितु उनके पालन तथा मूल्यांकन में भी इन विशेषज्ञों की सहायता वांछनीय है। अभी इन तथ्यों की ओर सजग आज के प्रगतिशील देशों में निर्देशन कार्यक्रमों को समूचे शैक्षिक कार्यक्रमों के एक अविच्छिन्न अंग के रूप में आयोजित किया जाता है। इस प्रकार की आयोजना का तात्पर्य यही होता है कि उद्देश्य निर्धारण के प्राथमिक चरण से लेकर मूल्यांकन की समापनी प्रक्रिया तक शैक्षिक प्रक्रम का रास्ता निर्देशन के प्रकाश से आलोकित हो सके। इस नूतन व्यक्ति विज्ञान का प्रकाश शैक्षिक मार्ग के विविध अवरोधों को न केवल दर्शा सके अपितु उन्हें दूर करने की विधायें अथवा अतिक्रमण करने की विधायें निश्चित कर सके। हमारे विचार में भारत में शिक्षा की बहुचर्चित वर्तमान उद्देश्य हीनता निरर्थकता शिक्षा लिता आदि को अवरुद्ध करने का यही वैज्ञानिक उपाय हो सकता है और इसीलिए शैक्षिक कार्यकर्ताओं के नाते—यहाँ पर निर्देशन को शिक्षा के कार्यक्रमों में प्रभावी रूप से घुले मिले हुए रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि सभी मानें कि शिक्षा का अर्थ मानव व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन ला सकना है तो हमारे विचार में परिवर्तन की व्यावहारिक वांछनीयता निर्धारित एवं निश्चित करने में शिक्षा को निर्देशन की सहायता लेनी होगी। तभी शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति करेगी तथा उद्देश्यहीनता की वर्तमान उपाधि से मुक्ति प्राप्त कर सकेगी।

(२) मूल्यों का सृजन एवं स्पष्टीकरण

अध्याय के आरम्भ में हम कह चुके हैं कि दर्शन से प्राप्त उत्तरों के आधार पर ही संस्कृति विशेष के व्यक्तियों की मूल्य मान्यतों का निर्माण होता है। अब समाज में स मान्यता स्वीकृत इस मूल्य मान्यतों का समाज के भावी सदस्यों तक प्रभावात्मक रूप में प्रेषण का व्यावहारिक उत्तरदायित्व पड़ता है शिक्षा के दर्शनान्तर्गत कार्यक्रमों पर। वर्तमान विकासमान ज्ञान के अनुसार यह मान्यता अधिकाधिक स्वीकृत होती जा रही है कि शैक्षिक कार्यक्रमों का उद्देश्य केवल पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रमों में निहित ज्ञान सूचना-कौशल्य का प्रेषण मात्र न होकर व्यक्ति के सर्वांगीण विकास सम्बन्धी अन्य भावात्मक संवेगात्मक पक्षों—यथा अभिवृत्ति मूल्य रुचि आदि का सृजन-पोषण करना भी होता है। किन्तु इस सैद्धान्तिक स्वीकृति का प्रत्यक्ष व्यावहारीकरण करने में

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कोई प्रकार्यात्मक प्रयोजना नहीं पाई जाती है। शिक्षकों की प्रमुख भूमिका अनुदेशक के रूप में—पूरा हो सकने में ही स्वयं उनके समायोजन सम्बन्धी प्रश्न अपनी निजी जटिलताओं सहित शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख शिक्षक असन्तोष सम्बन्धी विविध समस्याएं उपस्थित करते जा रहे हैं। फलस्वरूप शिक्षार्थी के भावात्मक संवेगात्मक पक्ष का विकास न केवल उपेक्षित रहता है अपितु शिक्षकों की मनोवृत्तियों द्वारा विपरीत रूप से प्रभावित होता है।

इस प्रमुख प्रभाव के अतिरिक्त शाला समाज तथा घर में कई ऐसे विघटनकारी तत्व होते हैं जिनका शिक्षार्थी के जीवन मूल्यों पर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है। निर्देशन के स्थान में सामान्य रूप से अभिविन्यासित शिक्षक इन प्रभावों के प्रति सचेत रह सकता है किन्तु हमारे देश का शिक्षक—शिक्षा प्रायोजना में अभी निर्देशन का सामान्य रूप से समावेश नहीं हो पाया है। फलस्वरूप औसत भारतीय शिक्षक निर्देशन के मूल तत्वों से भी प्रायः अनभिज्ञ ही रहता है। किन्तु यदि उसे साधारण रूप से इस क्षेत्र में अभिविन्यासित कर भी दिया जाता तो भी यह स्पष्ट है कि उसका प्राथमिक उत्तरदायित्व अपनी अनुदेशक की भूमिका जो कि आज के ज्ञान विस्फोट युग में जटिलतर होती जा रही है—सफल रूप से निभाना होता है। विषय वस्तु विस्तार के साथ ही शिक्षण विधाओं का विकास भी वर्तमान युग में इतना विस्तृत होता जा रहा है कि अपने व्यवसाय का दैनन्दिन कार्य भी आज के शिक्षक के लिये पर्याप्त चुनौतियां प्रस्तुत करता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में उससे अनुदेशकीय क्षेत्र से अप्रत्यक्षरूपेण सम्बन्धित भूमिकाओं को भी समुचित रूप से निभा सकने की अपेक्षा करना कदाचित् उसके प्रति अन्यायसंगत ही होगा।

यह सत्य है कि एक सामान्य सीमा तक शिक्षार्थियों में स्वीकृत मूल्यों का सृजन वह अपने प्रत्यक्ष आचरण, निजी अध्यापन विधाओं तथा अपने वैयक्तिक सम्बन्धों द्वारा कर सकेगा। किन्तु इससे आगे बढ़कर इस क्षेत्र में सम्भावित कुछ असामान्य परिस्थितियों की ओर संवेदनशील रहते हुए भी वह उनके साथ कार्य करने में वांछित सक्रिय योगदान नहीं दे सकता। वर्तमान युग में कतिपय विरोधाभासी मूल्यों का सहअस्तित्व उक्त प्रकार की असामान्य परिस्थितियों के एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। आज हम भारतवर्ष के किशोर समाज की तुलना चौराहे पर अवस्थित एक एक व्यक्ति के साथ कर सकते हैं जो कि अपने भावी मार्ग के सम्बन्ध में शंकित हो। अभूतपूर्व तीव्र गति से संक्रमित इस देश में विमूल्य मान्यताओं का अस्तित्व एक साथ दृष्टिगोचर होता है। किशोर तो क्या हमारे वयस्कों के मन में भी चेतन अथवा अचेतन रूप से स्वीकृति सम्बन्धी विपार्श्व उत्पन्न करते हुए कुछ प्रश्न हैं। नूतन अथवा पुरातन? पूर्व अथवा पश्चिम? भौतिक अथवा आध्यात्मिक? विनाश अथवा विश्वास? कृषि अथवा उद्योग? भारत की चिर पुरातन संस्कृति में इस प्रकार की शंकाएं द्विधाएं जिज्ञासाएं होना बहुत अस्वाभाविक

रहा है। किन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से भी वय के इस संक्रमण-स्थल पर चलायमान रूप से अवस्थित आज के किशोर के लिये जब इन जिज्ञासाओं की स्पष्टता अपने बड़ों से या निश्चित स्रोत से प्राप्त नहीं हो पाती तो उसकी द्विधा जन्य पीड़ा दुगुनी हो उठती है। इस पीड़ा जन्य विचलन का प्रभाव उसके भावी जीवन के कई पक्षों पर पड़ सकता है। ऐसी परिस्थिति में आवश्यकता ही नहीं अनिवार्य है कि विशेष रूप से प्रशिक्षित निर्देशन कार्यकर्ताओं द्वारा देश के इन भावी नागरिकों के मन की शंकाओं का वैज्ञानिक ढंग से निराकरण किया जा सके तथा उनके जीवन में वांछनीय मार्गों के सम्बन्ध में निर्देशन किया जा सके तथा उनके मानस में स्वीकृत मूल्य मान्यताओं का विकास किया जा सके। स्पष्ट है कि इस प्रकार के तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शाला में निर्देशन कार्यक्रम की निर्विवाद आवश्यकता है और इन्हीं आवश्यकताओं में निर्देशन के शक्तिक आधार मूलभूत रूप से पाये जा सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक आधार

मनोविज्ञान मानव व्यवहार का ही विज्ञान है। अतएव मानव व्यवहार से ही प्रत्यक्षरूपेण सम्बन्धित निर्देशन कार्य के सबलतम आधार मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही उपलब्ध हो सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख आधारों का विवेचन निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) व्यक्ति का समायोजन एवं विकास

एक अत्यन्त विस्तृत दृष्टिकोण से तो समस्त मानव जीवन को ही समायोजन एवं विकास के एक निरन्तर प्रक्रम के रूप में देखा जा सकता है। मोटे रूप से शिक्षा के समस्त ध्येयों को भी इन्हीं दो शीर्षकों के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है। अपने पूर्व विवेचनों में हम यह भी देख चुके हैं कि निर्देशन का नूतन क्षेत्र जीवन एवं शिक्षा की इन सद्धान्तिक स्वीकृतियों का एक सफल प्रयोगात्मक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही अवतरित हुआ है। समायोजन एवं विकास के वैज्ञानिक प्रक्रमों से परिचय प्राप्त किए बिना न तो व्यक्ति को सुखी समायोजन की उपलब्धि कराई जा सकती है न ही उसको समुचित विकास की ओर सहायता दी जा सकती है। निर्देशन के परिप्रेक्ष्य में इन दोनों प्रक्रमों के निम्न विवेचन में यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा।

समायोजन के वैज्ञानिक प्रक्रम में एक से अधिक आयामों का होना पूर्वानुमानित होता है। वस्तुतः समायोजन शब्द ही मूलरूपेण यांत्रिक क्षेत्र की उस प्रक्रिया का सूचक है जिसमें किसी परिस्थिति में एक या एक से अधिक आयामों का सम्पूर्ण तत्व के साथ साथ उनमें इस प्रकार की भौतिक संगति हो कि उनमें स्थानीय एवं भौतिक तारतम्य बन सके। यह स्थितीय तारतम्य विधान भी पूर्वविश्वस्तता होती है आयामों के आकार प्रकार तथा उनकी भौतिक रचनाओं से सम्बन्धित समुचित जानकारी तथा उनके हस्त प्रयोग में आवश्यक कौशल्य। इसी तथ्य को मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में लागू करते समय

मूल पूर्वान्यकनाएं तो वे ही रहेंगी जो कि यान्त्रिक क्षेत्र में होती हैं—अर्थात् परिस्थिति के मनोवैज्ञानिक आयामों की प्रकृति एवं लक्षणों के सम्बन्ध में समुचित ज्ञान तथा उनके साथ काय कर सकने की वैज्ञानिक कुशलता। स्पष्ट है कि मानवीय घटकों की प्रकृति का ज्ञान उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों का सम्बोध—तथा उनके साथ काय कर सकने का कौशल्य मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकता है। अतएव स्पष्ट है कि व्यक्ति के बहुआयामी समन्जन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य लिये हुए निर्देशन को अपनी कार्यशिलाएं मनोविज्ञान से ही प्राप्त करनी पड़े।

यान्त्रिक क्षेत्र सम्बन्धी उक्त उदाहरणों से यह भ्रान्ति उत्पन्न नहीं होनी चाहिये कि यान्त्रिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में समन्जन की प्रकृति तथा स्वरूप में यथातथ साम्य है। इस भ्रान्ति के अवरोधन के लिये इसी स्थल पर मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में समन्जन की अपनी कुछ विशिष्टताएं भी बताना आवश्यक होगा। सर्वप्रथम तो यह ध्यान रहे कि मनोवैज्ञानिक समन्जन एक जीवित परिस्थिति में सम्पन्न होता है जब कि यान्त्रिक समजन की प्रक्रिया निर्जीव स्थूल पदार्थों अथवा स्थाय पक्षों में होती है। द्वितीय-और अधिक महत्त्वपूर्ण स्मरणीय तथ्य इस सम्बन्ध में यह है कि मनोवैज्ञानिक समजन प्रक्रम से सम्बन्धित सभी पक्ष गत्यात्मक होते हैं। उनमें भौतिक जगत् की यान्त्रिक स्थिरता नहीं होती। इन पक्षों के उदाहरणस्वरूप हम या तो व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण की सम्भावित असंगतियों को ले सकते हैं अथवा उसी के अन्दर में स्थित एषणाओं अन्तर्नोदों इच्छाओं के मध्य संघर्ष को देख सकते हैं। सामान्यतः किसी भी प्रकार की असंगतता संघर्ष अथवा द्वंद्व-तनाव उपस्थित करता है। तनाव का अनिवार्य परिणाम है पीड़ा जो कि व्यक्ति के कुसमन्जन का कारण बनती है। इस तनाव तथा तनावजन्य पीड़ा को दूर करने के लिये आवश्यक हो जाता है कि परिस्थिति में वर्तमान विविध घटकों की प्रकृति से परिचय प्राप्त किया जावे। परिचय के पश्चात् या उसके साथ साथ ही अनिवार्य हो जाता है कि उनकी गति विधियों का सज्ञान। समन्जन की प्रकृति तथा उसकी गतिविधियों का वैज्ञानिक ज्ञान ही हमें व्यक्ति को समन्जन की सुखद स्थिति की ओर ले जा सकने में सक्षम कर सकता है। यह वैज्ञानिक सम्बोध मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि निर्देशन का एक प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति को उसके सर्वांगीण समन्जन में सहायता प्रदान करता है इसलिये उसे मनोविज्ञान की वैज्ञानिक नींव पर ही अपनी प्राथमिक कार्य शिलाएं स्थापित करनी होगी।

शिक्षा के द्वितीय समाहारी ध्येय— विकास का सम्प्रत्यय समन्जन से न केवल सम्बन्धित होता है अपितु उससे प्रभावित भी होता रहता है। असंगत पक्षों के सहअस्तित्व से सम्पूर्ण परिस्थिति का विकास अवरुद्ध होने की आशंका रहती है यह एक सामान्य प्राकृतिक तथ्य है। प्राकृतिक प्राणी मानव के जीवन में भी यह तथ्य समान रूप से चरितार्थ होता है। इसलिए प्रथम महत्त्वपूर्ण तत्त्व इस सम्बन्ध में यही है कि कुसमजित व्यक्ति का विकास अवरुद्ध अथवा विकृत हो जाने की आशंका रहती

है—और ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति की सहायता करने में मनोविज्ञान का ही आश्रय लेना पड़ता है।

दूसरे—शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में विकास के सम्प्रत्यय का परीक्षण निर्देशन से सम्बन्धित एक और विचारणीय तथ्य प्रस्तुत करता है। सामान्यतः व्यक्ति का विकास किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली का सदैव से साधारणतः स्वीकृत ध्येय माना जाता रहा है। यों एक दृष्टि से विकास समस्त जीवित प्राणियों का एक मूल लक्षण माना जाता है जो कि उन्हें निर्जीव वस्तुओं की श्रेणी से विभाजित करता है। अतएव प्रश्न उठ सकता है इस स्वयम्भू प्रक्रम में शिक्षा जैसे किसी बाह्य प्रभाव की क्या आवश्यकता? किन्तु इसी प्रश्न के उत्तर में निर्देशन की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता का प्राथमिक उत्तर प्राप्त होता है। विकास की सहज उपस्थिति ही उसकी दिशा की वांछनीयता की सम्बन्धित समस्या उत्पन्न कर देती है। वांछनीयता एक निरपेक्ष सम्प्रत्यय नहीं है। जहाँ धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में इस वांछनीयता का स्वरूप शिक्षा तथा समाज के स्वीकृत मानकों द्वारा निर्धारित होता है वहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वांछनीयता की प्रकृति तथा गतिविधि मानव के वैयक्तिक लक्षणों के स्वरूप व उसकी आवश्यकताओं द्वारा अनुशासित होती है। व्यक्ति विकास के निर्धारक प्रभावक तथा अवरोधक तत्वों का समुचित सन्तोष तो मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकता है। इस सन्तोष के अभाव में निर्देशन कार्यकर्ता के लिए न तो व्यक्ति विकास को समुचित दिशाओं में प्रेरित करने की क्षमता प्राप्त हो सकती है न उसे आवश्यकतानुसार नियंत्रित करने की योग्यता उपलब्ध हो सकती है। अतएव जीवन तथा शिक्षा के अन्तिम लक्ष्य वांछनीय विकास की ओर मानव को ले जाने में निर्देशन का मनोवैज्ञानिक आधार निहित रहता है।

(२) स्व वास्तवीकरण

अब इस स्थल पर व्यक्ति-विकास की अन्तिम सन्तुष्टिमय स्थिति के रूप में स्व वास्तवीकरण का निर्देशन में सम्बन्ध परीक्षण समीचीन होगा। स्व वास्तवीकरण का तात्पर्य है—अपनी आशाओं क्षमताओं अपेक्षाओं के अनुरूप प्रत्यक्ष रूप से सफल एवं प्रभावमय क्रियाएँ कर सकने की सन्तोषप्रद स्थिति की अनुभूति कर सकना। मानसिक दृष्टि विकास एवं सन्तुलन की यह सर्वोच्च मनोवैज्ञानिक परिस्थिति मानी जा सकती है जिसकी तुलना हम दार्शनिक क्षेत्र के स्व प्रत्यभिज्ञीकरण से कर सकते हैं। वस्तुतः विकास एवं समायोजन दोनों ही की यह सर्वोच्च स्थिति कही जा सकती है। इस स्व वास्तवीकरण की प्राथमिक सीढ़ी का स्थापन एवं केन्द्रीय प्रेरणा की प्राप्ति होती है व्यक्ति को स्व धारणा के रूप में। वस्तुतः इस स्व धारणा का निर्माण ही मानव जीवन की कई दृष्टियों अनुभूतियों सुख-दुखों आशा निराशाओं को एक बहुत बड़ी सीमा तक अनुशासित करता है। असंगत अथवा त्रुटिपूर्ण स्व धारणा वाले व्यक्ति के लिए अनुकूलतम परिस्थितियों का लाभ उठा सकना भी असम्भव हो जाता है। अपने आप की ओर के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार की भ्रान्तियाँ हो

सकती है। या तो व्यक्ति अपना अवमूल्यन करता है—अथवा अतिमूल्यन। यह भी हो सकता है कि व्यक्तित्व के कुछ पक्षों में वह अपने आपको हीनता की दृष्टि से देखता रहता है तथा अन्य पक्षों में एक असंगत उत्कृष्ट भावना बनाए रहता है। इस प्रकार्य क्षमता के दृष्टिकोण से उक्त दोनों ही परिस्थितियाँ व्यक्ति के लिए हानिकारक होती है। अपने जीवन के विविध पक्षीय उत्तरदायित्वों को सफल रूप से निभा सकने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्ति को अपनी क्षमताओं तथा सीमितताओं—दोनों का ही सही सज्ञान हो। यह आवश्यकता केवल अपने स्वयं के साथ समजित होने के लिये ही नहीं है। वस्तुतः अपने पर्यावरण के कई अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापना एवं उनके साथ सुचारु रूप से कार्य कर सकने हेतु भी व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है कि उसे अपने विषय का सही सम्बोध हो। जहाँ पर स्वयं सम्बन्धी अतिमूल्यन करने वाला व्यक्ति अपने आप में असफलताओं का अनुभव करते हुए अन्य व्यक्तियों के लिए भी हंसी का पात्र बनता है वहां पर अपनी क्षमताओं से अपरिचित व्यक्ति अवसरों के लाभ से वंचित रहता हुआ असफलताओं निराशाओं तथा हीन भावनाओं से सतत पीडित होता रहता है। इस भयंकर मनोवैज्ञानिक मन स्थिति के अस्तित्व में सुनियोजित शिक्षा भी व्यक्ति के लिए अनुत्पादक ही सिद्ध होती है।

निर्देशन का प्राथमिक उत्तरदायित्व होता है व्यक्ति को उसकी सही तस्वीर देख सकने तथा उसे स्वस्थ रूप से स्वीकार कर सकने में सक्षम बनाना। इस स्वस्थ स्वीकृति की स्थिति में ही वह अनावश्यक आशाओं की अग्नि में अपनी मूल्यवान शक्तियों को भी भस्म करने का बचाव करता उनके अनुकूल सफल कार्य कर सकने के लिए उन्हें उचित सचित करता रह सकता है। इस सब सफलता के परिणामस्वरूप धीरे धीरे अपनी सुप्त क्षमताओं का भी सतत विकास करता हुआ प्रगति की राह पर आनन्दपूर्वक अग्रसर हो सकता है। इसी मार्ग की अन्तिम परिस्थिति पर उसे स्व वास्तवीकरण की संतोषप्रद अनुभूति हो सकती है। इन चरणों के बीच सतत रूप से व्यक्ति को निर्देशित कर सकने के लिए उसके विविध वैयक्तिक घटकों का प्राथमिक परिचय उनकी निहित सम्भावनाएं उनके प्रभावक बाधक-तथ्य—आदि तथ्यों की जानकारी अनिवार्य है—और यह जानकारी मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकती है। वस्तुतः मनोविज्ञान का नूतन क्षेत्र ही व्यक्ति समजन की ये नवीन राह दर्शाता है। किन्तु इन राहों पर चल सकने के लिए निर्देशन का पर्यावरणिक आयाम विकसित होना जा रहा है और इस विकास में इस निरन्तर रूप में मनोविज्ञान का मौलिक आधार शोधना पड़ता है।

( ) वैयक्तिक विभिन्नताएं

निर्देशन कार्य का प्रमुख केन्द्र बिन्दु होता है व्यक्ति—और आधुनिक मनोविज्ञान ने इस व्यक्ति की प्रकृति के सम्बन्ध में जो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किया है वह है वैयक्तिक विभिन्नताओं का। मानव-व्यवहार के इस नूतन विज्ञान ने प्रतिस्थापित किया है कि एकक व्यक्ति अपने आप में सम्पूर्ण एवं विभिन्न इकाई

है। प्रत्यक्ष व्यक्तियों के किसी वृन्द, समूह में भी कोई दो चेहरे एक से नहीं होते किन्तु इस साधारण तथ्य को एक नित्य सहज वास्तविकता के रूप में देखते हुए हमारी प्रकृति से एक सामान्य स्वीकृति मात्र देने की हो जाती है। इस प्रत्यक्ष वास्तविकता पर कुछ अधिक विचार करने पर मालूम होता है कि किसी व्यक्ति की ओर सबसे प्रथम ध्यान आकर्षित करने वाले उसके चेहरे से आगे बढ़ने पर व्यक्तियों के विविध शारीरिक तत्त्वों—यथा लम्बाई, मोटाई, वक्ष का रूप, केश का रंग, कण्ठ का स्वर आदि में भी स्पष्ट विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। ये तो हुए व्यक्ति के प्रायः दृश्यमान घटक जिनका कि प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण किया जा सकता है। मनोविज्ञान का विकास इन विभिन्नताओं के वैज्ञानिक मूल के सम्बन्ध में हमें प्रबुद्ध करता हुआ स्पष्ट करता है कि जिस प्रकार शारीरिक रूप से कोई भी दो व्यक्ति एक से नहीं होते उसी प्रकार व्यक्तियों के विभिन्न मनोवैज्ञानिक आयामों में भी विचित्र विभिन्नताएं पाई जाती हैं। जहाँ व्यक्तियों की मानसिक योग्यताओं में विभेद हो सकता है वहाँ विविध संवेगात्मक लक्षणों के भिन्न भिन्न स्वरूप विभिन्न व्यक्तियों में परिलक्षित होते हैं। शिक्षक को कक्षा में केवल विविध बौद्धिक स्तरों के छात्रों के साथ कार्य करने की समस्या मात्र का ही सामना नहीं करना होता है। अधिगम के प्रक्रम से सम्बन्धित अन्य कई घटक भी होते हैं जो कि उसके अध्यापन कार्य को प्रभावित करते रहते हैं। जहाँ एक छात्र छुई मुई के समान सतत संकुचित रहकर अध्यापक के विविध प्रयासों के बावजूद भी अपनी अन्तर्मुखी गुफा को छोड़ कर कक्षा में समुचित सहयोग प्रदान नहीं कर पाता वहाँ पर कोई अन्य बाह्यमुखी विद्यार्थी अपनी निरन्तर अथवा आकर्षी क्रियाओं द्वारा कक्षा का सामान्य अनुशासन भी विचलित कर सकता है। किसी छात्र के लिए शिक्षक के अध्यापन स्तर एवं गति की सामान्यता सन्तोष का कारण हो सकती है जबकि दूसरे विद्यार्थी के लड़खड़ाते मानसिक चरण कक्षा की औसत गति से भी कदम नहीं मिला पाते। अध्यापक की एक सामान्याभासित टिप्पणी जहाँ किसी संवेदनशील छात्र के नेत्रों में सावन भादों बरसा देती है वहाँ अध्यापक की डाँट फटकारों की झड़ी भी किसी कच्छपवत् विद्यार्थी के कानों पर जूं तक नहीं रेंगा सकती। यहाँ तक तो हुई व्यक्ति व्यक्ति के बीच भिन्नताओं की बात। किन्तु इस प्रसंग में विभेद से भी सशक्त तथ्य जिस पर आधुनिक मनोविज्ञान प्रकाश डालता है—वह है अन्तर्वैयक्तिक विभिन्नताओं का। एक व्यक्ति दूसरे से तो भिन्न होता ही है किन्तु एक व्यक्ति के अन्तर में भी नाना प्रकार की विरोधाभासी भिन्नताओं का सह-अस्तित्व पाया जाता है। व्यक्ति के सामान्य विकास प्रक्रम में से इस तथ्य का सबसे प्रत्यक्ष उदाहरण दिया जा सकता है। यह एक स्पष्ट सत्य है कि किसी व्यक्ति के विकास आरम्भ में उसकी विविध आयु रेखाएं समानान्तर हों यह आवश्यक नहीं। शारीरिक आयु तथा मानसिक आयु के प्रचलित अन्तर के आधार पर ही तो बुद्धि-लब्धि परिकलन करने का फार्मूला बन पाया है। विविध विकास स्तरों के लिए आधुनिक मनोविज्ञान कोई मानक वय

सीमायें निर्धारित नहीं करता है क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों में परिपक्वता की गति प्रकृति तथा सह प्रभाविता में अन्तर पाया जाता है। किन्तु इस स्वीकृत व तथ्याक्ति मेन्ट को और भी अधिक सजटिलता प्राप्त होती है एक ही व्यक्ति में उपलब्ध उसकी विभिन्न प्रकार की आयुओं में अन्तर से। आज का प्रगतिशील मनोविज्ञान आयु के केवल शारीरिक तथा मानसिक विभेदों में अग्रसर होकर मानव की अनेक कोई आयु— यथा संवेगात्मक व्यावसायिक शैक्षिक आदि के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है। वैयक्तिक विकास के लिए उत्तरदायी शिक्षक को इन सभी प्रकार की मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में ही अपने कार्य करने पड़ते हैं। विविधरूपी तथा विविध पक्षीय वैयक्तिक विभिन्नताओं के बीच में उन कार्य व भार को अपने नाना रूपी यथार्थी उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं। और इसीलिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है कि न केवल शिक्षक वैयक्तिक काम पर आधारित निर्देशन के प्रकार्यात्मक विधान में अभिविन्यसित हों अपितु शाला में विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित निर्देशन विशेषज्ञों की तकनीकी सेवाओं का प्रावधान हो। वस्तुतः वैयक्तिक विभिन्नताओं से अस्तित्व का तथ्य ही निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकताओं का प्रमुख आधार कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि सभी व्यक्ति यन्त्र उत्पादित पदार्थों के समान एकरूप होते तथा उनके विकास अधिगम एवं समजन के प्रश्नों में समरूपता होती तो कदाचित उनके लिए भी गत्यात्मक निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता न पड़ती किसी पूर्व निर्धारित शिक्षण ढाँचे में वे एक रंग रूप व आकार प्रकार तथा नाप जोख वाली साबुन की टिकियाओं के सदृश्य ढल जाते।

(४) व्यक्तित्व की प्रकृति —

वैयक्तिक विभिन्नता का उपरोक्त विवेचन हमारा ध्यान निर्देशन के अन्तिम किन्तु सबसे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार की ओर आकर्षित करता है और वह है व्यक्तित्व की प्रकृति।

सामान्यतः मनोवैज्ञानिकों में यह विचार अधिकाधिक सहमति प्राप्त करता जा रहा है कि व्यक्तित्व की प्रकृति का वर्णन किसी एक परिभाषा की संकुचित सीमा में अवरोधित नहीं किया जा सकता। इस विचार के आधार में है व्यक्तित्व के स्वरूप की सजटिलता। व्यक्तित्व के कई अन्योन्याश्रित अन्तर्सम्बन्धित तथा अन्तर्गठित आयामों पर आधुनिक मनोविज्ञान इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रकाश डालता जा रहा है कि व्यक्तित्व के कई लम्बे वर्णनों का समाहार केवल यह कह कर करना पड़ता है कि व्यक्तित्व वही है जो कि व्यक्ति है।

इस प्रकार का सजटिल प्रकृति के मनोवैज्ञानिक निर्मिति के साथ कार्य करने का महत् उत्तरदायित्व वहन करने वाले निर्देशन कार्यकर्ता के लिये प्राथमिक पूर्वावश्यकता होगी व्यक्तित्व के स्वरूप से तत्वात्मिक परिचय उसकी गतिकीय सम्बन्धी समुचित सम्बोध तथा उसके सम जन विषयी यथस्थित ज्ञान। स्पष्ट है कि ये सभी बौद्धिक उपलब्धियाँ मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकती है। वस्तुतः मनोवि

करने में ही जब उक्त प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है तब विचलित व्यक्तित्व के लिये क्या कहा जाय यह चिन्तन का विषय हो सकता है। यों तो निर्देशन के क्षेत्र की यह एक सामान्य मान्यता है कि शिक्षक तथा शाला उपबोधक की साधारण कार्य सीमा का प्रसार औसत छात्र तक ही रहता है। औसत जनसंख्या अर्थात् ६८.२६ प्रतिशत छात्रों के बीच जो सहज वैयक्तिक विचलन पाया जाता है उसी के परिप्रेक्ष्य में उसे अपनी कार्य योजनाओं का आयोजन धारण करना अपेक्षित होता है। मानक से बहुत अधिक मात्रा में विचलित व्यक्तियों का वह समुचित निदान कर के उन्हें उपयुक्त विशेषज्ञ के पास निर्देशित कर सके ऐसी आशा उससे की जा सकती है।

किन्तु सर्वप्रथम तो इस निदान के औचित्य तथा उपयुक्त विशेषज्ञ के चुनाव की चुनौतियों में ही मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर उचित अधिकार की आवश्यकताएं निहित रहती हैं। इस लिये निर्देशकों उपबोधकों के लिये प्रायोजित कोई भी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम बिना मनोविज्ञान का आधार लिये नहीं चल सकता। कई मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्ययों के सम्बन्ध की धारणिक स्पष्टता ही इसी क्षेत्र से उपलब्ध हो सकती है। बिना इस आधारभूत स्पष्टता के निर्देशन की प्रकार्यात्मक आयोजनाओं के त्रुटिपूर्ण हो जाने का आशंका हो सकती है।

अब ही औसत जनसंख्या के बीच प्राप्त सहज विचलन की बात। और यहीं वह मार्मिक कार्य बिन्दु है जहां पर व्यक्ति के साथ कार्य करने वाला मनः प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित का भेद परखा जा सकता है। व्यक्तित्व मनोविज्ञान में दीक्षित निदानक उपबोधक के लिये औसत जनसंख्या की परास में पड़ने वाला व्यक्ति भी वह सम्पूर्ण इकाई है जो कि उसकी समीपतम इकाई से भी कई मानों में भिन्न है। किन्तु व्यक्तित्व मनोविज्ञान में वैयक्तिक विभिन्नता के इस सूक्ष्म ज्ञान के साथ ही वह समस्त जनसंख्या की कतिपय आधारभूत समान आवश्यकताओं के प्रति भी पूर्णरूपेण संवेदनशील रहता है।

उक्त विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के स्वरूप ज्ञान में निर्देशन कार्य का एक अत्यन्त समाहारी मनोवैज्ञानिक आधार निहित रहता है।

उपसंहारात्मक कथन

निर्देशन के नूतन क्षेत्र में विषय प्रवेश तथा उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विहंगावलोकन के तत्सगत अनुवर्तन में प्रस्तुत यह अध्याय निर्देशन कार्य के मूलभूत आधारों का एक समाहारी चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इस अध्याय में निर्देशन के दार्शनिक सामाजिक सांस्कृतिक शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक आधारों का भिन्न भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विशद विवेचन करने का प्रयास किया गया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे विभिन्न आधार एक दूसरे की शून्यता में देखे-परखे जा सकते हैं न ही यह मान्यता होनी चाहिये कि इनमें से किसी का निर्देशन कार्य में निरपेक्ष महत्व है।

अन्ततोगत्वा निर्देशन कार्य का मूल आधार है—मानव या और विशिष्ट रूप से—व्यक्ति। व्यक्ति के व्यक्तित्व की बहुपक्षीयता के कारण मानव से सम्बन्धित प्राय: कोई भी ऐसा विषय क्षेत्र नहीं होगा जिसके विशेषज्ञ एकाकी रूप से अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को निभा सकें। विविध विषय क्षेत्रों की सीमाओं में निर्देशन के आधारों का निहित होना इस तथ्य की पुष्टि करता है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में निर्देशन का इन विविध विषयों से सैद्धान्तिक सम्बन्ध स्थापन भी सम्पन्न हुआ।

इस समाहार में द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पुस्तक के इस स्थल पर निर्देशन के सैद्धान्तिक विवेचन का भी एक प्रकार से समाहार हुआ है। पुस्तक के आगे का अधिकांश निर्देशन की प्रकार्यात्मक योजनाओं तथा व्यावहारिक कार्य भूमिकाओं से सम्बन्धित होगा।

निर्देशन सेवाओं का परिचय

(विषय प्रवेश मूलभूत अभिग्रहण वर्तमान विद्यार्थी की वैयक्तिक अपेक्षाएं स्वयं निश्चय कर सकने की क्षमता सहयोगिता तथा सहिष्णुता आत्मनिर्भरता नागरिक उत्तरदायित्व विद्यार्थी अधिकारपत्र प्रकार्यात्मक सेवाएं निर्देशन सेवाएं प्रारूप स्वरूप कतिपय मूलभूत बिन्दु अवबोध्य व्याख्या एवं आदर्श रूप प्रत्येक सेवा का विशद वर्णन वैयक्तिक सूचना सेवा प्रमापित मापन उपयोगिता विकासात्मक व्यापकता विश्वसनीयता प्रकार अभिलेखागार तन्त्र शरीर एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी दत्त शारीरिक उपलब्धियां मनोवैज्ञानिक दत्त जीवन सम्बन्धी आकांक्षाएं सूचनास्थान एवं संकलन विधि प्रारूप पर्यावरणीय सूचना सेवा प्रकृति अन्तर्निहित अन्तर्भिन्नता एवं परिशुद्ध विविधता प्रकार शैक्षिक पाठ्यक्रम एवं पाठ्य वर्चाएं व्यावसायिक अवसर-व्यावसायिक प्रशिक्षण सामाजिक आर्थिक स्रोत सूचना सूचना स्रोत एवं संकलन विधि प्रारूप उपबोधन सेवा प्रकृति-वैयक्तिक एकान्त अवस्था गोपनीयता केन्द्रीय सेवा प्रकार शैक्षिक पाठ्यक्रम शैक्षिक कुशलताएं वैयक्तिक सामाजिक समस्याएं पारिवारिक कठिनाइयां आर्थिक प्रश्न प्रारूप एवं आवश्यक तत्त्व नियोजन सेवा प्रकृति समाहारी एवं सेवाओं का परिणाम सहयोगी विकासात्मक प्रकार शैक्षिक कार्यक्रम शैक्षिक कठिनाइयां शारीरिक विभिन्नताएं प्रशिक्षण पाठ्येतर क्रियाएं व्यावसायिक प्रवेश साक्षात्कार की तैयारी प्रारूप तथा आवश्यक तत्त्व वांछनीय उपागम कर्तव्य सम्पन्नता एवं न्यूनतम आर्थिक प्रावधान अंशकालीन कार्य-व्यवस्था अनुवर्ती सेवाएं प्रकृति सातत्य सहयोगी समाहारी विश्वसनीय एवं वैध प्रकार व्यक्ति का अनुवर्तन निर्देशन सेवाओं का अनुवर्तन प्रारूप एवं आवश्यक तत्त्व व्याख्या दर्शन नेतृत्व सहयोग अर्थ व्यवस्था कर्तव्य सहायता निर्देशन सेवाओं की भारत में सम्भावनाएं प्रशासनीय अभिवृत्तियां कार्मिकों का प्रशिक्षण अर्थ व्यवस्था न्यूनतम स्वरूप उपसंहारात्मक वचन।)

इस पुस्तक के प्रारम्भ से ही जिस तथ्य पर बारम्बार बल दिया जा रहा है वह है निर्देशन के नूतन क्षेत्र की असन्दिग्ध प्रकार्यात्मकता। निर्देशन की प्राथमिक परिचय तथा विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते समय ही हम कह चुके हैं कि वर्तमान विकासमान विषय-सेवा की सैद्धान्तिक मान्यताओं को एक व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु ही निर्देशन का नवीन विधान आधुनिक युग में अवतीर्ण हुआ है। प्रस्तुत

अध्याय तथा इसके अनुवर्ती अध्यायों में अधिकार निर्देशन के प्रक्रियात्मक पक्षों का विवेचन किया जाएगा। इस अध्याय में निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित मूल सामग्री प्रस्तुत की जाएगी।

मूलभूत अभिग्रहण

किसी भी क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य करने के कतिपय मूल अभिग्रहण होते हैं। या तो एक अत्यन्त बृहद दृष्टिकोण से प्रथम तीन अध्यायों के समस्त विवेचनों को ही निर्देशन कार्य के सैद्धान्तिक अभिग्रहणों के रूप में देखा जा सकता है। किन्तु अध्याय के इस अंश का उद्देश्य कुछ अधिक विशिष्ट है। शाला की कतिपय ऐसी आस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थी, शिक्षक, शाला कार्यकर्ता तथा समाज के प्रति जो इनकी विभिन्न आशाएं अपेक्षाएं सामान्यतः होती हैं। उनके सम्बन्ध में अपनी मूल मान्यताएं प्रस्तुत करते हुए निर्देशन सेवाओं के स्वरूप सम्बन्धी कुछ आधारभूत अभ्युपगमों का विवेचन यहाँ किया जाएगा। प्रत्येक अभ्युपगम का प्रस्तुतीकरण निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित करके किया जाएगा। अपेक्षित है कि इस तकसंगत पृष्ठभूमि में निर्देशन सेवाओं का परिचय पाठकों के लिए अधिक अर्थपूर्ण सिद्ध हो सकेगा।

(१) वर्तमान विद्यार्थी की व्यक्तिगत अपेक्षाएं

गणतन्त्र के स्वीकृत शिक्षा दर्शन के अनुसार आज के विद्यार्थी से समाज कुछ वैयक्तिक गुणों की अपेक्षा करता है। वस्तुतः एक सफल गणतन्त्र में प्रभावपूर्ण एवं सन्तोषप्रद जीवनयापन कर सकने हेतु व्यक्ति में इस प्रकार के गुण होना आवश्यक होता है। इनमें से कुछ प्रमुख मान्य गुणों की ओर संक्षिप्त रूप में पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

(क) स्वयं निश्चय कर सकने की क्षमता

गणतन्त्र का प्रथम लक्षण है वैयक्तिक अधिकारों का समुचित आदर। इन अधिकारों में से भी जो अधिकार व्यक्ति के लिए सबसे अधिक महत्त्व रखता है वह है अपने विविधपक्षीय जीवन सम्बन्धी विभिन्न निश्चय स्वयं करने की स्वतन्त्रता। दूसरों द्वारा व्यक्ति पर थोपे गए निश्चयों का न तो व्यक्ति के लिए कोई मूल्य रहता है न उसकी उनमें आन्तरिक आस्था ही बन पाती है। जब इस आवश्यक आस्था की प्रेरणा ही व्यक्ति के पास नहीं होती तो स्वाभाविक है कि इन निश्चयों को क्रियान्वित करने हेतु उसमें किसी प्रकार का उत्साह भी नहीं रहेगा।

उक्त सामान्य सत्य की स्वीकृति जो सम्बन्धित प्रश्न प्रस्तुत करती है– वह है— ये स्वतन्त्र निश्चय ले सकने की पूर्वावश्यकताएं क्या होनी चाहिए? अथवा वे कौनसी पूर्व-परिस्थितियां हैं जो कि व्यक्ति को स्वतन्त्र निश्चय ले सकने में सहायक होती हैं? मूलतः इन पूर्वावश्यकताओं या पूर्व परिस्थितियों को दो दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है–व्यक्ति के सन्दर्भ में तथा उसके वातावरण से सम्बन्धित करके। सर्वप्रथम तो व्यक्ति के निश्चय से सम्बन्धित इन दोनों ही पक्षों के विषय में उस

सम्पूर्ण जानकारी होना चाहिए। पर्याप्त समुचित विश्वसनीय तथा वध सूचनाओं के अभाव में कोई भी निश्चय कुछ अर्थ नहीं रखता वस्तुत निश्चय की स्थिति तक पहुँच सकने की व्यक्ति की मनोदशा ही नहीं बन पाता। सूचनाओं की उपलब्धि के पश्चात् द्वितीय आवश्यकता उत्पन्न होती है—इस सूचना-सामग्री के समुचित अवबोध की। आज के प्रगतिमान युग में कई तथ्यों की प्रकृति ही इतनी तकनीकी होती है कि उनका वास्तविक अर्थ अथवा निहित समझना बिना उस तकनीक में निपुण विशेषज्ञ की सहायता के कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ उदर-पीड़ा से दुःखी किसी व्यक्ति के बेरियम टेस्ट का परिणाम उसके भावी आहार सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करता है। किन्तु उस सूचना का वाचन विवेचन वह बिना चिकित्सा विशेषज्ञ की सहायता के नहीं कर सकता। आर्थिक क्षेत्र के इस मूर्त उदाहरण के समान मनोवैज्ञानिक-संवेगात्मक क्षेत्र में कई परिस्थितियाँ होती हैं जिनका अवबोध मानव के लिए उसके निश्चयों की पूर्वावश्यकता के रूप में होता है। इनमें से कुछ तो वह अपने ज्ञान की स्तर एवं सीमा के अनुरूप स्वयं समझ सकता है। किन्तु कुछ के समाधान का प्रश्न तो दूर रहा उनका संज्ञान करना भी बिना विशेषज्ञों की सहायता के सम्भव नहीं हो पाता। शैक्षिक जगत का एक सामान्य उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट कर देगा। आठवीं कक्षा में विज्ञान गणित तथा मानवीय विषयों में लगभग समान उपलब्धि प्राप्त कर एक प्रतिभाशाली छात्र को यह निश्चय लेना है कि वह नवीं कक्षा में कौनसा विषय विशेषता क्षेत्र चयन करे। इस महत्त्वपूर्ण निश्चय के ऊपर उसके समस्त भावी जीवन की दिशा निर्भर करती है। प्रस्तुत उदाहरण में सर्वप्रथम तो उपलब्ध सूचना की अपर्याप्तता उसके निश्चय को सम्भव नहीं कर पा रही है। वस्तुतः दोनों ही विषय-क्षेत्रों की समान उपलब्धि उसके लिये निश्चय ले सकने की सुखमय स्थिति प्रस्तुत करने के स्थान पर दुविधा का दुख ही उत्पन्न कर रही है। सूचनाओं की सम्पूर्णता के लिए छात्र की अभिक्षमताओं तथा रुचियों के सम्बन्ध में अधिक बहुत सामग्री की आवश्यकता है—और इन सामग्रियों का मनोवैज्ञानिक उपकरणों द्वारा निर्धारित सकलन बिना इस क्षेत्र के विशेषज्ञ की सहायता के सम्भव नहीं है। किन्तु संकलन हो चुकने पर भी ये मनोवैज्ञानिक सूचनाएं अपने आप में व्यक्ति के लिए कोई अर्थ नहीं रख पाएंगी। आवश्यक यह होगा कि पुनः इस क्षेत्र का विशेषज्ञ ही इन सूचनाओं की व्याख्या व्यक्ति के बोध स्तर के अनुरूप करे। तभी वह अपने निश्चय में इनका समुचित उपयोग करके उस निश्चय को वास्तविक रूप में लाभप्रद तथा अर्थपूर्ण बना सकेगा। तो स्पष्ट है कि निश्चय ले सकने की प्राथमिक पूर्वावश्यकताओं—पर्याप्त सूचना-सामग्री की उपलब्धि तथा उसका समुचित अवबोध की पूर्ति हेतु विशेषज्ञ की सहायता पूर्वानुमानित है और यह सहायता जैसा कि अध्याय में आगे विस्तारपूर्वक बताया जाएगा निर्देशन विशेषज्ञों की व्यावसायिक सेवाओं द्वारा ही प्राप्त हो सकती है जिनके प्रशिक्षण का एक प्रमुख अंश मनोविज्ञान से सम्बन्धित होता है।

यहाँ तक तो हमने केवल व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाओं के ही उदाहरण

प्रसारित हो सकता है और निर्देशन का एक नया शुभ्र प्रकार के प्रकाश को लेकर मानव-गगनांगण में अवतीर्ण हुआ है।

(ख) सहयोगिता तथा सहिष्णुता— वैयक्तिक गरिमा का सादर स्वीकृति के समकक्ष अथवा समानान्तर ही गणतन्त्र का द्वितीय सहज लक्षण है। अन्तस चरण तथा मूल्यों में साम्भावना। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार निश्चय तथा कार्य की स्वतन्त्रता देना स्वीकार किया जाता है तो वैयक्तिक विभिन्नता के मनोवैज्ञानिक सत्य के सन्दर्भ में यह पूर्वानुमानित होता है कि गणतान्त्रिक समाज-व्यवस्था में कई प्रकार के विचारों निश्चयों कार्यों का सहअस्तित्व रहेगा। व्यावहारिक सह-अस्तित्व की सफलता के लिए पुनः अनिवार्य हो जाता है कि ऐसे समाज के व्यक्तियों का एक दूसरे के विचारों मूल्यों व्यवहारों के प्रति आदर हो। अपने स्वयं की विचार धारा से कुछ वैभिन्य होने पर भी उनमें एक दूसरे के मतों को सम्मान दे सकने की क्षमता होनी अपेक्षित है।

यहाँ पर एक मौलिक तथ्य का स्पष्टीकरण आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र विचारधारा होने से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि इन विविध धाराओं की गतिविधि में केवल विरोधिता ही प्रवाहित हो सकती है। समान मान्यताओं से आबद्ध किसी भी समाज के कतिपय सर्वस्वीकृत आधारभूत मूल्य तो अवश्य होने हैं। यदि ये न हों तो उस जनसमूह को समाज संज्ञा से सम्बोधित भी नहीं किया जा सकता। गणतन्त्र में व्यक्ति के विचार स्वातन्त्र्य का अर्थ यही है कि मूल सामाजिक मान्यताओं की वृहद् पृष्ठभूमि में उसकी वैयक्तिक क्षमताओं को अनुकूलतम सम्पुष्टि प्राप्त हो सके। वस्तुतः एक आदर्श गणतन्त्र में सामाजिक उन्नति तथा वैयक्तिक विकास एक-दूसरे के परिपूरक एवं पोषक ही होते हैं। तो यह वह सुखमय स्थिति होगी जहाँ गंगा-यमुना की पृथक्‌भासित जलधाराओं के संगम में एक ही सरस्वती की सुषमा प्रवाहित होती रहती है। इसलिए सामान्यतः गणतन्त्र में व्यक्ति-व्यक्ति के हितों में संघर्ष नहीं होना चाहिए।

यदि व्यक्ति-व्यक्ति के हितों में संघर्ष का नहीं होना एक गणतान्त्रिक मान्यता है तो उस मान्यता का तर्कसंगत उपक्रम है सहिष्णुता तथा अन्तस चरण विरोधी अथवा विरोधाभासी आयामों में संघर्ष को अवरोधित करने का सहज तथा सरल उपाय है इन आयामों में पारस्परिक परिचय और इस परिचय की व्यावहारिक राह है अन्तसचरण यह अन्तसचरण विचारों तथा मान्यताओं मूल्यों का होना चाहिए। अन्तस चरण की उक्त प्राकृतिक प्रक्रिया में व्यक्ति की सहिष्णुता उसका एक अनिवार्य पूर्वानुमानित गुण बन जाती है। यदि दूसरे के विचारों तथा मूल्यों के प्रति संवेदना तथा सहिष्णुता ही नहीं होगी तो अन्तस चरण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्राथमिक परिचय इस पूर्वापेक्षित सहिष्णुता के भी मूल में अवस्थित रहता है।

पारस्परिक परिचय, सहिष्णुता तथा अन्तःकरण का सम्मिलित सुखद परिणाम प्रकट होता है। सहयोगिता के रूप में आकर न केवल किसी भी गणतन्त्र का एक सच्चा लक्षण है अपितु जो गणतन्त्र समाज में एक विशिष्ट स्वरूप धारण करती है। स्वाभाविक। समाज में बाह्य सत्ता द्वारा शक्ति के माध्यम से आरोपित किसी कार्य के पुर्जों में यान्त्रिक तारतम्य के विपरीत गणतान्त्रिक सहयोगिता में स्वतःस्फूर्त स्वेच्छाकृत तथा प्रबुद्ध प्रजातन्त्र एक सूक्ष्मतम कार्यगति है जिसकी विराट् मुखी सम्पन्नता सामाजिक कार्यों की सम्मिलित एकता के मध्य भी जीवनदायी वैविध्य के विभिन्न रूप निखारती रहती है, सृजनात्मक अनन्यता को प्रस्फुटित करती रहती है। एक व्यक्ति में उक्त वांछनीय गुणों का विकास कई प्रकार की समुचित सूचनाओं के आधार पर ही सम्भव हो सकता है और इस सबल आधार पर सुव्यवस्थित निर्माण निष्पन्न या कतिपय क्षेत्रों के माध्यम से सन्तुलित व्यक्तित्व विकास के साथ घुल मिले रूप में हो जाता है।

(ख) आत्मनिर्भरता—गणतन्त्र के प्रारम्भिक रूप व्यक्तिगत आदर के व्यावहारिकरण की मूलभूत आवश्यकता होती है समाज के प्रत्येक व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का अस्तित्व। परावलम्बी व्यक्ति न केवल समाज के अन्य सदस्यों के लिए भारस्वरूप होने के कारण उनके सम्भावित स्नेह दान को अपने तक प्रसारित होने से अवरोधित करता है अपितु अपने पांवों पर खड़े न रह सकने वाले अपंगु की मूल शारीरिक रचना के अनुरूप ही अपने मानसिक-संवेगात्मक संसार में भी स्वयं का दीन प्रतिमा लिए हुए उस दुर्बल मूर्ति का साक्षात्कार करने में एक सतत सजीव का अनुभव करता रहता है। ऐसे व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्तियों के प्रति दर्शित सम्मान भी सही मान में सम्मान भावना न होकर केवल अपने स्वयं की हीनावस्था का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करने की एक आतुर भिक्षामात्र होती है। स्वयं को सहारे के लिए एक मूक आह्वान बनकर कई बार वह भाग अपने आँचल में अनेक अव्यक्त ईर्ष्या तथा अप्रकट संघर्षों को अवगुण्ठित कर सकता है।

यों तो परावलम्बिता के सबसे प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन तो आर्थिक क्षेत्र में ही होता है और उसके नग्न रूप से उत्सारित घृणास्पद भाव तथा ग्लानि के विरक्तिपूर्ण दृश्य अभी भी हमारी भिक्षावृत्ति में सहज ही दर्शन को मिल जाते हैं जिनका आमूल उन्मूलन हमारे समादृत गणतन्त्र का एक मूल लक्ष्य है। किन्तु इस शारीरिक आर्थिक परवशता से कहीं अधिक भयंकर होती है वह अदृश्य हीनता जो व्यक्तित्व के अंगों को उनके सृजनात्मक मानसिक क्षेत्रों में एक विपुल कीट की भाँति निरन्तर कुतरता रहती है। इस निराकार कीटाणु के कुप्रभाव में न तो स्वयं व्यक्तित्व-वृक्ष ही पनप पाता है न ही वह पल्लवित-पुष्पित टहनियों की कोई मादक सुगन्धि ही उत्पन्न कर उसके द्वारा अन्य जीवधारियों को अपनी ओर आकृष्ट कर पाता है। मानसिक स्वस्थता के क्षेत्र में आत्मपरिपूर्णता का यह अभाव व्यक्ति

को उसकी आर्थिक सामाजिक सम्पूर्णता के प्राप्ति प्रयत्नों में भी निरंतर अवरोध उत्पन्न करता रहता है।

सर्वप्रथम शैक्षिक क्षेत्र में एक छात्र को अपने प्रयत्नों के प्रति प्राय एक अविश्वास सा बना रहता है। कक्षा के अन्य छात्रों से सन्तुष्टि प्राप्त किए बिना वह अपने सामान्य कक्षा-कार्य पर भी विश्वास नहीं कर पाता। बारम्बार दूसरों से पूछने से सर्वप्रथम तो वह साथियों का समादर-स्नेह खोता जाता है। तत्पश्चात् शिक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने में भी उसे एक सतत सन्देह चिन्तित करता रहता है कि कहीं उसका उत्तर त्रुटिपूर्ण न हो। ऐसा प्रभाव बाल व्यक्ति को एक सतत संशयिता मयी स्थिति उसे दूसरों पर स्वावलम्बन के लिए निर्भर रहने के लिए बाध्य करती है। शनैः शनैः यह परावलम्बन उसकी स्थायी प्रवृत्ति बनाकर उसके व्यक्तित्व तथा जीवन के अन्य पक्षों में भी प्रविष्ट तथा प्रसारित होता रहता है।

प्रश्न उठ सकता है—इस समस्या का निर्देशन सेवा से क्या सम्बन्ध? किन्तु वस्तुतः इस समस्या का तो निर्देशन से मूलभूत सम्बन्ध है। निर्देशन का एक मुख्य उद्देश्य होता है व्यक्ति को अपनी आपकी समस्याएं सुलझा सकने में स्वतन्त्र बनाना। इस स्वातन्त्र्य के लिए व्यक्ति की आत्मनिर्भरता पूर्वानुमानित है। वस्तुतः वैयक्तिक-मानसिक क्षेत्र में यह स्व विश्वास स्वावलम्बन एवं अधिकार प्राप्त कर चुकने में सहायता देने के पश्चात भी निर्देशन की भूमिका का अन्त नहीं होता। वैयक्तिक से आगे बढ़कर आर्थिक-सामाजिक समाज में भी व्यक्ति की आत्म निर्भरता सुनिश्चित कर सकने हेतु निर्देशन कार्यकर्ताओं का उत्तरदायित्व हो जाता है—उपर्युक्त व्यावसायिक निर्देशन-सेवाओं का आयोजन। इन सेवाओं के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमतानुकूल व्यावसायिक अवसरों की सूचनाएं तथा इन व्यवसायों में प्रवेश एवं सफलता प्राप्त करने में निर्देशन प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार गणतन्त्र की एक ओर मौलिक आवश्यकता आर्थिक सम्पन्नता की भी पूर्ति वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही स्तरों पर हो सकती है।

(घ) नागरिक उत्तरदायित्व—एक दृष्टिकोण से तो उक्त-विवेचित सभी गुण स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता सहिष्णुता सहभागिता आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक सम्पन्नता व्यक्ति के नागरिक उत्तरदायित्व की व्याख्या के रूप में देखे जा सकते हैं। किन्तु चूंकि नागरिक उत्तरदायित्व को गणतान्त्रिक समाज एवं शिक्षा प्रणाली के एक प्रमुख अपेक्षित व्यवहार-गुण के रूप में स्वीकार किया जाता है इसलिए हमने इसका स्वतन्त्र विवेचन प्रस्तुत करते हुए निर्देशन सेवाओं से इसका सम्बन्ध स्थापन करना समुचित समझा।

नागरिक उत्तरदायित्व पक्ष का यदि दार्शनिक विश्लेषण किया जाय तो विश्लेषण के पहले उसके विशिष्ट्य को समझ लेना अधिक सरल होगा। उत्तरदायित्व को यदि उस सिक्के का एक पहलू कहा जाय जिसका कि दूसरा पक्ष 'अधिकार' के रूप में सुव्याख्य हो तो गणतन्त्र में 'उत्तरदायित्व' तथा 'अधिकार' के स्वरूपों का

समुचित चित्रण हो सकता है। एक प्रबुद्ध व्यक्ति तथा एक समाज के सदस्य के रूप में अपने अधिकारों के प्रति संवेदना की जागृति निर्देशन के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति में की जा सकती है। तत्पश्चात् इन अधिकारों की प्राप्ति के मार्ग पर भी निर्देशन कार्यकर्ताओं के निर्देशक हाथों में अग्रसर होती है। वस्तुतः अपने अधिकारों की प्राप्ति को ही व्यक्ति एक उत्तरदायित्व के रूप में देख पाता है। उत्तरदायित्व एवं आत्मनिर्भर व्यक्ति बनकर स्वतन्त्र एवं सुखी जीवन निर्वाह कर सकने की अधिकार प्राप्ति द्वारा वह एक सक्षम नागरिक तथा स्वावलम्बी समाज सदस्य बन पाने का सहज लिन उत्तरदायित्व भी निभाता है। यह तो हुई उत्तरदायित्व की बात। अब यदि नागरिक के इन गुणों को देखा जाय तो उसके अन्तर में भी अन्तर्निहित शक्ति अवगुण्ठित रहती है जिसका स्पष्टतम विकास तथा अनुकूलतम समञ्जन निर्देशन का ध्येय होता है। एक सक्षम व्यक्ति ही कुशल नागरिक की भूमिका को सफलतापूर्वक निभा सकता है।

वर्तमान विद्यार्थी की वर्णित अपेक्षाओं के उक्त विवेचनों से यही सामान्यानुमान किया जा सकता है कि इन अपेक्षाओं को सम्भावित कर सकने के लिए निर्देशन की नितान्त आवश्यकता है।

(२) **विद्यार्थी अधिकार पत्र** — वर्तमान विद्यार्थी में एक गणतान्त्रिक समाज की क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं इसका हमने विशद रूप से विवेचन किया। किन्तु यह विवेचन पुनः एक मूल प्रश्न हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। वह है— इन अपेक्षाओं के सन्दर्भ में एक गणतान्त्रिक शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी का अधिकार-पत्र क्या हो सकता है? या यों कहें कि हमारी इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए हम उन्हें क्या अधिकार देंगे?

अप्रत्यक्ष रूप से कई सम्बन्धित अधिकारों का विवेचन तो हम प्रत्येक अपेक्षा के साथ-साथ कर चुके हैं। उसके अनुवर्तन में अब इन अधिकारों का प्रत्यक्ष रूप से संक्षिप्त समाहार निर्देशन सेवाओं के परिवेश की एक समुचित पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर सकेगा।

हमने प्रारम्भ में ही इस बात पर बल दिया था कि गणतान्त्रिक शिक्षा प्रणाली में दीक्षित प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विविध निश्चय स्वतन्त्रतापूर्वक ले सके। आज के संकटमय युग में इस प्रकार के निश्चय ले सकने के लिए व्यक्ति में विवेचक बुद्धि का होना अनिवार्य है। किन्तु बुद्धि में विवेचक शक्ति का अस्तित्व ही तभी आवश्यक तथा तर्कसंगत होगा जबकि व्यक्ति के पास विविध प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध हों। ये सूचनाएं एक व्यक्ति तथा उसके समूचे पर्यावरण से सम्बन्धित निर्देशन के व्यावसायिक कार्यक्रमों द्वारा ही उपलब्ध की जा सकती हैं।

सूचनाओं की उपलब्धि के पश्चात् भी किस प्रकार के वातावरण में निश्चय लिए जाते हैं यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो जाता है। सत्तावादी वातावरण में

निर्धारित योजनाओं तथा अनुज्ञात्मक पर्यावरण में निर्मित आयोजनाओं का न केवल स्वरूप भिन्न होता है अपितु उनके व्यावहारीकरण की विधाओं में भी पर्याप्त भेद प्रविष्ट हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गणतान्त्रिक शिक्षा प्रणाली एवं समाज योजना के अन्तर्गत विद्यार्थी से जिन निश्चयों की अपेक्षा होती है उसके लिए एक अनुज्ञात्मक पर्यावरण की प्राप्ति होनी चाहिए जिसमें उसे दी गई सहायता किसी भी प्रकार के आज्ञा निर्देशों द्वारा अनुबन्धित न हो।

इस प्रकार के उपयुक्त पर्यावरण में समुचित सूचनाओं के सन्दर्भ में स्वतन्त्र निश्चय ले चुकने पर प्रश्न उठता है इन निश्चयों को कार्यान्वित करने का। आज के युग की वर्धमान सजटिलता के परिप्रेक्ष्य में यदि यह कहा जाए कि अपनी सुनिर्धारित योजनाओं के वास्तवीकरण में भी विद्यार्थी को कई अनपेक्षित पेचीदगियों का सामना करना पड़ता है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। नवीन मार्ग पर विश्वासपूर्वक अपने प्राथमिक चरण जमा सकने में सहायता प्राप्त करना उसका अधिकार है। एक बार उस मार्ग से कुछ परिचय प्राप्त कर चुकने पर फिर उस पर सफलतापूर्वक अग्रसर होने की अपेक्षा हम उससे व्यवसायगत रूप में कर सकते हैं। किन्तु अपने निर्धारित मार्ग पर चलते चलते अपने वैयक्तिक विकास तथा पर्यावरणीय परिवर्तनों के साथ साथ कई प्रश्न व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं। सबसे स्वाभाविक प्रश्न जो उसके मन में उसकी प्रत्येक क्रिया के पश्चात उत्पन्न हो सकते हैं वे हैं– मैंने कितना अच्छा किया ? – क्या मैंने जो किया वह करना था ? क्या मैंने जो चुना उससे अधिक उपयुक्त विकल्प भी मेरे लिए कोई था ? आदि। किसी भी सजग उत्तरदायी तथा विवेकयुक्त गणतान्त्रिक नागरिक के मन में इस प्रकार की जिज्ञासाओं की जागृति यदि एक सराहनीय वास्तविकता है तो इस प्रकार की उलझनों के मध्य अपना निज मार्ग का निर्धारित शमन प्राप्त करने में वर्णानीय सहायता पाना भी उसका गणतान्त्रिक अधिकार है। आवश्यकता है कि न केवल वह स्वयं अपनी क्रियाओं का अपने निश्चय एवं अपनी योजनाओं के सन्दर्भ में सतत मूल्यांकन करता रहे अपितु विशेषज्ञ अनुवर्तन द्वारा उसे अपने निजी मूल्यांकन की विवेकशीलता-वर्धना के सम्बन्ध में आश्वासन प्राप्त होता रहे।

(३) प्रकार्यात्मक सेवाएं — उक्त अनुच्छेद में वर्णित आज के विद्यार्थी से हमारी अपेक्षाएं तथा इन अपेक्षाओं के सन्दर्भ में उसके अधिकार—एक मूलभूत आवश्यकता की ओर बारम्बार हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं–और वह आवश्यकता है— प्रकार्यात्मक स्तर पर चिन्तन एवं कार्य की। यदि कथित अपेक्षाओं में हमारी आस्था है—और यदि विवेचित अधिकारों में हमारा विश्वास है तो इस आस्था विश्वास का सहज अनुवर्ती सत्य यह होना चाहिए कि इन अपेक्षाओं अधिकारों को स्वरूप देने हेतु हम एक वास्तविक कार्यक्रम की ही योजना बनानी होगी। और वह वास्तविक कार्यक्रम निर्दिष्ट सेवाओं के सुव्यवस्थित रूप में ही आयोजित हो सकता है। हो सकता है कि विभिन्न प्रकार की अपेक्षाओं को सम्भावित कर सकने तथा विभिन्न अधिकारों को

प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्वयं तथा उसके पर्यावरण की वैध विश्वसनीय सूचनाओं के सन्दर्भ में उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय स्वतन्त्रतापूर्वक ले सकने में समुचित सहायता मिल सके। तत्पश्चात इन निश्चयों के अनुरूप वांछ अवसरों की प्राप्ति एवं सम्पन्नता की राह पर कदम उठा सकने में आवश्यक निर्देशन प्राप्त हो सके। और अन्त में अपने उद्देश्यों कार्यों कार्य विधाओं आदि के सतत् अनुवर्तन एवं वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन में तकनीकी सहयोग की उपलब्धि हो सके।

निर्देशन कार्यक्रम की उक्त कथित सम्भाव्य अपेक्षाओं की यदि और भी अग्रिम व्याख्या की जाए तो कतिपय प्रक्रियात्मक घटकों का स्वरूप स्पष्टरूपेण उभरता दृष्टिगोचर होता है। अतः कहा जा सकता है कि वर्णित अपेक्षाओं के अभिप्रेत अर्थों का वर्णन निम्न प्रकार से हो सकता है —

आवश्यक है कि—

—प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में वैध तथा विश्वसनीय सूचनाओं का विविध संकलन किया जावे।

—प्रत्येक व्यक्ति के सम्पूर्ण पर्यावरण के विषय में वास्तविक तथ्यों का संग्रह किया जावे।

—प्रत्येक व्यक्ति को उक्त सूचनाओं के सन्दर्भ में उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय ले सकने में वैज्ञानिक सहायता मिल सकने की योजना बनाई जावे।

—इन निश्चयों को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित प्रारम्भिक सहायता का समुचित प्रबन्ध किया जावे।

— अपने निश्चयों एवं कार्यों का मूल्यांकन कर सकने के प्रति सजगता उत्पन्न की जावे तथा उसे वस्तुनिष्ठतापूर्वक कर सकने में वैज्ञानिक सहायता की आयोजना की जावे।

उक्त व्यावहारिक व्याख्याओं के आधार पर पांच आवश्यक सेवाओं का स्वरूप स्पष्ट होता है। प्रत्येक सेवा के अन्तर्गत कार्यविधाओं के अनुरूप हम उनका नामकरण निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

—वैयक्तिक सूचना सेवा

—पर्यावरणीय सूचना-सेवा

—उपबोधन सेवा

—नियोजन सेवा

—अनुवर्तन सेवा

इस नामकरण के अनुवर्तन में प्रत्येक सेवा का विशद वर्णन उसके स्वरूप उद्देश्य वांछित कार्यविधाएं आदि के सन्दर्भ में करना समीचीन होगा। इस प्रकार के विश्लेषणात्मक वर्णन का विशिष्ट उद्देश्य यही है कि शालाओं में निर्देशन के प्रक्रियात्मक आयोजनों को इन व्यावहारिक सेवाओं द्वारा समुचित कार्य प्रेरणाएं प्राप्त हो सकें। हमारी शिक्षा प्रणाली में आदर्श की कई वांछनीय बातें प्रायः

हमारी दृष्टि से सूचनाओं की आवश्यकता निम्न प्रकार के कुछ मापदण्डों द्वारा निर्णीत की जा सकती है—

संगतता—सर्वप्रथम तो यह देखने की आवश्यकता है कि जो सूचना संकलित की जा रही है वह निर्देशन कार्य से सम्बन्धित है या नहीं। यों अत्यन्त ही विस्तृत दृष्टिकोण से तो व्यक्ति सम्बन्धी प्रत्येक सूचना महत्त्वपूर्ण है तथा निर्देशन कार्य से उसका किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध भी होता है। किन्तु यहां संगतता का मूल्य निर्धारण हमें व्यावहारिकता की कसौटी पर करना चाहिये। प्रत्यक्ष एवं निकट रूप से जो सूचनाएं निर्देशन के विशिष्ट कार्य से सम्बन्धित हों उन्हें ही एकत्रित करने से निर्देशन कार्य अनावश्यक उलझनों में अवरुद्ध न होकर दक्षतापूर्वक चलाया जा सकता है। इस प्रकार की सूचनाओं के कुछ प्रत्यक्ष उदाहरण अगले अंश में दे दिये जायेंगे।

उपयोगिता—निर्देशन कार्य के लिये आवश्यक सूचनाओं का द्वितीय मापदण्ड है—उनकी व्यावहारिक उपादेयता। किसी व्यक्ति के प्रतिदिन नाड़ी स्पन्दनों की सूचना उसकी शारीरिक स्थिति की अत्यन्त संगत सूचना होते हुए भी निर्देशन कार्य के लिये उसकी कोई प्रत्यक्ष उपयोगिता नहीं है। अतएव ऐसी सूचनाओं का संग्रह करने की निर्देशन कार्यकर्त्ता को कोई आवश्यकता नहीं। निर्देशन उपयोगिता के कुछ कार्यकारी मापदण्ड निर्देशन के विशिष्ट निर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में निश्चित कर लिये जा सकते हैं। सामान्यतः ये मापदण्ड व्यक्ति के समायोजन व विकास से सम्बन्धित आयामों से चुने जा सकते हैं।

विकासात्मक—निर्देशन कार्य का प्रथम स्मरणीय बिन्दु यह है कि यह कार्य विकासमान गत्यात्मक जीवित-स्पन्दित व्यक्तियों के साथ किया जाता है। इस तथ्य का न्यायसंगत उपसिद्धान्त यह होता है कि इस व्यक्ति के सम्बन्ध का संकलित सूचनाओं के स्वरूप में भी विकासात्मकता हो। किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में एक ही समय पर एकत्रित की हुई सूचना उसके किसी भी पक्ष अथवा पक्षों की तत्कालीन स्थिति पर ही कुछ प्रकाश फेंक सकती है। वह उसके विकासमान व्यक्तित्व को वाञ्छनीय रूप से आलोकित करने में असमर्थ ही सिद्ध होगी।

व्यापकता—व्यक्तित्व के विकासमान स्वरूप के साथ ही उसकी समाहारी व्यापकता उसकी प्रकृति को यह सजटिलता प्रदान करती है जो कि निर्देशन कर्मिकों के व्यक्ति-योन्मुखी उत्तरदायित्वों को वास्तविक चुनौती होती है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व ऐसे अन्तःसम्बन्धी पक्षों का सुसंगठित प्रतिरूप होता है कि इन विविध पक्षों में से किसी एक या किन्हीं एक दो आयामों सम्बन्धी सूचनाएं व्यक्तित्व के सम्पूर्ण चित्र के अवबोध के बिना अर्थशून्य ही रह जाती हैं। कहावत है कि सूचना का कतई नहीं होना अपर्याप्त सूचना होने से अधिक श्रेयस्कर है। तदनुसार वैज्ञानिक शोधकार्य का भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है— अपर्याप्त सूचनाओं के आधार पर कोई निष्कर्ष न निकालिये। हमारे पुरातन नीति ग्रन्थों में भी यह

निर्देशन कार्यकर्त्ता का विशेष रुचि होगी। इसलिये नेत्र तथा कान सम्बन्धी कोई भी गत अथवा वर्तमान सीमितताओं के सम्बन्ध में वह अवगत हो जाना चाहेगा जिससे छात्र की शैक्षिक उपलब्धियों पर उसके सम्भावित प्रभाव को वह सही प्रकार से आंक सके।

इन प्राथमिक सूचनाओं के अनन्तर यहाँ पर व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ्य की सामान्य स्थिति के सम्बन्ध में तथ्य संगृहीत किये जा सकते हैं। कभी बार बाल्यकाल की कतिपय व्याधियाँ—यथा चेचक पोलियो आदि व्यक्ति के कतिपय शारीरिक मानसिक अंगों को सदैव के लिये दुर्बल करते हुए उसके शैक्षिक मानसिक-संवेगात्मक पक्षों को एक निरन्तर हीनता प्रदान कर देती हैं। छात्र के शैक्षिक पिछड़ेपन तथा संवेगात्मक हीनता के कई कारण इस प्रकार की दुर्घटनाओं में अवगुण्ठित रहते हैं। इसलिये शरीर तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाओं के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन में इस प्रकार के तथ्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये।

शैक्षिक उपलब्धियाँ—एक अत्यन्त विस्तृत दृष्टिकोण से तो यह कहा जा सकता है कि छात्र निर्देशन के समूचे कार्यक्रम का अन्तिम उद्देश्य ही है उसकी शैक्षिक उपलब्धि। किन्तु व्यक्ति के विकासमान तथा बहुआयामी स्वरूप के सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय तथ्य है कि न तो उसकी वर्तमान शैक्षिक उपलब्धि उसकी विगत उपलब्धियों से असम्बद्ध कोई स्वतन्त्र स्थिति है न ही व्यक्ति के अन्य जीवन पक्षों से असंयुक्त कोई एकाकी परिणाम। इसलिये उसकी इस दिशा में उपलब्धि का विवरण भी एक विकासात्मक रूप से होना चाहिये। यह तो हुई सामान्य छात्र की साधारण उपलब्धियों की बात। किन्तु इनके अतिरिक्त छात्रों की विशेष उपलब्धियाँ भी होती हैं। किसी छात्र का कक्षा में प्रथम आना कभी पदक प्राप्त करना सम्मान सूची में उसका नाम आना आदि उसकी शैक्षिक चर्चा की ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं जो कि उसकी विकासमान शैक्षिक उपलब्धियों को नानारूपेण प्रभावित करती हैं। अतएव इनके सम्बन्ध में उपलब्ध सूचनाएं एकत्र करना निर्देशन कार्य के लिये संगत सिद्ध होगा।

यह तो हुई शुद्धरूपेण शैक्षिक उपलब्धि की बात। किन्तु हमारे आधुनिक शैक्षिक चिन्तन के अनुसार विद्यार्थी की शाला उपलब्धियाँ उसके पाठ्यक्रम से ही सम्बन्धित नहीं होतीं। आज की शिक्षा योजना में पाठ्येतर या पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों का उतना ही महत्त्व है जितना कि पाठ्य क्रियाओं का। अतएव यह उचित ही होगा कि छात्र के पाठ्यसहगामी पुरस्कारों-पारितोषिकों-सम्मानों आदि का भी उसी प्रकार व्यवस्थित एवम् विकासमान लेखा हो जिस प्रकार कि शुद्ध पाठ्यक्रम सम्बन्धी उपलब्धियों का। व्यक्तित्व की बहुआयामी प्रकृति तथा इस प्रकृति के विकास-संमार्जन के स्वीकृत शैक्षिक ध्येय के परिप्रेक्ष्य में पाठ्य-सहगामी प्रवृत्तियों रुचियों विरुचियों सम्बन्धी सूचनाओं को भी वैयक्तिक अनुसूची में समाहित करना अनिवार्य होगा।

मनोवैज्ञानिक दत्त — यदि इन सभी व्यक्तित्व-व्यवहार से सम्बन्धित सभी सूचनाओं को मनोवैज्ञानिक दत्त के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। किन्तु यहाँ पर इस शीर्षक का विशिष्ट तात्पर्य उस सूचना सामग्री से है जो कि सामान्यतः वस्तुनिष्ठ एवं प्रमापित परीक्षणों के प्रयोग से एकत्रित की जाती है। कई अनौपचारिक साधनों तथा व्यक्तिपरक उपायों के माध्यम से संकलित सूचना सामग्री की मनोवैज्ञानिक दत्त से न केवल समुचित सम्पुष्टि होती है अपितु आवश्यक सत्यापन भी हो जाता है। सामान्यतः यह सूचना व्यक्ति के बौद्धिक मानसिक स्तर, उसकी विशिष्ट अभिक्षमताएं, उसके व्यक्तित्व परिलक्षण, उसकी संवेदिक रुचियाँ आदि के सम्बन्ध में होती हैं।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार की समस्त सामग्री केवल मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से ही एकत्रित की जावे यह आवश्यक नहीं। विशेषकर शाला निर्देशन के कार्य में तो कई सरल प्रविधियां हैं जिनका निर्माण व प्रयोग शिक्षक एवं उपबोधक स्वयं सफलतापूर्वक कर सकता है। इनके द्वारा अधिक सरल एवं अनौपचारिक ढंग से छात्रों की रुचियों, मनोवृत्तियों, व्यक्तित्व लक्षणों आदि के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से दत्तसंकलन किया जा सकता है। निर्देशन कार्य के इन अपेक्षाकृत सरल उपकरणों के विषय में पञ्चम अध्याय में विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाएगा।

जीवन सम्बन्धी आकांक्षाएं — वर्णित अनुसूची का यह भाग निर्देशन की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में व्यक्ति की आकांक्षाओं के ज्ञान के सम्बन्ध में ही उसके लिए उपयुक्त निर्देशन की योजना बनाई जा सकती है।

आकांक्षा सम्बन्धी सूचनाओं का स्तर प्राथमिक निर्देशन के रूप के अतिरिक्त भी इन सूचनाओं के अन्य महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष हैं। किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं की बहुपक्षी आकांक्षाओं का अंकन किसी भी मनोवैज्ञानिक के लिए उस व्यक्ति की आकांक्षा-स्तर का एक प्रमुख सूचक होता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने व्यक्ति के आकांक्षा-स्तर का अन्य कई घटकों—यथा उपलब्धि अभिप्रेरण, शैक्षिक व्यावसायिक रुचियाँ, व्यक्तित्व समायोजन से सहसम्बन्ध ज्ञात किया है। अतएव निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए इस विषय की सूचना प्राप्त कर लेना व्यक्ति को समायोजी सहायता देने के दृष्टिकोण से अत्यन्त लाभदायक होगा।

व्यक्ति की आकांक्षा स्तर विषयक सूचनाएं एक और दृष्टिकोण से निर्देशन कार्यकर्ता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। जब निर्देशक के पास व्यक्ति की मानसिक क्षमता, बौद्धिक स्तर तथा विविधपक्षीय अभिक्षमताओं सम्बन्धी प्रमापित सामग्री संकलित रहती है तो वह व्यक्ति की आकांक्षा-स्तरों का अध्ययन उसकी मनोवैज्ञानिक सम्पत्तियों के परिप्रेक्ष्य में कर सकता है। इस परीक्षण से उसे यह और व्यक्ति के वास्तविकता अभिविन्यास (reality orientation) के सम्बन्ध में उपयोगी सूचना उपलब्ध हो सकती है। अपने आप के विषय में व्यक्ति के अतिरञ्जित

तथा प्रबमूल्यन दोनों ही के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करके वह उसे उचित निर्देशन प्रदान कर सकता है। अपने जीवन के विविध पक्षों में अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपने वास्तविक उद्देश्य निर्धारित कर सकने की दिशा में वह व्यक्ति की युक्तियुक्त रूप से सहायता देने में समर्थ हो सकता है।

(इ) सूचना स्रोत एवं संकलन विधि वैयक्तिक सूचना प्राप्त करने का प्रथम स्रोत हो सकता है स्वयं व्यक्ति। उसके प्राथमिक अभिनिर्धारण दत्त से लेकर उसके आकांक्षा-स्तर तथा भविष्य योजना सम्बन्धी ऐसी कोई भी सूचना नहीं जिसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हमें उससे सम्पर्क स्थापित न करना पड़े। सामान्य बातचीत विशिष्ट अभिमुख-संवाद प्रायोजित प्रश्नसमूह समाजमितीय साधन मानकीकृत परीक्षण स्वजीवनियाँ आदि ऐसी कई प्राविधियाँ हैं जिनके उपयोग द्वारा स्वयं छात्र से ही उसके सम्बन्ध में बहुत सी उपयोगी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। जैसा कि कहा जा चुका है इन संकलन विधियों के विषय में विस्तृत विवेचन तो अध्याय 6 में प्रस्तुत किया जाएगा किन्तु यहां पर इनका व्यक्ति के एक प्राथमिक सूचना-स्रोत होने के संदर्भ में उल्लेख मात्र किया जा रहा है।

स्वयं व्यक्ति से प्राप्त उसके सम्बन्ध की सूचनाएं अत्यन्त मूल्यवान होते हुए भी उसकी व्यक्तिनिष्ठता से अछूती नहीं रह सकतीं। अतएव आवश्यक हो जाता है कि इन सूचनाओं का सम्पुष्टिकरण तथा संशोधन अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं द्वारा किया जाय।

एक शाला निर्देशक के लिए स्वयं छात्र के पश्चात् उससे सम्बन्धित सूचनाओं का महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय स्रोत होता है उस छात्र के शिक्षक। यदि यह भी कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि समस्त शाला परिवार में छात्र के शिक्षकों से अधिक कोई भी उसके विषय में नहीं जानता। शाला प्रशासक को तो छात्र सम्बन्धी सूचनाएं शिक्षकों के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए छात्र सम्बन्धी उनका ज्ञान अप्रत्यक्ष होता है। सच पूछा जाए तो स्वयं शाला-उपचारक को भी छात्र के निरंतर सम्पर्क में आने के इतने अवसर नहीं मिलते जितने कि छात्र के शिक्षकों को। इन शिक्षकों में भी मूल कक्षा अध्यापक (यदि इसका प्रावधान हो) का स्थान इस दृष्टि से केन्द्रीय महत्व का है क्योंकि वह छात्र के सबसे अधिक सम्पर्क में आता है। वह छात्र की सामान्य रुचि अभिवृत्ति उपलब्धि तथा वैयक्तिक समस्याओं के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण दत्त प्रदान कर सकता है। इनके अतिरिक्त वे अध्यापक अथवा कार्यकर्ता जो कि पाठ्यसहगामी क्रियाओं का उत्तरदायित्व वहन करते हैं वे छात्र के पाठ्येतर पक्ष में निर्देशक को कई मूल्यवान सूचनाएं दे सकते हैं। ये सूचनाएं उनके द्वारा प्रदत्त छात्र के चित्र को एक वांछनीय सम्पूर्णता एवं व्यापकता प्रदान करती हैं।

शिक्षकों से इस प्रकार की सूचनाएं संगृहीत करने के लिये निर्देशक कई सरल प्राविधियां प्रयुक्त कर सकता है—जिनमें अभिमुख संवाद आयोजित प्रश्न

प्रश्न समूह, चिह्नांक सूचियाँ, मूल्य निर्धारण मापनियाँ आदि हैं। इनकी चर्चा भी अध्याय ६ में की जायेगी।

आज के शिक्षा-युग में यह एक स्वीकृत सत्य है कि यद्यपि छात्र के सर्वांगीण विकास के लिये शाला का एक विशिष्ट उत्तरदायित्व होता है फिर भी उसके जीवन का अधिक समय तो शाला की चहारदीवारी के बाहर के घटकों से प्रभावित होता है। इन समस्त प्रभावों में उसका घर एक ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थल है जिसकी उसके व्यक्तित्व निर्माण में निर्णायक भूमिका रहती है। यदि छात्र के बहुपक्षी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सर्वाधिक मौलिक सूचनाएं कहीं से प्राप्त हो सकती है तो वह छात्र का घर ही है। इसके अतिरिक्त यही एक स्थल है जहाँ उसके सम्बन्ध की विकासात्मक अवस्थाओं का सही स्वरूप रहता है। अतएव छात्र के अभिभावक को वयक्तिक सूचना संग्रह हेतु प्राथमिक महत्त्वपूर्ण सूचना-स्रोत माना जा सकता है।

किन्तु उनसे सूचनाएं प्राप्त करने में जो कठिनाई उत्पन्न होती है वह है इनसे सम्पर्क स्थापित करने की। विशेषकर भारत में यह कठिनाई अशिक्षित अभिभावकों के असहयोगी दृष्टिकोणों द्वारा द्विगुनी हो जाती है। किसी तरह शाला के शिक्षक-अभिभावक सम्मेलनों अथवा छात्र के गृह भेंट के माध्यम से यदि सम्पर्क भी स्थापित कर लिया जाता है तो प्रश्न उठता है सूचना-संकलन की प्रविधियों का। इस प्रपत्र विहार सूचियों अथवा अन्य सूचना-पत्रों की पूर्ति करने की ओर उनकी एक सहज विरक्ति होने के कारण एक सामान्य भारतीय शिक्षक तथा उपबोधक का तो साधारण बातचीत की प्रचलित विधा से ही आवश्यक सूचनाएं एकत्रित करने का विकल्प उपयुक्त रहता है। इस उद्देश्य से बातचीत करने हेतु उसमें प्रारम्भिक सामरस्य स्थापन कौशल्य होना आवश्यक है। कई माता-पिता अपने बालकों के सम्बन्ध का कतिपय ऐसी शारीरिक संवेगात्मक सूचनाएं देना नहीं चाहते क्योंकि उनके विचारानुसार बालक के पक्ष में न हो। किन्तु यह हर्ष का विषय है कि हमारे देश के अभिभावक इस दिशा में अधिकाधिक प्रबुद्धता प्राप्त करते हुए शाला को उत्तरोत्तर सहयोग प्रदान करते आ रहे हैं।

शिक्षकगण तथा अभिभावकों से अधिक समीपता से एक और समूह छात्र को जानता है—और वह है उसका समवयस्क ही मित्र-मण्डल। इस समूह से छात्र विषयक सूचनाएं एकत्र करने हेतु प्रत्यक्ष संवाद अथवा स्पष्ट प्रश्नावलियाँ अत्यन्त ही अनुपयुक्त साधन होते हैं। सामान्यतः किशोरवय में समूह मानक इतने दृढ़ होते हैं कि इस वय के छात्र एक दूसरे के विषय में कुछ भी बताना समूह निष्ठा का अतिक्रमण समझते हैं। वस्तुतः छात्र विषयक जिस प्रकार की सूचनाएं इस स्रोत से प्राप्त हो सकती हैं वे उसकी समाजमितीय स्थिति से ही सम्बन्धित होती हैं। अतएव इन सूचनाओं का संकलन भी सरल समाजमितीय साधनों द्वारा करना ही

समीचीन होता है। इन साधनों के परीक्षण एकांक जितने कम पारम्परिक होंगे उतनी ही अधिक विश्वसनीय सूचनाएं इन सामूहिकों से प्राप्त होने की सम्भावना होगी।

(ई) प्रारूप प्रत्येक सेवा के सम्बन्ध में एक संगत प्रश्न उठता है कि उसका आयोजन प्रारूप क्या हो तथा इस आयोजन की प्रभाविता किन घटकों से सम्बन्धित हो सकती है? विशेष कर किसी भी इष्ट कार्यक्रम पर प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण से विचार करते समय तो यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु हो जाता है। इसलिए प्रत्येक निर्देशन सेवा के विवेचन में इस पक्ष पर भी विचार किया जाएगा।

वैयक्तिक सूचनाओं का लेखा अनुरक्षित करने में एक सम्भावित भ्रान्ति का निवारण वाञ्छनीय है यह भ्रान्ति हो सकती है इस अनुसूची की हमारी शालाओं में प्रचलित सञ्चयी वृत्त के साथ एकरूपता स्थापित कर देने की।

वस्तुतः शाला का सञ्चयी वृत्त अपेक्षाकृत अधिक व्यापक वैयक्तिक अनुसूची का एक महत्वपूर्ण अंश हो सकता है। सञ्चयी वृत्त में सामान्यतः छात्र की शैक्षिक उपलब्धि सम्बन्धी सूचनाओं का लेखा रखा जाता है। यह वृत्त अधिकतर शिक्षकों के कार्य से सम्बन्धित होता है तथा उन्हीं द्वारा इसकी प्रविष्टियाँ भी की जाती हैं। निर्देशन उपबोधन के कार्य हेतु आयोजित वैयक्तिक सूचना-सेवा द्वारा जो अनुसूची तैयार की जाती है उसमें सञ्चयी वृत्त में निहित छात्र की शैक्षिक उपलब्धियों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की बहुमुखी सूचनाएं सम्मिलित रहती हैं जिनका वर्णन पूर्व अनुच्छेदों में किया जा चुका है।

विषय वस्तु की उक्त व्यापकता के अतिरिक्त सञ्चयी वृत्त तथा वैयक्तिक अनुसूची में एक प्रमुख भेद रहता है उनके बाह्य प्रारूप के सम्बन्ध में। सामान्यतः शाला के सञ्चयी वृत्त का प्रारूप संरचित होता है जिसमें समय-समय पर निश्चित खानों की पूर्ति कर दी जाती है। इसके विपरीत आदर्शरूपेण वैयक्तिक अनुसूची एक ऐसी असंरचित मुक्त मिसिल है जिसमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के प्रपत्र रख दिए जाते हैं। एक औसत मिसिल की भांति इन प्रपत्रों को बद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं। इनमें से किसी एक या एक से अधिक किन्हीं सम्बन्धित प्रपत्रों का यदि निर्देशन कार्यकर्त्ता अध्ययन करना चाहे तो उन्हें सरलतापूर्वक निकाला तथा रखा जा सकता है। इस अनुसूची में पूर्व वर्णित सभी प्रकार की सूचनाओं सम्बन्धी प्रपत्र रहते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम की दृष्टि से आवश्यक है कि प्रत्येक छात्र की अलग मिसिल हो जिसमें उसी से विशिष्टरूपेण सम्बन्धित विभिन्न प्रपत्रों का विकासात्मक संकलन होता जाए। व्यवस्थित मिसिलीकरण तथा उपयोग की सरलता की दृष्टि से इन मिसिलों के बाहर पृष्ठ पर विद्यार्थियों के नाम लिख कर उन्हें वर्णानुसार जमा देना चाहिए।

कई वैयक्तिक सूचनाओं की गोपनीय प्रकृति के सम्बन्ध में यह भी आवश्यक है कि ये विशिष्ट स्थान में रखी जावें। इसके लिए उपबोधक के कक्ष में कैबिनेट फाइल ड्राअर की व्यवस्था होना अपेक्षित है। इन ड्राअर्स में सिमिटें जमाते समय वर्णानुसार संकेत चिह्न लगा देने से कोई भी विशिष्ट रिकार्ड निकालने में समय नष्ट नहीं होता।

इस सेवा के उक्त प्रकार के प्रारम्भ तथा व्यवस्था के लिए शाला में कतिपय पूर्वावश्यकताएं वांछनीय हैं। सर्वप्रथम तो इसके निर्माण, अनुरक्षण तथा उचित उपयोग हेतु दत्त प्रयत्न होना अनिवार्य है। एकाकी निर्देशक या उपबोधक के लिए न तो यह सम्भाव्य है न वांछनीय ही कि वह इन समस्त प्रकार की सूचनाओं को स्वयं ही संकलित करे।

दूसरे इस प्रकार की सेवा व्यवस्था के लिए शाला में कुछ न्यूनतम बजट की भी आवश्यकता होगी। बिना निश्चित धनराशि के इस सेवा की न्यूनतम आवश्यकताओं यथा कागज, फाइल, कैबिनेट, ताले आदि की भी व्यवस्था होना असम्भव है।

तीसरे इस सेवा में निहित कई छोटे मोटे क्लर्कीय कृत्यों के लिए इसी वर्ग का कुछ सहायता का प्रावधान होना वांछनीय है। यदि प्रशिक्षित उपबोधक की ऊर्जाएं भी इस प्रकार के सभी कृत्यों में नष्ट होती रहेंगी तो उपबोधक के अन्य तकनीकी तथा उच्चस्तरीय कृत्यों के लिए उसके पास पर्याप्त शक्ति नहीं रह पायेगी। अतएव इस दिशा में यदि शाला का कुछ आर्थिक क्षेत्र में व्यय भी करना पड़े तो वस्तुतः मानवीय शक्तियों के क्षेत्र में वह महत्वपूर्ण बचत ही सिद्ध होगी।

(ग) पर्यावरणीय सूचना-सेवा : पर्यावरणीय परिस्थितियों, अवसरों, अपेक्षाओं तथा आवश्यकताओं से सम्बन्धित सूचनाएँ जब तक निर्देशन कार्मिकों को उपलब्ध नहीं होतीं तब तक व्यक्ति को उसके वयस्क जीवन में अनुकूलतम समायोजन हेतु सही मार्ग में सहायता देना उनके लिए सम्भव नहीं हो सकता। वैयक्तिक सूचना सेवा के माध्यम से व्यक्ति विषयक जो समस्त सामग्री एकत्रित की जाती है वह अपने आप में अत्यन्त मूल्यवान होते हुए भी निर्देशन कार्यकर्ता को अधिक काम में बहुत आगे नहीं ले जाती। आवश्यकता इस बात की होती है कि इस सामग्री का परीक्षण उपयुक्त पर्यावरणीय वास्तविकताओं के सम्बन्ध में किया जाए। तभी व्यक्ति इस सम्पूर्ण चित्र के आधार पर अपने भावी जीवन विषयक महत्त्वपूर्ण निश्चय एवं सुनियुक्त रूप से ले सकता है। इन्हीं मूलभूत मान्यताओं के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम की द्वितीय महत्त्वपूर्ण सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा का आयोजन किया जाता है।

यों एक प्रकार से तो कहा जा सकता है कि वैयक्तिक सूचना की तुलना में इसका आधार अधिक विस्तृत होता है। कई पर्यावरणीय दशाओं में कई व्यक्ति एक साथ रह सकते हैं। किन्तु प्रत्येक के लिए वे दशाएं उसकी अन्य वैयक्तिक विशिष्टता के

सन्दर्भ में स्वतन्त्र महत्त्व रखते हैं। इसलिए संग्रह की दृष्टि से कई प्रक्रिया के लिए एक साथ संकलन कर सन्दर्भ पर या निवेचन के समय इन सूचनाओं को एक व्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार से व्याख्या करनी पड़ती है।

(ब) प्रकृति—जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के नाना सन्दर्भ पक्ष होते हैं उसी प्रकार उसका पर्यावरण भी कई अयोजनाओं, आयामों का एक सुसंगठित प्रातरूप होता है। इन पर्यावरणीय सूचना सदा में उनके जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित सूचनाओं का विविध संकलन किया जाता है। वस्तुतः इसमें ऐसी प्रत्येक सूचना का समाहित किया जाता है जिसकी आवश्यकता छात्र को अपने पर्यावरण के अवसरों के मूल्यांकन हेतु पड़ सकती है। निर्देशन इतिहास के प्रारम्भिक काल में इस सेवा को शैक्षिक सूचना-सेवा अथवा व्यावसायिक सूचना सेवा के नाम से सम्बोधित किया जाता था। निर्देशन के परिवर्तित स्वरूप तथा निर्देशन कार्य की विकासमान परिधि के अनुरूप इस सेवा का कार्य विस्तार भी किया तथा व्यवसाय की संकुचित सीमा को पार करके व्यक्ति जीवन के नाना पक्षों को स्पर्श करने लगा। किन्तु यह कहा जा सकता है कि विशेष कर शालेय कार्य के दृष्टिकोण से तो इस सेवा के अन्तर्गत अधिकांश में शैक्षिक-व्यावसायिक सूचनाएँ ही समाहित करना पर्याप्त होगा।

संक्षेप में हम इस सेवा की प्रकृति के वर्णन में कह सकते हैं कि इस सेवा के माध्यम से व्यक्ति के बहुपक्षी पर्यावरण के सम्बन्ध में आवश्यक एवं उपलब्ध सूचनाओं का संकलन वर्गीकरण, विश्लेषण, मिसिलीकरण, निवेचन एवं उपयोग विधिवत् रूप से किया जाता है। पुनः प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से हमने जिस प्रकार वैयक्तिक सूचनाओं को वाङ्मय प्रकृति के सम्बन्ध में कतिपय विशिष्ट मापदण्ड निर्धारित कर दिये थे उसी प्रकार इस सेवा के अन्तर्गत प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं के सम्बन्ध में भी कर देना उपयुक्त रहेगा। हमारे विचारानुसार निम्न प्रकार के मापदण्ड इन सूचनाओं के सम्बन्ध में हमारे निर्देशक बिन्दु हो सकते हैं—

अद्यतन—वर्तमान शताब्दि से आज के विकासमान युग में यदि कोई भी सूचना अद्यतन नहीं है तो उसका कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। उक्त तथ्य की पुष्टि में कतिपय अनुभूत वास्तविकताएँ स्पष्ट उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। प्रत्येक आदर्श शिक्षक यह जानता है कि यदि वह अपना विषय-वस्तु तथा अध्यापन-विधियों सम्बन्धी नवीनतम सेवा से परिचित नहीं है तो वह प्रभावशाली रूप से अपने विद्यार्थियों तक अपने क्षेत्र सम्बन्धी सूचनाओं का संचार नहीं कर सकता। विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के विषय में तो यह कई बार नवीन कार्यकर्ताओं की कटु अनुभूतियों के रूप में सिद्ध हो चुका है कि अपने प्रशिक्षण काल की अवधि पूरा करके जब तक वे अपने वास्तविक कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट हो पाते हैं तब तक तो उनका अर्जित ज्ञान-कौशल्य अनद्यतन हो जाता है। आधुनिक काल की औद्योगिक प्रगतियों के परिप्रेक्ष्य में यह बात तकनीकी क्षेत्र की सूचनाओं

पर भी पूर्णरूपेण लागू होती है। यों शिक्षासम्बन्धी सूचनाओं का महत्त्व एक तुलनात्मक अध्ययन तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आँका जा सकता है। किन्तु निर्देशन के प्रत्यक्ष कार्य में तो अद्यतन सूचनाएं ही सबसे अधिक लाभप्रद सिद्ध होती हैं।

अनुमिनत एवं परिशुद्ध— यदि सूचना में परिशुद्धता नहीं है तो वास्तविक कार्याधार के रूप में उसका कोई भी मूल्य नहीं। यह तो एक सामान्य अनुभव का विषय है कि त्रुटिपूर्ण सूचनाएं होने से तो सूचनाएं बिल्कुल नहीं होना अधिक अच्छा होता है। जहाँ एक सूचना के नितान्त अभाव में व्यक्ति कम से कम अपना सामान्य ज्ञान प्रयुक्त करने के लिए स्वतन्त्र रहता है वहाँ सूचना के नाम पर कोई गलत सूचना उपलब्ध हो जाने पर अपनी व्यवस्थिता में अपनिर्देशित होकर भग्नाशा एवं क्षय का अकारण शिकार बन सकता है। किशोरावस्था की संवेदनशील अवस्था में इस प्रकार की परिस्थिति के सम्भावित परिणाम और भी अधिक भयंकर हो सकते हैं। इसलिए आवश्यक है कि शाला निर्देशन कार्य में विशेषकर इस संशयक स्थिति वाले छात्रों को उनकी भविष्य-योजनाओं हेतु संकलित सूचना-सामग्री की परिशुद्धता के विषय में उत्तम आश्वस्तता प्रदान कर दी जाए।

कभी-कभी सामग्री के संकलन अथवा सम्प्रेषण में सूचनादाता के निजी अभिमता या अभिरुचि भी सूचना की परिशुद्धता को विपरीत रूप में प्रभावित कर सकता है। इस प्रभाव के सम्बन्ध में उसे मन्द चेतन अनुभूति ही रहे यह भी आवश्यक नहीं। अपने पूर्वानुभवों से अनुबन्धित कई अचेतन अभिमत भी कभी-कभी व्यक्तियों के सम्पूर्ण कार्यविधानों को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवसाय स्थिति विशेष अथवा सम्बन्ध अनुभवों के मुक्त परिणाम स्वरूप व्यक्ति इन आयामों के प्रति सदैव के लिए अनुकूल अथवा प्रतिकूल रुचियाँ बना लेता है। इस प्रकार का वृत्तियां वाला व्यक्ति—चाहे वह अभिभावक एवं वरिष्ठ मित्र हो अथवा निर्देशन कार्यक्रम का सूचनादाता इन आयामों के सम्बन्ध में किशोर को अभिविन्यासित करते समय अनजाने ही अपनी मनोवृत्तियों को भी अपनी सूचनाओं के साथ घुले मिले रूप में संयुक्त करके उन तक अनायास ही प्रेषित कर देता है। आवश्यक नहीं कि इस प्रेषण के माध्यम स्पष्ट शब्दों लिपि के रूप में ही हों। कई बार व्यक्ति के बोल-स्वरक आंगिक अभिव्यक्तियाँ या अशाब्दिक सम्प्रेषण-साधनों के द्वारा ये अभिवृत्तियाँ स्पष्ट कही हुई बात के साथ साथ अनायास ही प्रेषित हो जाती हैं। एक अनुभवी वयस्क के पास से आने के कारण किशोर इन सबको सहज ही आस्थापूर्वक ग्रहण कर लेते हैं—और ये उनके सम्भावित निश्चयों तथा भावी जीवन को सतत प्रभावित करती रहती हैं।

इसलिए अत्यन्त ही आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम की सूचना सेवाओं का उत्तरदायित्व निभाने वाले कार्मिक यथासम्भव अभिमत मुक्त हों। यों तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने कुछ निजी अभिमत होना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। किन्तु किसी

वैज्ञानिक सतर्कता की उत्तरदायित्व का भार-वहन करते समय यह अनिवार्य हो जाता है कि अपनी निजी व्यक्तिनिष्ठता से परे होकर कार्मिक वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता को सर्वोपरि महत्व प्रदान करें तथा अपने व्यक्तिगत अभिमतों द्वारा सूचना संकलन अथवा सूचना संचरण की क्रियाओं को भ्रष्ट न होने दें।

सूचना की परिशुद्धता का सम्बन्ध एक सीमा तक हमारे पूर्व-चर्चित बिन्दु अद्यतनता से भी है। हो सकता है कि सूचना विशेष किन्हीं विशिष्ट कालों अथवा परिस्थितियों में परिशुद्ध हो किन्तु वर्तमान स्थिति में वह त्रुटिपूर्ण है। इस तथ्य के तो बड़े प्रत्यक्ष उदाहरण नित्य परिवर्तित एवं सतत परिवर्तनशील हमारी वर्तमान पाठ्यचर्याओं सम्बन्धी सूचनाओं में प्राप्त हो सकते हैं। आज के विद्यार्थी के लिए सर्वप्रथम अपने पाठ्यक्रम में अंकित विविध विषय विकल्प विविध नियम तथा बहुपक्षीय सूचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ लेना अनिवार्य हो गया है क्योंकि वर्तमान काल में इनमें निरंतर परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। शैक्षिक परामर्शक को भी इन परिवर्तनशील आवश्यकताओं से सतत अभिज्ञता बनाए रखना चाहिए अन्यथा उसके द्वारा अपरिशुद्ध सूचना संचारण की आशंका रहेगी।

उपर्युक्त विवेचन इन सूचनाओं की विकासात्मक प्रकृति की ओर भी इंगित करता है। जो भी व्यक्ति के शैक्षिक निश्चय लेने हेतु अद्यतनतम सामग्री का महत्त्व ही सर्वाधिक हो सकता है—तथापि औद्योगिक व्यावसायिक क्षेत्रों में विकासात्मक सूचनाओं का भी अपना एक महत्त्व होता है। परिवर्तित व्यावसायिक धाराएं कई बार उनके भविष्य परिवर्तन की दिशाओं के वांछनीय संकेत दे सकती हैं जोकि व्यक्ति के व्यवसाय-सम्बन्धी निश्चयों में एक सीमा तक सहायक हो सकते हैं।

विविधता निर्देशन कार्य हेतु संकलित की जाने वाली सूचना सामग्री की प्रकृति के रूप वांछनीय लक्षण को कई दृष्टिकोणों से परखा जा सकता है। सर्वप्रथम तथा सबसे विस्तृत उपागम तो होता है व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व तथा सम्बन्धित पर्यावरण की बहुपक्षीयता के सन्दर्भ में। व्यक्ति का कोई भी निश्चय उसके जीवन के किसी एक ही पक्ष में विशिष्टरूपेण स्थित होने पर भी उसके अन्य जीवन पक्षों से भी अविच्छिन्न रूपेण सम्बन्धित होता है। अतएव उसे निर्देशन देते समय उसके सम्मुख उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं समूचे पर्यावरण की एक सुसंगठित तस्वीर प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि यह तस्वीर उसके नाना पक्षों सम्बन्धी विविध प्रकार की सूचनाओं द्वारा ही बनाई जा सकती है। जहां उसके शैक्षिक निश्चयों को विभिन्न सम्बन्धित व्यावसायिक अवसरों की पृष्ठभूमि में सजाना होता है वहां उसके व्यवसाय सम्बन्धी निश्चयों में उसके व्यक्तित्व गुण मनोवैज्ञानिक लक्षण शैक्षिक उपलब्धियां तथा प्रशिक्षण—पृष्ठभूमियों की झलकाना होता है। अतएव विविधता का प्रथम प्रकार व्यक्तित्व के नाना पक्ष तथा पर्यावरण के विभिन्न आयामों में देखा जा सकता है।

विविधता का द्वितीय प्रकार होता है जीवन में उपलब्ध विभिन्न अवसरों के

रूप में। और इन व्यावसायिक अवसरों के विषय में एक निर्देशन-कार्मिक की अभिज्ञता सीमा जितनी अधिक विस्तृत होगी उतना ही विभिन्न विकल्प वह व्यक्ति के सम्मुख न केवल प्रस्तुत कर सकेगा अपितु उनका अपनी क्षमताओं के सन्दर्भ में युक्तिसंगत मूल्यांकन कर सकने में सहायता प्रदान कर सकेगा।

व्यक्ति की वैयक्तिक क्षमताओं की बात सूचनाओं की एक तीसरी प्रकार की विभिन्नता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है- और वह है व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की क्षमताओं के अन्तर से सम्बन्धित। वैयक्तिक विभिन्नताओं का मनोविज्ञान हमें बताता है कि कोई भी दो व्यक्तियों की कुशलता क्षमता आशा अपेक्षा आकांक्षा आयु अनुभव आदि में एकरूपता नहीं होती। अतएव विभिन्न व्यक्तियों के साथ काम करने वाले निर्देशन कार्मिक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसके पास विभिन्न वैयक्तिक लक्षणों में अन्तर्भेद कर सकने वाली विविध सूचना सामग्री हो।

यहाँ तक तो हमें अधिकांश में व्यक्ति के लक्षणों से सम्बन्धित बात की। किन्तु जब विशेषकर नवयुवकों के उच्चस्तरीय शिक्षा अथवा व्यवसाय प्रवेश का प्रश्न आता है यहाँ पर हमें शिक्षा के विशिष्ट लक्षणों तथा नूतन व्यावसायिक जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित सूचना भी इन नव कार्यकर्ताओं को दे सकना आवश्यक हो जाता है। जीवन के इन अग्रिम पक्षों में व्यक्ति से अधिक स्वतन्त्र व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। आत्मविश्वासपूर्वक इस प्रकार का व्यवहार कर सकने के लिए आवश्यक है कि वह अपने क्रियाक्षेत्र के बारे में भली प्रकार परिचित हो। अतएव निर्देशन कार्मिक की सम्बन्धित सूचना सामग्री में भी इतनी सम्पूर्णता होनी चाहिए जो कि व्यक्ति जीवन के इस स्तर से सम्बन्धित पर्यावरणीय पक्षों के विविध अंगों एवं लक्षणों को अपने में समाहित कर सके।

(आ) प्रकार　उक्त अनुच्छेद में पर्यावरणीय सूचना तथा की प्रकृति के विस्तृत विवेचन में उसमें समाहित की जाने वाली सूचनाओं के प्रकारों के सम्बन्ध में विविध झलकियाँ पाठकों को प्राप्त हो चुकी हैं। उन्हें समेट कर एक स्थल पर अब निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है —

शैक्षिक पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्याएं

शैक्षिक विशिष्टीकरण के वर्तमान युग में आज के विद्यार्थी के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यचर्याओं सम्बन्धी सामग्री का प्रारम्भिक महत्व है विशेषकर हमारे देश में जहाँ पर विद्यार्थी लिखित ज्ञान की अपेक्षा मौखिक रूप से ही सूचनाएं प्राप्त करने का ही अधिक अभ्यस्त रहा है। विषयों के सीमा विस्तार तथा उनसे सम्बन्धित अवसरों की वृद्धि के कारण आधुनिक पाठ्यचर्याओं की संख्या बढ़ती जा रही है। इन सतत परिवर्तनों के सन्दर्भ में पाठ्यक्रमों तथा उनकी आवश्यकताओं सम्बन्धी सूचनाओं का इस सत्ता में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

व्यावसायिक अवसर

औद्योगिक-तकनीकी उन्नति व्यवसायों के विशिष्टीकरण तथा कार्य कुशलताओं के विभिन्नीकरण ने व्यावसायिक अवसर सम्बन्धी सूचनाओं को इतना अधिक जटिल बना दिया है कि बिना किसी व्यवस्थित विश्लेषण विधि के इस क्षेत्र में सूचना संकलित कर सकना भी एक महती चुनौती है। चूंकि इन सूचनाओं का छात्र के शैक्षिक निश्चयों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है इसलिये पर्यावरणीय सूचना-सेवा के माध्यम से इन सूचनाओं का विधिवत संकलन तथा उपयोग होना चाहिए।

व्यावसायिक प्रशिक्षण

किसी भी व्यवसाय में प्रवेश प्राप्ति तथा सफल कार्य का एक महती पूर्वापेक्षता होती है उस व्यवसाय के लिए वांछनीय कुशलताओं-क्षमताओं में विधिवत प्रशिक्षण। वर्तमान व्यवसाय शाखाओं की प्रकृति उनमें अपेक्षित कुशलताओं का रूप रेखा तथा उनके प्रशिक्षण केन्द्रों की संख्या में इतना परिवर्तन एवं विस्तार हुआ है तथा होता जा रहा है कि छात्र तो क्या—वर्तमान शिक्षकों के लिए भी इन बिन्दुओं सम्बन्धी वर्तमान सूचनाएं रख सकना सम्भव नहीं हो पाता। आज के सुजटिल व्यवसाय युग में भली प्रकार समन्वित हो सकने के लिए छात्र के लिए इन सूचनाओं की आवश्यकता का मूल्य आंकना कठिन है। निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना सेवा द्वारा इन्हीं नव-व्यवसाय प्रवेशकों के लिए इन महती सूचनाओं का संकलन उपयोग करता है।

सामाजिक आर्थिक

किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम तथा व्यावसायिक क्षेत्र की प्राथमिक जानकारी का उसकी स्थलीय आवश्यकताओं तथा कार्यकुशलताओं से सम्बन्धित होना है। इस प्रकार का विषय वस्तु अथवा व्यवसाय-लक्षण सम्बन्धी सूचनाओं का विवरण 'शैक्षिक पाठ्यक्रम' तथा 'व्यावसायिक अवसर' के अन्तर्गत हम कर चुके हैं। किन्तु शिक्षा तथा व्यवसाय क्षेत्रों के इन प्राथमिक परिचयों के अतिरिक्त इनका एक सामाजिक आर्थिक पक्ष भी होता है। किसी भी तकनीकी शैक्षिक पाठ्यक्रम के धारण में कतिपय आर्थिक अभिप्रेत होते हैं जिनके सम्पूर्ण ज्ञान बिना विद्यार्थी के लिए उनमें प्रवेश प्राप्ति के निश्चय ले सकना कठिन होता है। इसी प्रकार किसी भी व्यवसाय की एक सामाजिक आर्थिक स्थिति होती है। उसमें प्रविष्ट होने के निश्चय को यह परिस्थिति एक बहुत बड़ी सीमा तक अनुबंधित करती है। पर्यावरणीय सूचना सेवा में किसी भी पाठ्यक्रम तथा व्यवसाय के सम्बन्ध में इस प्रकार की सूचनाएं एकत्र करना भी परमावश्यक है। कई बार किन्हीं शैक्षिक पाठ्यक्रमों के अनुशीलन अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षणों के धारण हेतु आर्थिक छात्रवृत्तियों तथा औद्योगिक प्रावधान भी होते हैं। पश्चिम में तो यह एक सामान्य तथ्य है अतएव छात्र सामान्यतः इस प्रकार की सूचनाओं के स्रोत खोजते रहते हैं। किन्तु हमारे देश में यह एक अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा होने के कारण इसके सम्बन्ध में भी पर्यावरणीय सूचना सेवा को सजग रहने की आवश्यकता है।

सूचना ग्माओं के पास इतना समय नय रहता है कि वे न कार्मिको से बराबर बातचीत कर सकें। इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठित शक्षिक एवं औद्योगिक अभिकरण अपनी प्रशस्ति हेतु नाना प्रकार की मुद्रित सामग्रियाँ तयार करवाके रखते हैं। किसी भी अच्छी मस्थिक संस्था के प्रवेश नियम पाठ्यक्रम आर्थिक अपेक्षाएं आदि उसके प्रोस्पेक्टस अथवा प्रशस्ति पत्रिका में उपलब्ध हो सकती है। अतएव शाला में भिन्न भिन्न प्रकार के उच्चस्तरीय महाविद्यालय एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के ये प्रकाशन डाक द्वारा मंगवा लिये जा सकते हैं। आजकल कई औद्योगिक तकनीकी संस्थान भी अपने कार्य के विविध पक्षों के सम्बन्ध में अत्यन्त आकर्षक पम्फलेट्स तयार करवा कर रखते हैं। अनेक प्रकार के चार्ट चित्र आरेख तथा आलेखों द्वारा इन संस्थाओं के विविध पक्षीय जीवन परिस्थिति तथा अपेक्षाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त हो सकता है। कई बार तो ऐसी सूचना-सामग्री नि शुल्क वितरित की जाती है किन्तु हमारे विद्यालयों को इस तथ्य के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं होता।

हमारे देश में इस प्रकार की महत्वपूर्ण सूचना सामग्री व मुद्रित चित्रित दृश्य श्रव्य व साध्याय उपकरण राष्ट्रीय-स्तर पर शक्षिक औद्योगिक तथा शोध संस्थाओं द्वारा तयार किए गए हैं। पुस्तक के सातवें अध्याय में इनके विषय में अधिक विशद तथा विशिष्ट रूप से उल्लेख किया जायेगा।

इस मुद्रित सामग्री से प्राप्त सूचनाओं के अतिरिक्त भी छात्र को कई व्यवसायों प्रशिक्षण संस्थाओं तथा उच्चस्तरीय शिक्षण संस्थाओं सम्बन्धी तथ्यों की कई बार आवश्यकता होती है। इसके लिए शाला निर्देशक को क्षेत्रीय पर्यटन की आयोजना करनी चाहिए। इस विधा का प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि छात्र अभिमुख संवाद प्रश्नावली एवं प्रपत्र पूर्ति पर्यवेक्षण आदि प्राविधियों के उपयोग से न केवल परिचित होते हैं अपितु इनके द्वारा स्वयं कार्य परिस्थितियों के परिवीक्षण अध्ययन द्वारा अपने भावी निश्चय अधिक वस्तुपरक बना सकते हैं। शक्षिक अथवा प्रशिक्षण संस्थाओं का स्थानीय अपेक्षाओं आवश्यकताओं के सम्बन्ध में उनका प्रथम सापेक्ष ज्ञान वर्धित होता है। व्यावसायिक तत्वों के सम्बन्ध की विशद सूचनाएं भी व्यवसाय विश्लेषण की तकनीकी प्राविधि द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं। इस विश्लेषण के संदर्भ में जहां छात्रों को वास्तविक कार्य-परिस्थितियों से प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता है वहां निर्देशन कार्मिक को व्यवस्थित ढंग से कई नवनीत सूचना विधाओं का संकलन कर सकने की सुविधा प्राप्त हो जाती है।

(ई) प्रारूप—पर्यावरणीय सूचना-सेवा के प्रारूप के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात है इस सेवा द्वारा उपलब्ध सामग्रियों के समुचित उपयोग का। ये सूचनाएं न केवल छात्रों के लिए अपितु शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना-स्थान होती हैं। विशेष कर हमारे देश में तो शिक्षक तथा अभिभावक छात्र द्वारा चयनित विशेषता धाराओं व व्यावसायिक अभिप्रेत क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी प्राय अनभिज्ञ ही रहते हैं। अतएव आवश्यक है कि इस सामग्रियों का संकलन

मनोवैज्ञानिक लक्षणों का अवबोध होता है न इन लक्षणों का पर्यावरणीय घटकों से सम्बन्धित करके देखने का कौशल। छात्र को वैज्ञानिक रूप से वह निर्देशन देने के लिए उक्त क्षमता आवश्यक होती है जिसका प्रयोग विशिष्ट रूप से तकनीकी उपबोधन सेवा में होता है।

इसके अतिरिक्त शिक्षकों आदि द्वारा दिया गया शास्त्रीय निर्देशन प्राय छात्रों की कुछ सामान्य आवश्यकताओं के ही सन्दर्भ में होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि शाला के कार्यक्रम से सम्बन्धित विद्यार्थियों की नेमी आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी एक अनन्य व्यक्ति के नाते प्रत्येक छात्र की कुछ निजी समस्याएं भी हो सकती हैं। कई बार इन वैयक्तिक कठिनाइयों का उसकी शालीय उपलब्धियों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। किन्तु वैयक्तिक सहायता के अभाव में उसे यह सब कुछ चाहे अनचाहे सहन करना पड़ता है। विशिष्ट रूप से वैयक्तिक स्तर पर क्रियाशील उपबोधन सेवा में इन वैयक्तिक स्तर की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में ही विशेष रूप से कार्य किया जाता है। तदनुसार इस सेवा की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्न बिन्दुओं का विधिवत रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

(अ) प्रकृति

वैयक्तिक—उक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में इस सेवा की अनन्य वैयक्तिक प्रकृति पर ही सर्वप्रथम बल देना समाचीन रहेगा। वस्तुत यदि यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उपबोधन सेवा एक एक वैयक्तिक सम्बन्ध के आधार पर ही नियोजित होती है। इस सम्बन्ध की प्रकृति भी विभिन्न एक एक सम्बन्धों की तुलना में अत्यन्त ही अनन्य होती है। इस सेवा के सफल सचालन की एक प्राथमिक पूर्वावश्यकता ही यह होता है कि इस प्रकृत एक एक सम्बन्ध में सामरस्य हो समानुभूति हो सौहार्द हो। एक उपबोधक तथा उपबोध्य के मध्य यह एक विचित्र प्रकार का सम्बन्ध-स्थापन होता है जहाँ पर कि विचार-प्रसारण के लिए सदैव ही भाषा के सामान्य माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। कई बार उपबोध्य अपनी निजी समस्याओं को नाना प्रकार के अशाब्दिक सचार-साधनों द्वारा उपबोधक तक प्रेषित कर देता है। कई परिस्थितियों में बोलने वाले के वास्तविक शब्द जितना नहीं कह सकते उससे कहीं अधिक अर्थों के इंगित वाणी के स्वरक अगों के हाव भाव नेत्रों की दृष्टि व्यक्ति के आसन आदि सचारकों द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। जहाँ विशिष्ट शब्दों के तो निश्चित अर्थ ही सभी व्यक्तियों के लिए समान होते हैं वहाँ पर इन वैयक्तिक प्रयत्नों का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होता है। इस तथ्य का आत्मीयकरण तथा इसके आधार पर वास्तविक काम कर सकने की क्षमता ही उपबोधन सेवा की मूलभूत आवश्यकता होती है।

एकान्त व्यवस्था—इस सेवा की विशिष्ट वैयक्तिक प्रकृति का तर्कगत निष्कर्ष यही निकलता है कि इसके नियोजन सचालन हेतु शाला में किसी एकान्त कक्ष की व्यवस्था होना अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति अपनी निजी तथा गोपनीय प्रश्नों के

का विवेचन यह कह कर प्रारम्भ करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अपने शाब्दिक तथा मानसिक-दोनों ही अर्थों के सन्दर्भ में उपबोधन सेवा को निर्देशन कार्यक्रम की केन्द्रीय सेवा कहा जा सकता है।

सर्वप्रथम तो प्रमुख निर्देशन-सेवाओं की जो प्राथमिक अनुसूची हमने प्रारम्भ में प्रस्तुत की उसमें इस सेवा की संख्या क्रमिक रूप से भी मध्य में आती है। फिर वास्तविक निर्देशन कार्य संचालित करने के दृष्टिकोण से भी निर्देशन कार्यक्रम का प्राथमिक दो सेवाओं का क्रियाएं सम्पन्न न हो सकने तक उपबोधन का तकनीकी सेवा समुचित रूप से नहीं की जा सकती। स्पष्ट है कि जबतक व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण सम्बन्धी आवश्यक सूचनाओं का विधिवत संकलन-वर्गीकरण ही न हो पाया हो तो उस दत्त सामग्री के आधार पर विवेचन किस प्रकार किए जा सकते हैं? तदनुसार यह भी एक वास्तविकता है कि जबतक उक्त आधारों पर व्यक्ति अपने स्वतन्त्र निश्चय नहीं निर्धारित कर लेता तबतक उस नियोजन में किस प्रकार सहायता दी जा सकती है? तथा उसके निश्चयों का युक्तियुक्त अनुवर्तन किस प्रकार किया जा सकता है? तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि कार्य-व्यवस्था की दृष्टि से भी इस सेवा का एक केन्द्रीय स्थान होता है।

अन्त में तकनीकी महत्त्व के दृष्टिकोण से भी इस सेवा का न केवल निर्देशन कार्यक्रम में अपितु समूची शाला व्यवस्था में एक केन्द्रीय महत्त्व होता है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सम्पूर्ण शाला की बहुमुखी क्रियाओं में से कोई भी प्रक्रिया ऐसी नहीं है जो इस स्थान पर कर सके।

(आ) प्रकार—मूलतः उपबोधन सेवा द्वारा छात्र को उसके जीवन के कई पक्षों में वैयक्तिक सहायता दी जाती है। कतिपय सम्भावित पक्षों का उल्लेख उदाहरणस्वरूप यहाँ पर किया जा रहा है।

शैक्षिक पाठ्यक्रम—इस पक्ष में शाला में उपलब्ध पाठ्यक्रमों के स्वरूप प्रवेश आवश्यकता तथा भावी सम्भावनाओं के ज्ञान के आधार पर छात्र अपने शैक्षिक निश्चय लेने में सहायता प्राप्त करते हैं।

शैक्षिक कुशलताएं—पाठ्यक्रम प्रवेश के उपरान्त छात्र को उसके सफल पारगमन में भी कई प्रश्न हो सकते हैं जो कि उसके सूचना ज्ञान कौशल्य क्षमता अभिरुचिता अध्ययन आदतें परीक्षा-कुशलता आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। इन प्रश्नों का समाधान छात्र को उपबोधन सेवा द्वारा प्राप्त हो सकता है।

पाठ्यत्तर क्रियाएं—इस पक्ष में पाठ्यक्रम से अप्रत्यक्षरूपेण-सम्बन्धित प्रवृत्तियों सम्बन्धी जानकारी द्वारा छात्र इनका सन्तुलन अपने समूचे व्यक्तित्व के साथ करने में सहायता प्राप्त करते हैं।

वैयक्तिक सामाजिक समस्याएं—छात्र के बहुपक्षी-व्यक्तित्व की कई उलझनें हो सकती हैं जिन्हें सुलझाने में वह वैयक्तिक सहायता की अपेक्षा करता है। ये कठिनाइयाँ उसके कक्षा अधिगम के सन्दर्भ में हो सकती हैं अथवा शिक्षक शिक्षार्थी

सम्बन्धों में उद्भूत हो सकती है। कभी कभी इन कठिनाइयों का सम्बन्ध समवयस्क साथियों के पक्ष में होता है जहाँ पर समूह मानक तथा वैयक्तिक विश्वासों में कुछ संघर्ष हो सकता है। माध्यमिक शिक्षा-व्यवस्था में कभी कभी जाति धर्म स्थान देश आदि के कारण छात्र स्वयं सम्बन्ध में कुछ कठिनता उत्पन्न कर सकते हैं जो कि उन छात्र-समुदाय के लिये बड़ी कष्टदायक सिद्ध हो सकती है। विभिन्न छात्र समुदायों के समक्ष परिचय के आधार पर उपबोधक ऐसी परिस्थितियों में प्रत्येक छात्र की वैयक्तिक सहायता समायोजन की दिशा में करा सकता है।

कभी कभी कुछ सामान्य-असामान्य शारीरिक सीमितताओं या दोषों के कारण कतिपय छात्र न केवल स्वयं दुखी रहते हैं अपितु अपने अन्य साथियों के निरन्तर उपहास के पात्र बनकर कुसमायोजन के शिकार बन जाते हैं। इस दिशा में उनका समाधान करना वैयक्तिक उपबोधन सेवा का ही तकनीकी उत्तरदायित्व हो जाता है।

घरेलू कठिनाइयाँ—छात्रों के प्रारम्भिक शालीय जीवन का समायोजन एक बहुत बड़ी सीमा तक उनकी घरेलू परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है। इन परिस्थितियों में कई बार कई बातें ऐसी होती हैं जिन्हें छात्र अपने मित्रों को तो क्या स्वयं अपने आपको भी नहीं कह सकता। कई हीन-अनुभवों तथा स्थितियों की वास्तविकता को स्वीकारने में भी उसे प्रायः संकोच होता है। कभी-कभी तो घरेलू कारणों में उद्भूत छात्र की आत्मविश्वासहीनता, कुण्ठा, चिन्ता तथा असुरक्षा व हीन भावना की प्रवृत्ति इतनी गम्भीर होती है कि किशोर छात्र को उसके समस्त कारण, उसके सही स्वरूप तथा उसके प्रभाव व परिणामों के सम्बन्ध में अभिज्ञता ही रहती है। शाला के अन्य कार्मिक भी इन परिणामों को लगातार देखते हुए भी उनके मूल कारणों को नहीं जान पाते। वास्तव में उन तक जाने व उन्हें समझने का न तो उनके पास समय है और न इस प्रकार के तकनीकी कार्य हेतु उनका कोई विशिष्ट प्रशिक्षण ही होता है। विशेष रूप से नियोजित प्रशिक्षित उपबोधक का ही यह उत्तरदायित्व होता है कि वह इस प्रकार की परिस्थितियों में प्रत्येक छात्र को समुचित वैयक्तिक उपबोधन प्रदान करे।

आर्थिक प्रश्न—अपने परिवार की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण कई बार कतिपय प्रतिभाशाली छात्रों को भी अपनी क्षमतानुकूल शिक्षाध्ययन करने में आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में निर्देशन कार्यक्रम द्वारा विविध आर्थिक-स्रोतों के सम्बन्ध में सूचना प्रसारण करना ही पर्याप्त नहीं होता। विविध स्रोतों से उपयुक्त धनराशि विभिन्न रूपों में प्राप्त कर सकने हेतु प्रत्येक छात्र को वैयक्तिक सहायता की आवश्यकता होती है। विशेषकर हमारी संस्कृति में जहाँ पर किशोरों को स्वतन्त्र रूप से आमदनी प्राप्त करने का—पश्चिमीय किशोरों की तुलना में—बहुत कम अवसर होता है—वहाँ पर एक छात्र का इस प्रकार के स्रोतों की खोज भूमि में भी व्यक्तिगत सहायता की आवश्यकता

होती है जोकि उपबोधन सेवा द्वारा प्राप्त हो सकती है।

(ह) प्रारम्भ एवं आवश्यक तत्त्व—जैसाकि इस सेवा के विवेचन के प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया जा चुका है इसके प्रारम्भ का प्राथमिक आवश्यकता होती है—भौतिक साधन-सुविधाओं के रूप में। एकान्त कक्ष शान्त वातावरण विश्रामपूर्वक बैठकर बात कर सकने की उपस्करणीय व्यवस्था, दत्त सामग्री को सुरक्षित एवं गोपनीय रख सकने के कैबिनेट फाइल्स आदि ये ऐसी भौतिक पूर्वावश्यकता हैं जिनके बिना उपबोधन सेवा की कल्पना करना ही मूर्खता होगा।

उक्त भौतिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित है इस सेवा में निहित आर्थिक पक्ष। उक्त प्रकार के स्थान व उपकरणों की व्यवस्था बिना अर्थ के करना असम्भव है।

इसी अर्थ-व्यवस्था से निकटतम मिलता जुलता प्रश्न उपस्थित होता है प्रशासक की आस्था का। यदि उसकी इस प्रकार की सेवा में आस्था नहीं हुई तो वह इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण तकनीकी कार्य को आर्थिक अपव्यय के रूप में देख सकता है। विशेषकर कई प्रकार के आर्थिक तंगी में जकड़े हुए हमारे माध्यमिक विद्यालयों के प्रशासकों को इतनी अधिक प्रकार की आवश्यकताओं का सामना करना पड़ता है कि उनके लिये इस सम्बन्ध में आर्थिक पूर्वकल्पितता निश्चित कर सकना सचमुच एक दूसरा काम आ उठता है।

प्रशासक की आस्थाहीनता का एक और उपपरिणाम हो सकता है उपबोधक को पर्याप्त समय का अभाव। यों तो आदर्श व्यवस्था वह होगी जबकि एक पूरे समय का उपबोधक एक स्वतन्त्र रूप से शाला उपबोधक का कार्य कर सके। किन्तु यदि बजट की आर्थिक सीमितताओं के कारण यह सम्भव न हो सके तो शाला का समय सारिणी में शाला उपबोधक का कम से कम सप्ताह में दो तीन घण्टे का तो प्रावधान होना अनिवार्य है।

सबसे अधिक शोचनीय तो वह परिस्थिति होती है जबकि शाला उपबोधक को एक ऐसे एक्स्ट्रा के रूप में देखा जाता है जो छुट्टी की हाजिरी भी ले सके, कक्षा का निरीक्षण भी करे तथा किसी अनुपस्थित शिक्षक की कक्षा को व्यस्त भी रख सके। सर्वप्रथम तो इस प्रकार के बहुमुखी आकस्मिक कार्य निभाने वाले उपबोधक को अपना निजी तकनीकी कार्य करने हेतु समय व शक्ति की सदैव कमी रहती है। दूसरे अपने स्वयं के कार्य की यह मूक शालीय उपेक्षा शनैः शनैः उसके मन में भी अपने उत्तरदायित्व के प्रति निष्ठा में कमी करती जाती है। और अन्त में ऐसा उपबोधक छात्रों का विश्वास भी प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। फलस्वरूप यह सेवा केवल नाममात्र की रहकर शिक्षक तथा अभिभावक दोनों की हंसी तथा उपेक्षा का विषय बन जाती है। इस तकनीकी सेवा के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करने से तो अधिक अच्छा यही होगा कि इस सेवा के नाम पर कोई ढोंग न रचा जाये।

(घ) नियोजन सेवा—उपरोक्त सूचनाओं के आधार पर छात्र को यथासम्भव रूप से अपने स्वतन्त्र निश्चय से चयन के लिए सहायता दे चुकने के पश्चात् निर्देशन कार्यकर्ता के सम्मुख जो प्रत्यक्ष व्यावहारिक चुनौती प्रस्तुत होती है वह है उन निश्चयों को कार्य रूप में परिणत करने में व्यक्ति को वास्तविक सहायता देने की। निर्देशन कार्यक्रम की नियोजन सेवाओं का मूलतः इसी चुनौती से सीधा सम्बन्ध होता है।

(ङ) प्रकृति—जिन मान्यताओं तथा आधारभूत धारणाओं को लेकर निर्देशन सेवाओं के आज स्वरूप का प्रस्तुतीकरण कर रहे हैं उसके परिप्रेक्ष्य में इन सेवाओं के लिए नियोजन नामकरण बहुत उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। नियोजन शब्द का सामान्य भावार्थ होता है किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय अथवा कार्य में नियुक्त करना। निर्देशन कार्य के पुरातन सीमित-आशय के परिप्रेक्ष्य में तो नियोजन शब्द का यह प्रयोग स्वीकार किया जा सकता था। जब निर्देशन कार्य का विस्तार ही क्योंकि वह व्यावसायिक जीवन तक सीमित रहता था तब नियोजन सेवा की परिधि भी व्यवसाय प्रवेश सम्बन्धी विविध प्रकार की सहायता तक मान्य हो सकती थी। अब निर्देशन के विस्तृत आशय के अनुसार नियोजन शब्द की प्रचलित मान्यता को स्वीकार करते हुए भी इसके आशय को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। अपनी बात को स्पष्ट करने हेतु नियोजन सेवा की प्रकृति की व्याख्या निम्न लक्षणों के सन्दर्भ में की जा सकती है।

समाहारी नियोजन सेवा व्यक्ति जीवन के विविध पक्षों में विभिन्न अवसरों पर उसके प्रारम्भिक पद-स्थापन से सम्बन्धित होती है। वस्तुतः किसी भी समस्या परिस्थिति उत्तरदायित्व आदि में से वांछित प्रथम व्यावहारिक चरण उठा सकने में लगी सहायता को नियोजन सेवाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस सेवा के आशय-स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में ही हमने इसके समाहारी लक्षण द्वारा इसकी व्यापक प्रकृति पर बल देना उचित समझा। व्यक्ति के जीवन में इसकी व्यावहारिक उपादेयता के पक्ष में कई तर्क दिए जा सकते हैं। कई बार युक्तियुक्त ढंग से सन्तोषप्रद निश्चय ले चुकने पर भी प्रत्यक्ष परिस्थिति में क्रियाशील हो सकने हेतु न केवल शुद्ध और वास्तविक तथ्यों का सामना करना पड़ता है अपितु सैद्धान्तिक स्तर के अमूर्त चिन्तन से नीचे उतर कर व्यावहारिकता की ठोस भूमि पर भी कदम जमाने पड़ते हैं। कुछ व्यक्ति इस समय कदाचित संवेगात्मक दुर्बलता अथवा मानसिक अपरिपक्वता के अभाव में बाह्य सहारे की अपेक्षा करते हैं। किन्हीं स्थानों में तो इस प्रकार के आश्रय बिना बनी बनाई योजनाओं के सैद्धान्तिक-स्तर तक ही सीमित रह जाने की आशंका हो सकती है। उक्त सभी दृष्टिकोणों से व्यक्ति जीवन की सम्पूर्णता के सन्दर्भ में हमने इसकी समाहारी प्रकृति की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

पूर्व सेवाओं का परिणाम उक्त कथन के अनुक्रम में ही कहा जा सकता है कि इस सेवा का जन्म ही निर्देशन कार्यक्रम की प्रथम तीन सेवाओं से किए गए

कार्य के परिणामस्वरूप होता है। यह एक व्यावहारिक सत्य है कि जबतक प्रथम तीन सेवाओं की क्रियाएं समुचित रूप से सम्पन्न नहीं हो जाती तबतक नियोजन सम्बन्धी कार्यों का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। जबतक छात्र सही निश्चय न कर ले कि उसे कौनसी विशेषता शाखा का अध्ययन करना है तबतक उसे प्रवेश सम्बन्धी औपचारिकताओं का क्या चिन्ता हो सकती है? इसी प्रकार व्यवसाय स्वरूप के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक रूप से आश्वस्त होने के उपरान्त ही व्यक्ति उसमें प्रविष्ट होने की प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं में सहायता प्राप्त करने पर विचार करेगा। इसी प्रकार आर्थिक सामाजिक पक्षों के कतिपय निश्चयों के सम्बन्ध में पूर्ण स्पष्टता प्राप्त कर चुकने के पश्चात् व्यक्ति इन निश्चयों के व्यावहारीकरण से सम्बन्धित समस्या के विषय में अग्रसर होगा। जैसाकि कहा जा चुका है कुछ व्यक्ति तो इन निर्णायक परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से सहायता चाहते हैं। कौन व्यक्ति कितनी अधिक सहायता की नियोजन की राह में अपेक्षा करता है यह तो बहुत कुछ व्यक्ति की प्रकृति तथा परिस्थिति के स्वरूप पर निर्भर करता है। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि वैयक्तिक-सूचना सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा तथा उपबोधन सेवा के कार्यों के तर्कसंगत परिणाम का नियोजन सेवाओं के रूप में अनुवर्तन नहीं किया जाता तो व्यक्ति को अपने बहुपक्षीय जीवन में व्यावहारिक सहायता देने के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति निर्देशन कार्यक्रम द्वारा नहीं हो सकती।

सहयोगी यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि नियोजन सेवा द्वारा व्यक्ति के बहुपक्षीय जीवन में सहायता प्रदान की जाती है। स्पष्ट है कि यह बहुआयामी सहायता एक ही व्यक्ति द्वारा व्यापक रूप से नहीं दी जा सकती। सैद्धान्तिक तथा तकनीकी रूप से प्रशिक्षित उपबोधक विविध पक्षों द्वारा प्राप्त हो सकने वाली सहायता के स्रोतों से व्यक्ति का न केवल परिचय कराता है अपितु उनके सम्बन्ध में समुचित मार्ग-दर्शन भी करता है। वस्तुतः मार्ग-दर्शक सेवाओं को तो पश्चिमीय साहित्य में कई स्थानों पर एक स्वतन्त्र निर्देशन-सेवा का स्थान दिया गया है। उक्त विवेचन का एक तर्कसंगत उपसिद्धान्त यह होता है कि नियोजन सेवा का कार्य समुचित सहयोग के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। एक उपबोधक से यह अपेक्षा करना व्यावसंगत नहीं होगा कि वह प्रत्येक पाठ्यक्रम व्यवसाय अथवा जीवन परिस्थिति के सम्बन्ध में सभी कुछ जानता हो। किन्तु हाँ उससे यह अपेक्षा की जाती है कि समस्या के स्वरूप के अनुकूल विविध स्रोतों के विशेषज्ञों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी रखता हो। यही नहीं उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि विविध अभिकरणों से उसका इस प्रकार का समरस सम्बन्ध हो कि वह विश्वासपूर्वक उपबोध्य को उनके पास मार्गदर्शन कर सके। ऐसे सम्बन्ध-स्थापन तथा अनुरक्षण के लिए आवश्यक है कि उपबोधन सम्बन्धी विविध अभिकरणों में समुचित सहयोग हो।

इस प्रकार के सहयोग के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि विविध अभि

करता। गारा किए गए माम श न का यक्ति " "श्रवाधन प्रथम म समुचित रूप स सयोजन हो सके। प्रकार्यात्मक हल स यह सयोजन नियोजन सेवा म एक बहुत अच्छी सीमा तक फलित होता है। इनसे को आवश्यकता न ीं कि सहयोगी काय किसी भी सफल सयोजन का पूर्वावश्यकता होती है। इसीलिए हमने सहयोगी तत्वों को नियोजन सेवा क प्रमुख लक्षणों म स्थान दिया है।

विकासा मक— प्रस्तुत पुस्तक म स्थान स्थान पर व्यक्ति तथा उसक पर्या वरण के सतत विकासा मक स्वरूप पर बल दिया गया है। वस्तुत निर्देशन की मूल आवश्यकता ना एक बहुत अच्छी सीमा तक इन दोनों सह धर्मिन की आयामों की विकासात्मक प्रकृति के कारण अनुभूत की जाती है। यदि व्यक्ति म गतिशीलता का अभाव होता तथा उसके पर्यावरण म स्थिरता होती तो कदाचित न तो उसका समायोजन ही विचार का प्रश्न उपस्थित करता न ही निर्देशन सेवाओं की कोई आव श्यकता होती। इस मौलिक कारण स परिप्रेक्ष्य म ही वयक्तिक सूचना सेवा तथा पर्यावरणीय सूचना सेवा म भी विकासा मकता पर बल दिया गया है।

नियोजन । विकासात्मकता का स्वरूप व्यक्ति विकास के विविध स्तर तथा उसक काय आयामों की विभिन्न परिस्थितियों क परिप्रेक्ष्य म भी आंका जा सकता है। उदाहरणार्थ माध्यमिक शिक्षा स्तर पर नियोजन वास्तव म प्राथमिक स्तरों की शिक्षा का अग्रिम रूप ोता है और माध्यमिक स्तर क बाद का उच्चतर माध्यमिक नियोजन म विस्तार होता है। पुन शालेय शिक्षा के स्वरूप का विशिष्ट प्रशिक्षण। महाविद्यालय शिक्षा धाराओं अथवा विभिन्न व्यवसाय - क्षेत्रों मे विकास होता है। इन सभी म समुचित नियोजन की आवश्यकता होती है और अपनी विकासात्मक प्रकृति के अनुरूप नि शन कायक्रम की नियोजन - सेवा अपनी गतिशीलता बनाए रखते हुए व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न बिन्दुओं पर निर्णायक सहायता प्रदान करती रहती है।

(आ) प्रकार— नियोजन सेवाओं क माध्यम स दी जा सकने वाली सहा यता के कुछ प्रकार तो इस सेवा की प्रकृति के विवेचन मे ही प्रतिबिम्बित हो चुके हैं। कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत उनका और विशिष्ट स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है —

शक्षिक पाठ्यक्रम— माध्यमिक उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों के चयन म सहायता।

शक्षिक कठिनाईयाँ— इन पाठ्यक्रमों के म दम म अधिगम अध्ययन प्रादत मूल्यांकन परीक्षा बाधा दोष आदि सम्बन्धी कठिनाइयों के परिहार हेतु उचित मार्गदर्शन।

शक्षिक विभेदताएँ— शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न विशिष्टीकरणों की आवश्यकताओं के अनुकूल प्रवेश-प्राप्ति की औपचारिकताओं की पूर्ति म नियोजन।

प्रशिक्षण— किसी विशिष्ट व्यावसायिक औद्योगिक अथवा तकनीकी पाठ्यचर्या के प्रशिक्षण का लाभ उठा सकने हेतु व्यावहारिक भाग, स्थान-नियम, कार्मिकों से प्रत्यक्ष परिचय, आवेदन पत्र तथा अन्य प्रपत्रों की पूर्ति तथा प्राथमिक अभिविन्यास आदि सम्मिलित रहता है।

पाठ्येत्तर क्रियाएं— शाला की विविध पाठ्यसहगामी क्रियाओं में भाग ले सकने हेतु सहायता एवं सहारा। विशेषकर अन्तर्मुखी छात्रों के लिए इस प्रकार के अवलम्ब की बहुत आवश्यकता होती है।

व्यवसाय प्रवेश— नवयुवक के जीवन का यह एक अत्यन्त ही निर्णायक स्थल होता है। हमारे देश में तो इस निश्चय के पूर्व की भी कई नियोजनों तथा... की पूर्ति में नवयुवकों को नानाप्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। यह सहायता नियोजन सेवा के माध्यम से दी जा सकती है।

साक्षात्कार की तैयारी— शैक्षिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रवेश प्राप्ति हेतु साक्षात्कार प्रायः एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता रहती है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि सामान्यतः इस साक्षात्कार की कला में हमारे किशोरों तथा नवयुवकों को तनिक भी तकनीकी सहायता नहीं दी जाती। हमारे उच्चस्तरीय विश्वविद्यालयों में भी जहाँ सैद्धान्तिक परीक्षा की शिक्षा का तो नियमित कक्षाओं का विद्यालय की समय तालिका में प्रावधान होता है वहाँ परीक्षक के समक्ष हो सकने वाली मौखिक परीक्षा की योग्यता विद्यार्थी में पूर्वानुमानित करके उन्हें इस दिशा में कोई व्यावहारिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। फलस्वरूप कई नवीन एवं अन्तर्मुखी छात्र इस दिशा में अपनी दुर्बलता के कारण अकारण ही वंचित हो जाते हैं। यही तथ्य दूसरे ढंग से व्यवसाय प्रवेश सम्बन्धी साक्षात्कार पर लागू होता है जहाँ कई व्यक्तियों की अन्तर्मुखी प्रकृति साक्षात्कार के समय उनके कई गुप्त गुणों को प्रकट नहीं होने देती। इसके विपरीत कुछ कम कौशल वाले व्यक्ति अपने युक्त व्यवहार द्वारा साक्षात्कार करने वालों को प्रभावित करके बाजी मार ले जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नियोजन सेवा द्वारा नाना प्रकार तथा विभिन्न उद्देश्यों से लिए जाने वाले साक्षात्कार हेतु व्यक्तियों को तकनीकी सहायता दी जा सकती है।

(इ) **प्राक्थ्य तथा आवश्यक तत्व**— नियोजन सेवाओं के स्वरूप के सम्बन्ध में एक विचारणीय तथ्य यह है कि भारत में हमारे वर्तमान नियोजन केन्द्रों की तुलना में इनमें कितनी समानता है? — कितना भिन्नता है? 'एम्प्लायमेन्ट ब्यूरो' के नाम से अभी हमारे देश में पृथक् नियोजन केन्द्र सरकारी स्तर पर पाए जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन केन्द्रों का भी अपना एक महत्व होता है। किन्तु निर्देशन-सेवाओं के प्रस्तुत विवेचन में तो नियोजन सेवा को शाला - निर्देशन-कार्यक्रम की एक अन्तरंग सेवा के रूप में विचारा जा रहा है। सर्वप्रथम तो सरकारी नियोजन केन्द्रों का उद्देश्य व्यक्ति को केवल व्यावसायिक नियोजन देने तक ही सीमित रहता है। दूसरे इस नियोजन प्रयास का व्यक्ति के अन्य वैयक्तिक-मनोवैज्ञानिक

घटना से कोई सम्बन्ध स्थापन नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में इस नियोजन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत वैध नहीं कहा जा सकता।

निर्देशन कार्यक्रम के नियोजन के पूर्व तो व्यक्ति के समस्त मानसिक शारीरिक शक्ति-सामाजिक आदि पक्षों का परीक्षण शैक्षिक अथवा व्यावसायिक अवसरों के सन्दर्भ में समुचित रूप से कर लिया जाता है। दूसरे यह नियोजन शाला के शैक्षिक तथा निर्देशन कार्यक्रम के साथ साथ चलता रहता है।

इसके सफल सचालन हेतु कतिपय आवश्यक तत्त्वों का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के सन्दर्भ में किया जा सकता है।

वांछनीय उपागम सर्वप्रथम तो हमारी शालीय परिस्थितियों में इस अपेक्षाकृत नवतापेक्षित सेवा हेतु कार्यकर्ताओं की इसमें समुचित आस्था होनी चाहिए। शक्ति व्यावसायिक अथवा वैयक्तिक नियोजन को सामान्यतः हम शालीय कार्यों की परिधि से परे की वस्तु मानते हैं। अतः प्राथमिक आवश्यकता तो इस बात की है कि शाला-कार्मिक छात्र नियोजन को अपने एक उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकारें। *तभी इस सेवा के आयोजन तथा इसकी क्रियाशीलता की बात कुछ आगे बढ़* सकती है।

कर्मीय सहायता एवं न्यूनतम आर्थिक प्रावधान हम कह चुके हैं कि इस सहायता के आयोजन-सचालन हेतु विविध सामाजिक औद्योगिक अभिकरणों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। स्पष्ट है कि इस सहयोग के लिए अभिकरण अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता होती है। यह सम्पर्क लिखित तथा व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार से करना अपेक्षित होता है और किसी भी प्रकार के *सहयोग में स्टेशनरी स्टाम्पस अथवा यातायात हेतु न्यूनतम व्यय की आवश्यकता होती* है। केवल सैद्धान्तिक स्तर पर योजना बना करके ही यह सम्पर्क सम्भव नहीं हो सकता। अत्यन्त आवश्यक है कि इन वांछनीय योजनाओं को प्रकार्यात्मक स्वरूप देने के लिए शाला के बजट में प्रत्यक्ष प्रावधान हो।

इस प्रावधान के अतिरिक्त इस सेवा में निहित कई सामान्य नेमी क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु कुछ कर्मीय सहायता का होना भी अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा। इसमें उपबोधक की शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण एवं तकनीकी उपबोधन उत्तरदायित्वों हेतु आरक्षित की जा सकती है।

अंशकालीन कार्य-व्यवस्था छात्रों के सक्षम आर्थिक-व्यावसायिक नियोजन हेतु सेवा की एक महत्त्वपूर्ण पूर्वावश्यकता होती है अंशकालीन कार्यों की शाला-परिधि में व्यवस्था। अभी हमारे देश में यह एक नूतन विचारधारा है। किन्तु पश्चिम के प्रगतिशील देशों में विद्यालय के अन्तर्गत ही इतने अंशकालीन कार्यों का प्रावधान रहता है कि किसी निर्धन छात्र को अर्थाभाव से उद्भूत अभावों का शिकार नहीं होना पड़ता। विद्यालय परिधि के अतिरिक्त इन देशों के समुदायों समाजों में भी नाना प्रकार के

अ--कालीन कृत्यता की सुविधा होती है जिनके द्वारा निधन छात्रों को अपनी शैक्षिक गतिविधियों में बहुत सहज मिल सकती है। यहां के विद्यालय नियोजन केन्द्र इस प्रकार के अवसरों की व्यवस्थित सूची अनुरक्षित करते हैं तथा छात्र इस दिशा में यथोचित सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

यद्यपि हमारे देश में अभी इस प्रकार की सुविधाओं का प्रायः अभाव सा ही है फिर भी इनकी स्वीकृत उपयोगिता तथा अनुभूति सिद्ध लाभदायिता के परिप्रेक्ष्य में हमारा सबल सुझाव है कि हमारी सरकार शिक्षा-कर्मचारी तथा अन्य सम्बन्धित कार्मिक इस दिशा में गम्भीर चिंतन तथा सक्रिय प्रयास करें।

इस प्रयास से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करके हम नियोजन सेवा-सम्बन्धी चर्चा का समाहार करेंगे।

इस प्रकार के अंशकालीन व्यवसायों में अन्तरंग रूपेण मिला जुला प्रश्न उपस्थित होता है-मनोवृत्तियों का। हमारे देश में कई व्यवसायों के साथ हमारे समाज के मन में कुछ हीन भावनाएं संयुक्त हो चुकी हैं। अतः यदि हमारे छात्र आवश्यकतावश इस प्रकार के व्यवसायों को आंशिक रूप से करने को किसी प्रकार तत्पर हो भी जायें तो उनके अभिभावकगण उनके इन कार्य-कारणों में अपनी मानहानि ही समझेंगे। ऐसी परिस्थिति में हम यही कह सकते हैं कि यहां पर तो प्रश्न अभिवृत्तियों की पुनर्अभिविन्यासित करने का है।

(ड) अनुवर्ती सेवाएं यों तो इन सेवाओं के नामानुरूप तो सामान्यतः इनका कार्य उक्त चार सेवाओं के अन्तर्गत आयोजित क्रियाओं के सम्पन्न हो जाने के पश्चात् ही प्रारम्भ होना चाहिए। शैक्षिक निर्देशन के विशिष्ट में अनुवर्ती कार्य का एक और विशेष गुणार्थ होता है-- शाला छोड़कर जाने वाले छात्रों का अध्ययन। प्रस्तुत सन्दर्भ में अनुवर्ती कार्य का अर्थ उक्त दोनों ही प्रकार की गतिविधियों का अतिक्रमण करते हुए प्रयुक्त किया जा रहा है। वस्तुतः अनुवर्ती का यही तात्पर्य है मूल्यांकन प्रक्रिया की समकक्षता में। कोई भी कार्य सम्पन्न करने पर बुद्धिजीवी मानव के मन में एक सहज प्रश्न उठता है-- मेरा कार्य कितना अच्छा हुआ? परिणाम की जिज्ञासा से सम्बन्धित इस सहज प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने हेतु व्यक्ति को अपने कार्य का पुनरवलोकन करना होता है--पुनरावलोकन के रूप में। निर्देशन के व्यापक कार्यक्षेत्र की बहुआयामी सेवाएं भी इस प्रकार की जिज्ञासाओं से--अछूती रह कर विकसित नहीं हो सकतीं। इसीलिए अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेवाओं के रूप में निर्देशन कार्मिक इनका आयोजन निर्देशन कार्यक्रम में करते हैं।

(अ) प्रकृति अनुवर्ती सेवाओं के स्वरूप को संक्षेप में सतत सामयिक परीक्षणों या एक सुव्यवस्थित शृंखला के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसकी प्रकृति के कुछ प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार से वर्णित किए जा सकते हैं--

--सातत्य केवल शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से चाहे अनुवर्तन और

सातत्य मे एक विरोधाभास पाया जाता है। किन्तु निर्देशन कार्य में तो ये दोनों लक्षण अनुवर्ती सेवाओं की प्रकृति में अन्तरंग रूप से घुल मिले रहते हैं। वस्तुतः मूल्यांकन के रूप में अनुवर्तन का कार्य निर्देशन के उद्देश्यों के निर्धारण के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है। तत्पश्चात निर्देशन कार्यक्रम के प्रत्येक सोपान पर एक क्रिया के स्वरूप विधा तथा परिणाम के सम्बन्ध मे वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछता हुआ यह कार्य प्रत्येक बिन्दु पर निर्देशन के स्वरूप में वांछनीय सुधार लाने हेतु उन्मुख रहता है। कार्य अन्त मे या यों कहें कि चारों सेवाओं के माध्यम से विभिन्न उत्तरदायित्व पूर्ण हो जाने पर एक समाहारी परीक्षण का दृष्टिकोण लिए हुए अनुवर्ती सेवाओं द्वारा सम्पूर्ण कार्यक्रम की विविध भांति जांच की जाती है।

अनुवर्तन के सातत्य को एक और दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। हम कई बार इस बात पर बल दे चुके हैं कि निर्देशन कार्यक्रम का केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होता है। अब यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति प्रकृति से ही एक विकासमान एवं गत्यात्मक इकाई होता है। तदनुसार विशेष रूप से इस व्यक्ति के विकास एवं समंजन से सम्बन्धित कार्य के स्वरूप में सातत्य का होना अनिवार्य है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि इस तर्क से तो सातत्य का लक्षण निर्देशन की प्रत्येक सेवा में पाया जाना चाहिए। हमें इस तर्क से कोई आपत्ति नहीं। बल्कि हमारी तो यह मान्यता है कि विकासमान व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में ही उसके बहुमुखी समंजन हेतु निर्देशन कार्य में एक सहज सातत्य की आवश्यकता होती है।

—सहयोगी अनुवर्तन कार्य की प्रकृति का तृतीय वांछनीय लक्षण है सहयोगिता का। इस सहयोगिता का विवेचन दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। प्रथम तो विविध सेवाओं के बीच में सहयोग तथा दूसरा विभिन्न कार्मिकों के मध्य सहकारिता की भावना। जैसाकि निर्देशन सेवाओं के प्रारम्भिक परिचय के समय ही स्पष्ट कर दिया गया था—हम इन सेवाओं का संचालन जल-रुद्ध विभागों के रूप में नहीं कर सकते। सम्प्रत्ययीय स्पष्टीकरण की सुविधा को देखते हुए हमने इनका वर्णन स्वतन्त्र शीर्षकों के अन्तर्गत अवश्य किया है। किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इनका अस्तित्व अथवा आयोजन एक दूसरे की शून्यता में हो सकता है। वैयक्तिक सूचना के माध्यम से छात्र विषयक समाहारी सूचना एकत्र करने के साथ ही उससे सम्बन्धित पर्यावरणीय सूचनाओं का भी संकलन किया जाता है। वस्तुतः दोनों सूचनाओं द्वारा यह संकलन एक दूसरे की सापेक्षता में ही वैध रूप से किया जा सकता है। तत्पश्चात उपबोधन सेवा द्वारा दी गई सूचनाओं की सन्दर्भता में पुनः वैयक्तिक सूचना पर्यावरणीय तथ्य तथा नियोजन की सम्भावनाओं को ध्यान में रखा जाता है। साथ ही प्रत्येक स्तर पर प्रस्तुत तथा पूर्व तथ्यों का अनुवर्तन के रूप में सतत मूल्यांकन चलता रहता है।

अनुवर्तन की सहयोगी प्रकृति का द्वितीय स्वरूप निर्देशन के विविध कार्मिकों

निर्देशन सेवाओं की भारत में सम्भावनाएँ

गत पृष्ठों में निर्देशन-सेवाओं के जिस स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है वह वास्तव में एक आदर्श प्रारूप का प्रक्षेपित चित्र है। प्रश्न उठता है कि भारत में वर्तमान परिस्थितियों में इस रूप से कितना अंश व्यावहारिक रूप से सम्भव हो सकता है। यों तो प्रत्येक सेवा के विवेचन में हमने स्थान-स्थान पर प्रकार्यात्मक इंगित दिए हैं। साथ ही सम्पूर्ण प्रस्तुतिकरण में भी हमने सदैव भारतीय पृष्ठभूमि का ध्यान में रखा है। फिर भी पाठकों का ध्यान हम यहां पर कुछ वास्तविक तथ्यों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

सर्वप्रथम तो हमारी शिक्षा व्यवस्था में निर्देशन कार्यक्रम की स्वीकृति अपेक्षित है। यह सत्य है कि हमारे शैक्षिक साहित्य में यह स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। किन्तु हमारा तात्पर्य यहां पर दो बातों से है—और वे हैं मौलिक आस्था तथा व्यावहारिक प्रावधान। इस समय निर्देशन सम्बन्धी ये दोनों ही मौलिक आवश्यकताएं हमारी शिक्षा-व्यवस्था में उपस्थित नहीं हैं। हम इस स्थान पर इस अनास्था तथा प्रावधान हीनता के कारणों में जाना नहीं चाहते। ऐसा प्रयास न केवल विषय का अतिक्रमण होगा अपितु प्रस्तुत विषय के प्रति भी एक नकारात्मक उपागम होगा। हम तो यहां पर एक सकारात्मक दृष्टिकोण से ही कतिपय प्रकार्यात्मक सुझाव देना चाहते हैं।

(१) प्रशासकीय अभिविन्यास चूंकि किसी भी वांछनीय विकास के लिए सर्वप्रथम तथा सतत प्रशासकीय नेतृत्व की आवश्यकता पड़ती है इसलिए हमारा सुझाव है कि भारतीय शिक्षा क्षेत्र के विभिन्न स्तरों पर प्रशासकों को निर्देशन के दर्शन तथा इसकी क्रिया विधियों के सम्बन्ध में अभिविन्यासित किया जाय। तभी वे आस्था पूर्वक निर्देशन कार्यक्रम की स्थापना, संगठन तथा विकास में अपेक्षित नेतृत्व दे सकते हैं। उनकी इस विशिष्ट भूमिकाओं के सम्बन्ध में अगले अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

(२) कार्मिकों का प्रशिक्षण प्रशासकों के सामान्य अभिविन्यास के पश्चात् प्रश्न उठता है कार्य-क्षेत्र के वास्तविक कार्मिकों का विधिवत् प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण किन्हीं स्तरों पर कितने प्रकार से कितने अभिकरणों द्वारा किस प्रकार आयोजित किया जा सकता है, इसकी विशद चर्चा आठवें अध्याय में प्रस्तुत की जावेगी। यहां तो केवल भारतीय शालाओं में निर्देशन कार्यक्रम की एक पूर्वविषयकता के रूप में पाठकों का ध्यान इस बिन्दु की ओर आकर्षित किया जा रहा है।

(३) अर्थ-व्यवस्था बारम्बार हमने जिस पूर्वविषयकता को प्रत्येक सेवा के प्रस्तुतिकरण में बल दिया है उसे यहां पर निर्देशन कार्यक्रम की एक मूलभूत समाहारी अनिवार्यता के रूप में पुनः दोहरा रहे हैं। कई बार यह प्रश्न पूछा जाता है कि जब अर्थाभाव के कारण हम अभी तक प्राथमिक स्तर पर—अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का ही प्रावधान नहीं कर पाए हैं तो निर्देशन कार्यक्रम की बातें करना अलिफ

रचना के विस्तों के समान होगा।

इस सम्बन्ध में हमारा यही आग्रह है कि प्रस्तुत पुस्तक में निर्देशन का जो मौलिक सप्रत्यय प्रस्तुत किया गया है वह किसी भी प्रकार सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था से भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। हमारे विचार से तो समूची शिक्षा व्यवस्था ही निर्देशन अभिविन्यासित होना चाहिए। शिक्षा की योजना बनाने में हर प्रत्येक चरण पर शिक्षाविदों तथा निर्देशन विशेषज्ञों का सहयोग होना चाहिए। तभी शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकती है।

(४) प्रयत्न स्वरूप अन्तिम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक सुझाव हमारा इस विषय में यह है कि कोई भी नवीन योजना प्रारम्भ करते समय उसे छोटे पैमाने पर आयोजित करने से उसकी कई प्रकार्यात्मक सीमितताओं के सम्बन्ध में स्पष्टता प्राप्त हो जाती है। इससे मानवी शक्ति तथा आर्थिक साधन दोनों का ही अपव्यय नहीं होता। अतः हमारा आग्रह है कि निर्देशन-सेवाओं की प्राथमिक परीक्षा भी सीमित रूप में करके फिर इसकी विस्तृत योजना बनाना अधिक उपादेय रहेगा।

शालाओं में कार्य प्रायमिक दो सेवाओं से शनैः शनैः प्रारम्भ किया जा सकता है। सभी सेवाओं की योजनाएं पारित करने की महत्वाकांक्षा में निराशा वहन करने की अपेक्षा कुछ ही कार्यों में उपलब्ध का सन्तोष प्राप्त करना उन्नति के लिए एक सकारात्मक प्रयत्न होना है। फिर प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से भी वैयक्तिक सूचना हेतु साधन निर्माण तथा पर्यावरणीय सूचना हेतु पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय विश्लेषण इतने प्राथमिक एवं अनिवार्य चरण हैं कि इन्हें सम्पन्न किए बिना निर्देशन कार्यक्रम के प्रारम्भ करने की कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं होगा।

चूंकि हमने प्रारम्भ से ही निर्देशन कार्यक्रम की प्रकार्यात्मक प्रकृति को महत्त्वपूर्ण समझा है इसलिए वर्तमान भारत में इसके सम्भावित स्वरूप पर एक स्वतन्त्र अध्याय इस प्रसंग में लिखा गया है। वहाँ पर उसको आयोजित करने के व्यावहारिक चरणों का सविस्तार उल्लेख पाया जाएगा।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय इस पुस्तक का केन्द्र बिन्दु है जहाँ से हमने निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष पर व्यावहारिक विवेचन प्रारम्भ किया है। निर्देशन के दर्शन को साकार स्वरूप प्रदान करने वाले कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण सेवाओं के स्वरूप का विशद चित्रण यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के प्रारम्भ में विवेचित मूलभूत अभ्युपगम समस्त कार्यक्रम को एक सैद्धान्तिक अवलम्ब एवं व्याख्या प्रदान करने के आशय से लिखे गए थे। अध्ययन के अन्त में दिए गए कुछ प्रकार्यात्मक इंगितों का विस्तृत विवेचन अधिक व्यावहारिक रूप से आगे के अध्यायों में प्रस्तुत किया जाएगा।

निर्देशन कार्यक्रम का संगठन

(विषय-प्रवेश संगठन के मूलभूत सिद्धान्त शालीय कार्यक्रम का अन्तरंग भाग शाला की नीति के अनुरूप आस्था न्यूनतम आर्थिक व्यवस्था उद्देश्य सहयोग की सम्भावना उपलब्ध साधन स्रोतों के आधार पर अपनत्व उपकरण तकनीकी दृष्टिकोण कार्मिकों की तत्परता-स्तर मानसिक तत्परता बौद्धिक-तकनीकी तत्परता उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या आदर्श-व्यावहारिक अन्तिम तात्कालिक स्पष्ट योजना कार्मिकों की भूमिकाएं प्रधानाध्यापक स्पष्ट स्वीकृति कार्मिकों की अनुकूल अभिवृत्तियाँ प्रशासनीय प्रावधान वित्तीय प्रावधान—कर्तव्यों का वितरण—भौतिक कार्य व्यवस्था—समय सारणी में प्रावधान निर्देशन समिति का अध्यक्ष उपबोधक छात्रों का उपबोधन औसत छात्र की सामान्य समस्याएं-असामान्य छात्र की विशिष्ट समस्याएं-अतिरिक्त निर्देशन सेवा शिक्षकों को सहायता वैयक्तिक विभिन्नताओं का निदान—वैयक्तिक अनुसूची दत्त संग्रह—निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन-पाठ्यसहगामी कार्यक्रम की समुचित व्यवस्था—पर्यावरणीय सूचना प्रसारण निर्देशन कार्यक्रम में अभिविन्यास शाला समुदाय संयोजक शाला-शिक्षक मनोवैज्ञानिक जलवायु का सृजन निर्देशन नीतियों के अवबोध में सहायता वैयक्तिक दत्त संग्रह पर्यावरणीय सूचना-प्रसार विषय अध्यापन के माध्यम से-पाठ्य सहगामी क्रियाओं में छात्रों को उपबोधन हेतु निर्देशन अभिभावक गण वैयक्तिक सूचना सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा उपबोधन सेवा नियोजन सेवा अनुवर्ती सेवा समुदाय अतिरिक्त निर्देशन सेवा पर्यावरणीय सूचना प्रसारण छात्र निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन के विविध सोपान निर्देशन आवश्यकताओं का सर्वेक्षण प्रमाणीकृत उपकरणों द्वारा यूनीआवलम्ब चैक लिस्ट-वाक्यपूर्ति सूची शिक्षक निर्मित साधनों का उपयोग स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण एवं उपयोग सूचनात्मक नोटिस बोर्ड-व्यवस्था अनिवार्यीय सभाएं प्रातः प्रार्थना सभा शिक्षक-अभिभावक सम्मेलन व्यावसायिक-जीवनवृत्तीय एवं सामाजिक विकास के विषय कार्मिकों की तत्परता स्तर का निर्माण समितियों का निर्माण उपसंहारात्मक कथन)

सम्भावित निर्देशन- सेवाओं का विस्तृत परिचय प्राप्त कर चुकने पर प्रश्न उपस्थित होता है वास्तविक संगठन कार्य का। वस्तुतः यही वह स्थल है जो कि कार्मिकों के सम्मुख कई प्रकार की चुनौतियाँ उपस्थित करता है। प्रस्तुत लेखकों का

इस विषय का सैद्धान्तिक अध्ययन करने के अतिरिक्त वास्तविक परिस्थितियों में निर्देशन कार्य सम्बन्धी गोष्ठियों प्रशिक्षणात्मक आयोजनाएं तथा स्थानीय आयोजन करने के कई अवसर प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम के संगठन सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किये जावेंगे।

सर्वप्रथम तो हमारा पाठकों से यह आग्रह है कि इस अध्याय में दिए गए हमारे विचारों सुझावों निर्देशों को बन्धन एवं प्रयत्न नचाने ढांचे के रूप में ग्रहण किया जावे। चूंकि निर्देशन कार्यक्रम का संगठन किसी सैद्धान्तिक विषय की चर्चा मात्र न होकर एक व्यावहारिक कार्य योजना का व्यावसायिक विवरण है इसलिए विभिन्न परिस्थितियों में इसके स्वरूप में भी विभिन्नता आने की सम्भावना हो सकती है। अतएव हमारे प्रस्तुतिकरण एक रूपरेखा मात्र है। जिसकी विस्तृताओं को पूरित करने का उत्तरदायित्व विभिन्न कार्मिक व्यक्तिगत रूप से निभा सकते हैं। द्वितीय महत्त्वपूर्ण सम्बन्धित बिन्दु है निर्देशन सेवाओं के प्रशासन का। यों तो संगठन तथा प्रशासन के प्रक्रमों के बीच कोई जल-रोक विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। ये दोनों ही प्रक्रम एक दूसरे से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्धित हैं। फिर भी विशुद्ध कार्य सीमाओं की दृष्टि से कहा जा सकता है कि प्रशासन का उत्तरदायित्व सामान्यतः संगठन के अनुवर्तन में आता है। चूंकि भारतवर्ष में तो अभी निर्देशन कार्यक्रम के संगठन सम्बन्धी कई प्रश्न ही अनवधानित पड़े हुए हैं—इसलिए प्रस्तुत लेखक ने संगठन तथा प्रशासन के कार्यों को दो विभिन्न भागों में विभाजित करना उपयुक्त नहीं समझा। यह भी सत्य है कि इस अध्याय में इसके नामानुकूल-अधिक बल संगठन सम्बन्धी पक्ष को ही दिया गया है। साथ ही प्रशासन के कतिपय तथ्य भी मिले जुले रूप से कई स्थानों पर दिये गए हैं। हमारे विचार में निर्देशन के क्षेत्र में वर्तमान भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में इसी प्रकार की सामग्री की अधिक आवश्यकता है।

विवेचन की सुविधा की दृष्टि से अध्याय की सामग्री को निम्न भागों में विभाजित किया गया है —

(१) संगठन के मूलभूत सिद्धान्त
(२) कार्मिकों की भूमिकाएं
(३) कार्यक्रम आयोजन के विविध सोपान

संगठन के मूलभूत सिद्धान्त

(१) स्थानीय कार्यक्रम का अन्तरंग भाग

निर्देशन कार्य के संगठन के वर्तमान भारतीय प्रारूप के सन्दर्भ में ही इस सिद्धान्त को यहां प्राथमिक महत्त्व दिया जा रहा है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत में निर्देशन कार्यक्रमों के प्रति एक सामान्य उदासीनता अथवा अनास्था के मूल में एक प्रमुख कारक यह रहा है कि हमारे देश में निर्देशन सेवा की व्यवस्था तथा सुविधा शालेतर स्थितियों में की गई है। शालाओं में छात्रों

का निर्देशन सेवाएं प्रदान करने का उत्तरदायित्व उन प्रान्तीय निर्देशन केन्द्रों पर है जिन्हें हम गाइडेन्स ब्यूरोज अथवा साइकालाजिकल ब्यूरोज के नाम से पुकारते हैं। इन अभिकरणों का शाला के उद्देश्य संगठन प्रशासन कार्यक्रम आदि से तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहता। वस्तुतः इनके कार्मिक—शाला में अपरिचितों की भांति ही वर्ष में दो तीन बार प्रवेश करते हैं। स्पष्ट है कि निर्देशन ग्रहण कर सकने की मूलभूत मानसिक परिस्थिति समानुभूति या सामंजस्य छात्रों में स्थापित हो सकने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। बल्कि ये मौसमी आगन्तुक तो छात्रों तथा शाला-अधिकारियों द्वारा ऐसे अवाञ्छनीय अतिथियों के रूप में देखे जाते हैं जोकि मानो अपने स्वयं के स्वार्थ हेतु शाला के कार्य में व्यवधान डालने आ टपकते हैं। इनके द्वारा शासित अपने परीक्षण प्रश्नावलियों आदि एक अनिच्छित औपचारिकता के रूप में भरवा दी जाती हैं। और वास्तविकता तो यह है कि शाला के सामान्य शिक्षक भी अपने छात्रों को इन विशेषज्ञों से अधिक अच्छी तरह जानते हैं। एवं बाह्य अभिकरण होने के कारण ये न तो छात्रों का विश्वास प्राप्त कर सकते हैं न शाला-अधिकारियों का सहयोग।

हम सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से इस मूलभूत सिद्धान्त पर बल देना चाहते हैं कि निर्देशन का कार्य शाला के दैनंदिन कार्यक्रम का एक अविच्छिन्न अंग होना चाहिये। इसका आयोजन संचालन मूल्यांकन न केवल शाला के कार्यक्रम के संदर्भ में होना चाहिये अपितु उसमें मिले जुले रूप में चलना चाहिये। हम तो इस पाठ्यान्तर प्रवृत्ति के रूप में भी देखना नहीं चाहते। यह तो वह पाठ्य सहगामी प्रवृत्ति है जिसकी झलक शाला की प्रत्येक गतिविधि में दिखाई देनी चाहिये। शाला पाठ्यचर्या की यह वह चमकती झालर मात्र नहीं है जिसे केवल शोभा के लिये टांक दिया गया हो और जिसे चमक-दमक पूरी होते पर फाड़ कर फेंक दिया जा सकता हो। निर्देशन का दर्शन शाला रूपी वस्त्र के प्रत्येक तानेबाने में अविच्छिन्न ढंग से बुना हुआ होना अपेक्षित है। शाला के अधिकारी शिक्षक तथा छात्र—सभी का यह भावना होनी चाहिये कि यह कार्यक्रम उनका अपना है इसके बिना उनका शालीय जीवन विखण्डित हो जायगा।

वास्तव में शाला के साथ सुसंगठित निर्देशन कार्यक्रम द्वारा शाला की विविध आयामों प्रवृत्तियों की कई मानों में पुष्टि ही होती है। निर्देशन अभिविन्यासित पाठ्यचर्या सदैव छात्रों की अनुभूत आवश्यकताओं पर आधारित रहती है। कतिपय सामान्य मूलभूत आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उसे आयोजित करने पर भी उसमें वैयक्तिक विभिन्नता से उद्भूत व्यक्तिगत विशिष्टताओं के लिये भी समुचित समादर एवं प्रावधान रहता है।

निर्देशन सेवाओं के शालीय कार्यक्रम का अन्तरंग भाग होने की वांछनीयता का एक और प्रमुख कारण छात्रों के अतिरिक्त जनता से सम्बन्धित है। निर्देशन सेवाओं के एक आदर्श कार्यक्रम का उत्तरदायित्व केवल छात्र हित एवं समायोजन तक

ही सीमित नहीं रहता। सर्वप्रथम तो शाला के शिक्षक इस संगठन द्वारा कर्मचारी नोकी सेवाएं प्राप्त कर सकते हैं। शाला के प्रारम्भ तथा अंत में निर्देशन सेवाओं का सामूहिक रूप से आयोजन एवं अनुवर्तन करते में उन्हें जिस तकनीकी-व्यावसायिक अभिविन्यास की आवश्यकता होती है वह उन्हें शाला निर्देशन केन्द्र से ही प्राप्त होना चाहिए। इसका यह तात्पर्य नहीं कि शाला का प्रशिक्षित उपबोधक उन्हें यह अभिविन्यास स्वत ही प्रत्यक्षरूपेण प्रदान करे। किन्तु इस प्रकार के अभिविन्यास कार्यक्रमों के आयोजन का उत्तरदायित्व उपबोधक का ही होना चाहिए।

एक दक्ष उपबोधक को छात्र के सर्वाङ्गीण समायोजन हेतु यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह छात्र के अभिभावक तथा उनकी घरेलू पृष्ठभूमि से सम्पर्क बनाए रखे। इस उत्तरदायित्व को निभाने में अनायास ही शाला के दर्शन, उद्देश्य, कार्यक्रम आदि की व्याख्या अभिभावकों तक प्रेषित करता रहता है। इस प्रक्रम से शाला अभिभावक के वाञ्छनीय सहयोग को सहज प्रेरणा प्राप्त होती है।

शाला के छात्रों को महत्वपूर्ण शैक्षिक-व्यावसायिक सूचनाएं प्रसारित कर सकने हेतु उपबोधक के लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह विविध सामुदायिक अभिकरणों से सतत सम्पर्क बनाए रखकर अपना ज्ञान भण्डार अद्यतन बनाए रहे। साथ ही छात्रों को कर्म जीवन अवसरों के सम्बन्ध में अधिक प्रत्यक्षरूपेण प्रबुद्ध करने हेतु कई बार या तो विविध क्षेत्रों से विशेषज्ञों को वार्ता हेतु आमंत्रित करना होता है अथवा छात्रों को प्रत्यक्ष निरीक्षण हेतु कार्यस्थलों पर ले जाना होता है। दोनों ही प्रकार की उक्त प्रविधियों में उपबोधक के लिए समुदाय से सतत सम्पर्क बनाए रखना अनिवार्य हो जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शाला कार्यक्रम का अन्तरंग भाग होने से निर्देशन सेवाओं का लाभ केवल छात्रों तक ही सीमित न रहकर शिक्षक, अभिभावक, समाज एवं समुदाय तक प्रसारित होता रहता है।

(२) शाला की नीति के अनुरूप

यदि उपरोक्त सिद्धान्त को मान्यता देकर हम निर्देशन सेवाओं को समूचे शालीय कार्यक्रम के एक अन्तरंग भाग के रूप में संगठित करते हैं तो द्वितीय निहित सिद्धान्त की व्याख्या हम यह कह कर सकते हैं कि एक वाञ्छित निर्देशन कार्यक्रम को शाला की नीति के अनुरूप ही आयोजित विकसित किया जाना चाहिए। यदि निर्देशन कार्यक्रम शालाचर्या का अविच्छिन्न भाग है तो तर्कसंगत ही है कि शाला की सामान्य रीति-नीति उस पर भी लागू होगी। इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त के प्रकार्यात्मक अभिप्रेत अर्थ निम्न प्रकार से प्रस्तुत किए जा सकते हैं —

(क) आस्था

किसी भी शैक्षिक प्रक्रिया के लिये शाला की स्वीकृत नीति के अन्तर्गत स्थान प्राप्त कर सकने हेतु सर्वप्रथम शाला अधिकारियों की उस प्रक्रिया में मौलिक आस्था होना अनिवार्य होता है। वस्तुत अधिकारियों के स्रोत से ही यह आस्था

उद्भूत होकर तब शाला कार्मिका तथा छात्रो तक विस्तृत हो पाती है। हम प्रारम्भ म ही कह चुके हैं कि किसी भी कार्यक्रम के सफल सचालन हेतु कार्यकर्ताओं की उसम आस्था होना एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता होती है। इस कथन का तात्पर्य यह कि आस्था होने पर ही कोई प्रक्रम शाला की निर्धारित नीति म समाहित किया जा सकता है और इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप स समाहित हो चुकने पर ही उसके लिये शाला की नीति म प्रयार्वात्मक प्रावधान किए जाते है।

(ख) न्यूनतम आर्थिक व्यवस्था

प्रयार्वात्मक प्रावधान का प्रथम महत्वपूर्ण बिंदु है आर्थिक व्यवस्था। सैद्धान्तिक रूप से कितनी भी मान्यता दत पर भी यदि किसी कार्यक्रम के लिये आर्थिक प्रावधान नहीं किया जाता तो उसके क्रियान्वयन की स्थिति आने की सम्भावना बहुत कम रहती है। किसी भी शालीय क्रिया के लिये आर्थिक व्यवस्था तभी हो सकती है जबकि वह शाला की स्वीकृत नीति के अनुरूप हो। सामान्यत यह पाया जाता है कि शाला की कार्यकारिणी के सदस्य—जो कि नगर के भिन भिन क्षेत्रो स भी आमन्त्रित किए जाते हैं—सभी शिक्षाविद् ही हो यह आवश्यक नही। कई बार उनम से कुछ व्यक्ति वित्त व्यवसाय एव उद्योग के क्षेत्रो म दक्षता प्राप्त किए होते हैं। शाला के वित्त शायको को निर्धारित करने म तथा इन शीर्षको के अन्तर्गत वित्त राशि वितरित करत समय वे सामान्यत शाला आवश्यकता की पूर्ववर्तिताएं निर्धारित कर लेना उपयुक्त समझते हैं। स्पष्ट है कि पूर्ववर्तिताओं के निर्धारण का एक प्रमुख निर्देश तत्व शाला की स्वीकृत नीति म पाया जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शाला का निर्देशन कार्यक्रम उसकी नीति के अनुसार ही हो।

(ग) उद्देश्य

निर्देशन कार्यक्रम का समाहारी उद्देश्य हमने छात्रो का उनके समुचित विकास तथा सर्वांगीण समायोजन म सहायता के रूप मे स्वीकार किया है। अब यह शाला की नीति के ऊपर अवलम्बित है कि वह विकास तथा समायोजन को किस रूप म देखती है। यो सामान्यत तो किसी भी गणतन्त्र म वयक्तिकता के कुछ लक्षण एव नागरिकता के कुछ गुण सवस्वीकृत से होते हैं। फिर भी प्रत्येक संस्था के अपने कुछ विशिष्ट नैतिक सामाजिक सांस्कृतिक-धार्मिक मूल्य होते हैं जिन्हें वह चेतन अचेतन रूप स अपने छात्रो तक प्रेषित करती है। यह सामान्य अनुभव की बात है कि किसी व्यक्ति की बोली-चाली आचार विचार चाल-ढाल आदि देख कर हम अनायास ही कह उठते हैं कि यह व्यक्ति उस संस्था का प्राडक्ट होगा। व्यक्ति पर संस्था विशेष की छाप सी लग जाती है। अर्थात् व्यक्ति के निर्माण म शाला के स्वीकृत मूल्यो का निर्देशन-हस्त काम करता है।

उक्त तथ्य के सन्दर्भ म स्पष्ट है कि शाला के निर्देशन-कार्यक्रम के विशिष्ट उद्देश्य शाला के इन स्वीकृत मूल्यो के प्रकाश मे ही निर्धारित किये जाने चाहिए।

(घ) सहयोग की सम्भावना

कई स्थानों पर हम य स्पष्ट कर चुके हैं कि शाला का निर्देशन कार्यक्रम एक सहयोगी प्रयत्न है जोकि उपबोधक के तकनीकी नेतृत्व तथा प्रशासक के समाचारी निदश म सचालित होने हुए शाला एव समुदाय के कई व्यक्तियों से सक्रिय सहयोग की अपेक्षा करता है। विद्यालय तथा समाज के इन विविध कार्मिकों म यह वाछनीय सहयोग प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन—सगठन शालीय नीति के अनुसार ही हो। इस बिन्दु पर हम तो यहां तक बल देना चाहेंगे कि विद्यालय क छात्र—जिनको प्रमुख ध्यान मान कर निर्देशन कार्यक्रम सचालित किया जाता है—भी इस कार्यक्रम मे अपना वाछनीय सहयोग तब तक न । दंगे जबतक कि वे इन सेवाओं को शाला के सम्पूर्ण कार्यक्रम के आवश्यक य के रूप म न देख सक तथा इसे शाला की नीति क अन्तर्गत न परख सकें।

(३) उपल ध साधन स्रोतों के आधार पर

सामान्यत तो उपरोक्त सिद्धान्त के अनुवर्तन म ही इस तथ्य पर तर्कसगत ध्यान दिया जा सकता है कि शाला की नीति के अनुसार आयोजित तथा विद्यालय के सगठन क अविच्छिन्न भाग क रूप म विकसित निर्देशन कार्यक्रम के निर्माण एव प्रशासन हेतु उपलब्ध साधनों का स्पष्टतम उपयोग वाछनीय होता है। इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि आवश्यकतानुसार सरलता स प्राप्त होन वाले बाह्य उपकरणों का बहिष्कार किया जावे। स्थानीय साधनों पर विशेष बल देने के हमारे कुछ विशिष्ट कारण हैं जिन्हे निम्न अनुच्छेदों म प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) अपनत्व

सर्वप्रथम तो कोई भी नवीन कार्यक्रम प्रारम्भ करने म प्रश्न उपस्थित होता है अपनत्व का। नव विकासमान निर्देशन कार्यक्रम म स्थानीय शाला के कार्मिक स्वय अपने आपको जितना अधिक अन्तर्ग्रस्त कर सकेंगे उतना ही व इस कार्यक्रम को अपना समझेंगे अपने निजी उत्तरदायित्व परास के अन्तर्गत परख सकेंगे तथा अपनी ही कृति समझ कर इस पर अभिमान कर सकेंगे। वस्तुत इस प्रकार की भावनाएं कार्मिकों म उत्पन्न हुए बिना निर्देशन कार्यक्रम शाला का अविच्छिन्न अंग बन भी नही सकता। यह एक अद्भुत वास्तविकता है कि बाहर से विशेषज्ञ कार्मिकों का आयात करके भी किसी कार्यक्रम के लिये वह आत्मीयता की भावना उत्पन्न नही हो सकती जो कि सामान्य स्थानीय कार्यकर्ताओं के कदाचित् कम तकनीकी किन्तु उत्साहपूर्ण प्रयासों द्वारा अनायास ही सृजित हो जाती है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति के किसी कार्य में अन्तर्ग्रस्त करने का सरल उपाय है उस उसके लिये उत्तरदायी बना देना।

(ख) उपकरणों के दृष्टिकोण से

यह तो हुई व्यक्तियों क रूप म साधन स्रोतों की बात। किन्तु व्यक्ति क

पश्चात् अथवा उसके साथ ही साथ प्रश्न उठता है कार्य करने के उपकरणों के रूप में साधन सुविधा की समस्या का। यह एक कटु वास्तविकता है कि कार्य करने के लिये तत्पर होने के उपरान्त यदि न्यूनतम उपकरणों की सुविधा प्राप्त न हो सके तो कार्यकर्त्ता को एक स्वाभाविक भग्नाशा होने की आशंका रहती है। उसे यह भास होने लगता है कि उसकी मूल्यवान ऊर्जा व शक्ति का उसके नियोजन द्वारा मानो अनुचित लाभ मात्र उठाया जा रहा है। तब वह प्रायः को सौंपे गए कर्त्तव्यों का केवल आज्ञा-पालन के रूप में ही सम्पन्न कर देता है और शाला निर्देशन कार्यक्रम में जो आत्मीयता का प्राण आना चाहिये वह नहीं आ पाता।

अब कई बार तो और विशेष कर भारतवर्ष में उपकरण साधन के साथ ही मिली जुली समस्या रहती है आर्थिक प्रावधानों की। और यह समस्या हमारे देश में एक सजीव जटिलता लिए हुए हमारी कई शैक्षिक प्रायोजनाओं को अवरुद्ध किए हुए है। प्रश्न यह उठता है कि आवश्यक साधन उपकरण आयात करने हेतु अर्थ-व्यवस्था न होने की स्थिति में क्या किया जावे। इस प्रकार की स्थिति में दो ही विकल्प हो सकते हैं। या तो साधन-हीनता की स्थिति के सम्मुख धराशायी होकर कोई नवीन प्रगतिगामी कार्यक्रम हाथ में लेने का विचार ही त्याग दिया जाय। दूसरा आशावादी दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि चालू परिस्थिति में जो कुछ भी सामान्य सुविधा उपकरण उपलब्ध हैं उनके बहुमुखी उपयोग तथा इष्टतम अनुकूलन के सम्बन्ध में अग्रदर्शी प्रयास किए जावें। किसी भी विकासोन्मुख देश के लिये द्वितीय विकल्प अधिक लाभकारी है। इस तथ्य की पुष्टि विकसित देशों के इतिहास से कई उदाहरण प्रस्तुत करके की जा सकती है। प्रस्तुत सन्दर्भ में सबसे अधिक सगत उद्धरण अमेरिका के निर्देशन-इतिहास का ही हो सकता है जहाँ पर न्यूनतम उपलब्ध साधनों से विश्वासपूर्वक उदभूत होकर आज वहाँ का निर्देशन कार्यक्रम उस स्थिति पर पहुँच चुका है जहाँ पर कदाचित् साधनों के अधिशेषों का समुचित उपयोग भी कहीं-कहीं पर विचारणीय प्रश्न बन जाता है।

इस स्थल पर हम पाठकों का ध्यान एक और सम्भावित मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। कई बार जब व्यक्ति कोई नवीन कार्य में अन्तरंग रूप से निहित क्षतिमेय को अपनाने में असमर्थ होता है तब इस दुर्बलता की स्थिति को स्पष्टरूपेण स्वीकार कर लेने की अपेक्षा साधनहीनता के सदृश कोई वास्तविक बहाने की ओट में पलायन कर जाना उसके लिए बहुत अधिक सरल हो जाता है। दुर्भाग्यवश इस प्रकार की कर्मण्यहीनता के कई उदाहरण हमारे देश के विविध क्षेत्रीय जीवन से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। उस असंगत विवेचन में न उलझ कर हम यहाँ पर तो इसी बात पर अधिकतम बल देना चाहेंगे कि भारतवर्ष जैसे विकासमान देश में उपलब्ध साधनों का इष्टतम उपयोग करने से ही हम प्रगति की राह पर अग्रसर हो सकते हैं। और फिर एक अत्यन्त आशापूर्ण

सच इस सम्बन्ध में यह है कि सामान्यतः तो जीवन के विविध क्षेत्रों में भारतवर्ष एक प्राकृतिक साधन सम्पन्न देश है। यहाँ पर अधिक महती समस्या प्रायः इन साधनों के श्रेष्ठतम उपयोग की हो रही है। इस श्रेष्ठतम उपयोग के लिये आवश्यक है साधन सम्पन्नता का गुण—जिसका विकास निर्देशन कार्यक्रम के प्रत्येक व्यक्ति के रूप में साथ साथ चलते रहना चाहिए।

(ग) तकनीकी दृष्टिकोण

उपलब्ध साधनों के उपयोग के सम्बन्ध में एक कारण हम शुद्ध तकनीकी दृष्टिकोण से भी प्रस्तुत करना चाहेंगे। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि बाहर से आयात किया गया अत्यन्त उच्चकोटि का तकनीकी उपकरण भी कई बार स्थानीय परिस्थितियों में अमानवीकृत होने के कारण उन परिस्थितियों में न तो अनुकूल हो पाता है न प्रभावोत्पादक ही। भारतवर्ष में मनोवैज्ञानिक परीक्षण का इतिहास इस तथ्य को सिद्ध करता है कि ये परीक्षण प्रारम्भ करने के समय हमने कई विदेशी उपकरणों का शुद्ध आयात मात्र करके इस प्रकार की बहुत त्रुटियाँ की। बाह्य उपकरणों का शुद्ध आयात मात्र न करके यदि उनका स्थानीय जनता के आधार पर अनुकूलन कर लिया जाये तब तो वे उपकरण वैज्ञानिक कार्य में लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। अन्यथा अपने मूलस्वरूप में उपयोग किए जाने पर तो इनसे लाभ प्राप्त करने के स्थान पर उनसे हानि ही होने की अधिक आशंका रहती है। उपकरणों का अनुकूलन करने में भी पुनः स्थानीय साधन सुविधा एवं स्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है—और इसीलिये हमने उपलब्ध साधनों के उपयोग को हमारे सम्मत सिद्धान्तों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

(८) कार्मिकों की तत्परता स्तर

हमारे पूर्व विवेचना में कई स्थलों पर शाला कार्मिकों के सहयोग की महत्ता पर बल दिया गया है। सहयोग तथा तत्परता का अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है। वस्तुतः यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सकारात्मक सहयोग एक बहुत बड़ी सीमा तक तो व्यक्ति की मानसिक तत्परता पर निर्भर रहता है।

(क) मानसिक तत्परता

इस मानसिक तत्परता को प्रभावित करने वाले कई घटक हो सकते हैं। प्रशासकीय दृष्टिकोण से तो सबसे सीधा सम्बन्ध इस स्थिति का होता है न्याय-नेतृत्व के सामान्य उपागम से। कार्य अधिकारी की मनोवृत्ति का कार्मिक की कार्य तत्परता पर अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। केवल वेतन के बल पर आदेश पालन करवाने की प्रवृत्ति रखने वाला प्रशासक अपने सहकर्मियों को सही मानें में कर्त्तव्य पर कर सकने में बहुत अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। एक कुशल प्रशासक तो सामान्यतः यह भावना प्रसारित करने की क्षमता रखता है कि उसके कर्मचारी ही उसकी समस्त कार्य योजनाएं बना रहे हैं और इसलिये उन्हें पारित करने में भी

सहों की व्यक्तिगत रुचि है। इस प्रकार की भावना से कार्मिक कार्य सफलता का अपना उपलब्धि मान कर सन्तोष ग्रहण कर सकते हैं—और अनायास ही स्व कार्य-तत्पर रहते हैं।

उपबोधक के तकनीकी नेतृत्व के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। शाला के अपेक्षाकृत कम प्रशिक्षित कार्मिकों को कार्य तत्पर कर सकने के लिए यदि वह अपनी तकनीकी क्षमता का गर्वपूर्ण बल प्रयोग में लेता है तो उसे न केवल अपने इस तात्कालिक उद्देश्य में असफलता मिलेगी अपितु अपने अंतिम लक्ष्य-निर्देशन कार्यक्रम के दत्तचित्त सञ्चालन-में भी उसे केवल असहयोग का ही सामना करना पड़ेगा। अतएव सर्वप्रथम तो कार्य अधिकारियों को सनी नेतृत्व उपागम द्वारा कार्मिकों में कार्यतत्परता उत्पन्न करनी चाहिए।

(ख) बौद्धिक तकनीकी तत्परता

मानसिक तत्परता के पश्चात् प्रश्न उठता है बौद्धिक-तकनीकी तत्परता का जो कुछ अधिक वैज्ञानिक होते हुए अधिक व्यावहारिक भी है। अपने नेतृत्व उपागमों से कार्मिकों को कार्य के लिए प्रोत्साहित एवं तत्पर करने के उपरान्त भी जो अत्यन्त व्यावहारिक समस्या उपस्थित होती है वह है वास्तविक कार्य कौशल्य की। मानसिक रूप से पूर्णत कार्य-तत्पर हो चुकने पर भी यदि कार्मिक में कोई वैज्ञानिक कुशलता नहीं है तो असफलता जन्य स्वभाविक भग्नाशाएं उसकी कार्यतत्परता को विपरीत ढंग में प्रभावित कर सकती है। इसके लिए अत्यन्त आवश्यक है कि शाला-कार्मिकों को किसी नवीन कार्यक्रम में अग्रग्रस्त करने के पूर्व उन्हें उपयुक्त रूप से वैज्ञानिक अभिविन्यास प्रदान किया जाय। इसके सम्बन्ध में अध्याय के अंतिम अंश में कुछ व्यावहारिक सुझाव दिए जावेंगे।

(४) उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या

यह तो किसी कार्यक्रम के सम्बन्ध में सामान्यत स्वीकृत सत्य है कि उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या किए बिना कार्मिकों के समय शक्ति धन व ऊर्जा के निरुद्देश्य नष्ट होने की आशंका बनी रहती है। विशेष कर जब कोई अपेक्षाकृत नूतन प्रायोजना हाथ में ली जाती है तब तो उसके उद्देश्यों के सम्बन्ध में पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाने की आवश्यकता सर्वोपरि रहती है। यह स्पष्टता केवल अधिकारियों तक ही सीमित न रहकर प्रत्येक कार्मिक तक प्रसारित होनी चाहिए।

उद्देश्यों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है—

आदर्श—व्यावहारिक

अन्तिम—तात्कालिक

दोनों ही वर्गीकरणों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से अधिक स्पष्टता प्राप्त की जा सकती है।

(क) आदर्श-व्यावहारिक

यों तो सभी उद्देश्य एक प्रकार से एक आदर्श के रूप में ही परिभाषित होकर

कार्य-योजना एवं वास्तविक क्रियाओं की निरन्तर प्रकाश प्रदान करते हैं किन्तु यहाँ पर स वर्गीकरण से हमारा तात्पर्य प्रकार्यात्मकता के सदर्भ में है। एक आदर्श दृष्टिकोण से तो कोई बात अत्यन्त वाछनीय हो सकती है किन्तु कई बार उन्हें सैद्धान्तिक स्वीकृति प्रदान करते हुए भी वास्तविक परिस्थितियों की सामिनताए उनके क्रियान्वयन को अवरुद्ध कर सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में वास्तविकता को ध्यान में रखकर कुछ व्यावहारिक उद्देश्यों की व्यवस्था बनानी पड़ती है। वस्तुत उपर्युक्त कार्य-योजना की दृष्टि में तो यह अत्यन्त वाछनीय होगा कि आदर्श की ही महत्ता को ध्यान में न रखकर व्यावहारिकता के मार्ग को भी आवश्यक रूप से अपनाया जाये। कई बार बहुत अच्छे लगने वाले आदर्श उद्देश्य अव्यावहारिक होने के कारण या तो सुन्दर नारों के रूप में ही प्रारम्भ होकर भी प्रतिष्ठित बने रहते हैं अथवा अपनी अनुपयोगिता के कारण कार्मिकों के मनों को निष्फल करके उन्हें निराशा से पीड़ित करते रहते हैं।

विशेष कर निर्देशन कार्यक्रम तो प्रकृति से ही केवल सैद्धान्तिक नीति मात्र न होकर एक प्रकार्यात्मक वास्तविकता है। जैसा कि पुस्तक के प्रारम्भ में ही हम कह चुके हैं शिक्षा के क्षितिज पर इस नूतन तत्त्व का उदय ही इसलिए हुआ कि कई शैक्षिक मान्यताओं का सफल क्रियान्वयन किया जा सके। अतएव यह आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है कि किसी भी शाला के प्रस्तावित निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य एक स्वीकृत आदर्श की पृष्ठभूमि में विचार करके भी स्थानीय परिस्थितियों की व्यावहारिकता को सदैव ध्यान में रखे।

(ग) अंतिम तात्कालिक

आदर्श तथा अन्तिम एक बहुत बड़ी सीमा तक अन्तःसम्बन्धित तथ्य हैं। किसी भी प्रस्तावित कार्यक्रम के अन्तिम उद्देश्य एक आदर्श ध्रुव तारे के सदृश सुदूर से भी सतत प्रकाश की रश्मियाँ प्रसारित करते रहते हैं। इन रश्मियों के निर्देशन आलोक में व्यक्ति शनैः शनैः किन्तु विश्वासपूर्वक अपने चरण एक वाछनीय आदर्श की दिशा में अग्रसर करता रहता है। किन्तु इस दिशा के मार्ग में कई कठिनाइयाँ-नीचाइयाँ रहती हैं और धैर्यपूर्वक उन्हें पार करने पर ही व्यक्ति अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर जा सकता है। इस यात्रा को अधिक सरल एवं स्वीकार्य बनाने के लिए यह अत्यन्त वाछनीय होगा कि इस लम्बी राह पर कुछ उपयोगी विश्राम-स्थल निर्धारित कर लिए जाय। कतिपय तात्कालिक ध्येयों के रूप में इस प्रकार के विश्राम स्थल निश्चित किए जा सकते हैं। केवल यही आवश्यकता रहती है कि ये तात्कालिक ध्येय उस अन्तिम आदर्श के आधार में ही आयोजित होना चाहिए।

अंतिम के साथ साथ ही कुछ तात्कालिक ध्येय भी निर्धारित करने का एक और महत्त्वपूर्ण कारण इस बात के मनोवैज्ञानिक पक्ष से सम्बन्धित है। सामान्यत प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में उपलब्धि की समृद्धि प्राप्त करना चाहता है किसी

नवीन आयोजना में तो इस प्रकार की प्रारम्भिक सन्तुष्टियाँ अत्यन्त आवश्यक हैं। वस्तुतः ये सन्तुष्टियाँ ही व्यक्ति को किसी नवीन मार्ग पर अग्रसर हो सकने हेतु सकारात्मक प्रेरणा का कार्य करती है। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि अंतिम आदर्शों की पृष्ठभूमि में कतिपय तात्कालिक ध्येयों की व्याख्या कर दी जावे जिनकी उपलब्धि नन्हें-नन्हें सफल सोपानों के रूप में कार्मिकों को सतत प्रेरणा प्रदान कर सके।

कई बार कुछ तात्कालिक ध्येयों के निर्धारण के पीछे आर्थिक कारण भी रहते हैं। किसी भी नवीन कार्यक्रम की उसकी सम्पूर्णता में ही वांछनीयता स्वीकार करते हुए भी अर्थाभाव की वास्तविक सीमितता के कारण कार्यक्रम के सभी पक्षों का सहगामी आयोजन सम्भव नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में कार्यक्रम को बिल्कुल ही त्याग देने की अपेक्षा अधिक वांछनीय यह होगा कि उसका उपयुक्त प्रवस्थाकरण कर लिया जाय। प्रारम्भ में उसके न्यूनतम महत्त्वपूर्ण पक्षों से प्रारम्भ करके साधन सुविधाओं व उपलब्धि के अनुकूल शनैः शनैः उसका अन्य आयामों में विस्तार किया जा सकता है।

भारतवर्ष में निर्देशन—कार्यक्रम को प्रारम्भ करने के लिये तो इस प्रकार के प्रवस्थाकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाशात्मक सुझाव तथा व्यावहारिक उदाहरण पुस्तक के अंतिम अध्याय में दिए गए हैं।

(६) स्पष्ट योजना

स्पष्ट उद्देश्यों के तत्काल अनुवर्तन में आती है स्पष्ट योजना। कहने का तात्पर्य यह कि सामान्यतः कार्य-योजना का स्वरूप निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप ही आयोजित होता है। यदि उद्देश्यों में कुछ भी सम्भ्रान्ति हुई तो कार्य-योजना के स्वरूप को बनाने तथा उसे संचालित करने—दोनों में ही कार्यकर्ताओं के भटक जाने की आशंका रहती है। किन्तु निश्चित उद्देश्यों द्वारा निर्देशित योजना का स्वरूप तथा उसके कार्य चरण भी उन्हीं के अनुरूप सुस्पष्ट होते हैं।

यहाँ पर स्पष्ट योजना का एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुतिकरण एक और दृष्टिकोण से किया जा रहा है। किसी भी योजना के सुचारु क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि उस योजना के अन्तर्गत कार्य करने वाले कार्मिकों के विशिष्ट उत्तरदायित्व, उनकी विशिष्ट भूमिकाएँ तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अत्यन्त ही निश्चित शब्दों में स्पष्टीकरण कर दिया जाय। इस स्पष्टता के अभाव में कई बार शुभाशयी होते हुए भी कार्मिक अपना कार्य प्रभावशाली ढंग से नहीं कर सकते। उनके मन में अपने स्वयं में सम्भ्रान्ति हो सकती है दूसरे के कार्य क्षेत्र में अतिक्रमण कर बैठने की अनजाने आशंका हो सकती है अथवा आदेश लेने या देने के सम्बन्ध में प्रशासनीय संकोच हो सकता है। ये सभी तत्त्व सफल कार्य संचालन में अवरोधक ही सिद्ध होते हैं।

चूँकि इस सिद्धान्त को हम निर्देशन कार्यक्रम के संगठन एवं प्रकार्यात्मक संचालन का एक प्रमुख आधारशिला मानते हैं इसलिये अध्याय के एक स्वतन्त्र

खण्ड म ही इसका विश्, विवेचन करना उपयुक्त समझा गया।

कार्मिको की भूमिकाए एव अ तसम्ब ध

यो तो नि शन-सवाग्रो व कायक्रम का आयोजन सगठन सचालन प्रशासन एव मूल्यांकन शाखा के समस्त कार्मिको का एक स ्योगी प्रयास होता है। यह सत्य है कि इस प्रक्रम का कतिपय प्रविधिक गुण एव तकनीकी प्रक्रियाग्रो का विशिष्ट उत्तरदायित्व उपबोधक तथा प्रशासक क ऊपर पड सकता है। किन्तु वास्त विकता के बावजद भी नि शन कायक्रम की सफलता के लिय यह अनिवाय है कि समस्त शालाय तथा कई शालत्तर कमचारियो की भी इसम यथायोग्य साझेदारी हो। सामायत प्रशासक तथा उपबोधक का उत्तरदायित्व तो मुख्यत कायक्रम क प्रशासकीय अथवा तकनीकि पक्षा स ही सकता है। किन्तु इन केन्द्रीय पक्षो क अति रिक्त भी कायक्रम का कई अन्तरग प्रक्रियाए होती हैं। जिन्ह सम्पन्न करन म विविध भाति के कार्मिको का सहयोग अपेक्षित होता है यह कहा जाय तो अति शयोक्ति नही होगी कि समग्र कायक्रम की प्रभाविता एकक यक्ति के स्वतन्त्र निष्पादन स सम्बधित होती है।

इसके अतिरिक्त एक और अन्तरग पक्ष है निदेशन प्रक्रियाओ का जोकि समस्त कार्मिको के समुचित सहयोग की अनिवायता को वर्णित हा करता है। स्वतन्त्र रूप से विभिन्न प्रकार की प्रकृति को लि हुए भी विविध निदेशन प्रक्रियाए एक दूसरे स इतनी घनिष्ठता स सम्बधित रहती है कि एक प्रक्रिया की दुबलता का अन्य प्रक्रियाओ के स्वरूप पर त मय प्रभाव पडे बिना रह नही सकता। इस तथ्य की समता मानवीय शरीर रचना की समग्रता स की जा सकती है जहाँ पर विविध अन्तरग्रन्थी अवयव भिन्न भिन्न प्रक्रियाए करते हुए भी एक दूसरे क कार्यो को अनिवाय रूप स प्रभावित करते रहते है। मानव का स्वस्थ एव प्रभावशाली बनाया जा सकता क लिए आवश्यक है कि उसका प्रत्यक अग हृष्टपुष्ट हो तथा उसका विशिष्ट कार्यक्षमता से सम्पन्न हो। तभी वह व्यक्तिगत रूप क्रियाविधिया क साथ ही अन्य अगो के काय को भी परिपुष्ट करत हुए समस्त शरीर क सचालन को एक स्वस्थ परिपूर्णता प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार के आन्तरिक समन्वय को सम्भव कर सकने के लिये आवश्यक है कि पहले तो प्रत्येक अग के स्वतन्त्र काय को अच्छी तरह समझ लिया जाय ताकि उसम व्यक्तिगत रूप स कोई कमी न रहने पावे। तत्पश्चात् विविध अगो क अन्त सम्बन्धो का भी अध्ययन कर लिया जावे जिससे उनके पारस्परिक आदान प्रदान का भी इष्टतम स्वरूप निर्धारित किया जा सके। अध्याय के इस अश म इसी उद्देश्य को लेकर निदेशन कायक्रम क विविध कार्मिको की विशिष्ट भूमिकाओ का स्वतन्त्र विवेचन तथा अन्तसम्बन्धी स्वरूप दोनो ही का विश्, रूप म प्रस्तुतिकरण किया जा रहा है। प्रत्येक कार्मिक की भूमिका के स्वतन्त्र वणन म ही अन्य कार्मिको के साथ उसके अन्तसम्बन्धो का भी स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जावेगा।

(१) प्रधानाध्यापक

शाला के समस्त कार्यकलापों में प्रधानाध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका को एक ही कुंजी-पद में सारांशित किया जा सकता है— और वह पद है प्रत्यक्ष नेतृत्व। चूंकि भारतवर्ष की माध्यमिक शालाओं में तो एक अन्तरंग भाग के रूप में निर्देशन कार्यक्रमों की आयोजना एक अपेक्षाकृत नूतन विचार है इसलिये इस क्षेत्र में प्रधानाध्यापक के नेतृत्व को प्रत्यक्ष के साथ साथ अत्यन्त सबल भी होने की आवश्यकता है। एक लम्बे समय से चली आती हुई स्कूल-प्रैक्टिस से तो शाला कार्मिक इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वह प्रक्रिया एक स्वाभाविक ढंग से शाला के समचे कार्य-ढांचे में गुंथी हुई अनायास ही चलता जाती है। इस प्रचालन ढांचे के परिचित क्षेत्र में किसी नूतन तत्व का प्रविष्ट करने का अर्थ होता है-समूचे ढांचे के स्वरूप एवं उसकी गतिविधि में परिवर्तन। चूंकि इस प्रकार के परिवर्तन से कई स्थलों पर कई व्यक्ति कई प्रकार से प्रभावित होते हैं—इसलिये इस सम्बन्ध में कोई भी प्रतिक्रियावादी चरण उठाना साहस की अपेक्षा करता है और इसीलिये हमने कहा है कि प्रधानाध्यापक के नेतृत्व को प्रत्यक्ष के साथ साथ इस सन्दर्भ में सबल भी होना अपेक्षित है।

नूतन कार्यक्रम का अर्थ होता है अधिक काय। और यह भी सामान्यतः हमारी प्रचलित परिस्थितियों में सत्य है कि अपेक्षित परिवर्धित कार्य की तुलना में कार्मिकों को समानुपाती आर्थिकोन्नति प्रदान करना प्रधानाध्यापक के लिए सम्भव नहीं है। इस प्रकार की परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके कुछ विशिष्ट उत्तरदायित्वों का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अधिक स्पष्ट विवेचन किया जा सकता है।

(क) स्पष्ट स्वीकृति किसी भी शालीय सेवा के प्रारम्भ संचालन अथवा समाप्ति के लिए भी शाला प्रशासक की स्पष्ट स्वीकृति एक प्राथमिक अनिवार्यता होती है। वित्तीय प्रावधान भौतिक व्यवस्था तथा कार्यकारी प्रबन्ध हेतु तो यह स्वीकृति निश्चित रूप से कई प्रशासकीय कागजातों में प्रतिबिम्बित होती ही है। किन्तु यहां पर हमारा तात्पर्य विशिष्ट रूप से प्रशासक की मानसिक-संवेगात्मक स्वीकृति से है। यों तो उच्चाधिकारियों से आए हुए कई अन्य कार्यक्रमों से असहमत होते हुए भी उसे उन्हें न केवल व्यावहारिक रूप से स्पष्ट स्वीकृति देनी पड़ती है अपितु उनकी सफलतम व्यवस्था में न चाहते हुए भी कई सक्रिय कदम उठाने पड़ते हैं। यहां पर उसकी स्थिति होती है आदेश के पालनकर्ता की न कि आदेश के आलोचक की। इस प्रकार की स्थिति में इन कार्यक्रमों को पूर्ण सफलता से सम्पन्न कर सकने पर भी वह इनमें अपनत्व का प्रायः नहीं फूंक सकता। जहां शाला निर्देशन कार्यक्रम का प्रश्न है वहाँ हम उसे एक बहुत बड़ी सीमा तक शाला शासक के निजी पहल के सृजन के रूप में देखना चाहेंगे। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि उच्चाधिकारियों का इसमें कोई सम्बन्ध न रहे। वस्तुतः हम तो यह चाहेंगे कि वे भी इसमें सक्रिय रूप से अन्तग्रस्त किए जा सकें। यह किस प्रकार हो सकता है इसका

विवेचन हम स्वतन्त्र शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे। यहाँ पर तो इतना ही कहना संगत होगा कि निर्देशन कार्यक्रम के लिए शाला प्रशासक की स्पष्ट स्वीकृति उच्चाधिकारियों के आदेशों द्वारा अन्तर्प्रेरित न होकर उसके निजी प्रेरणा से प्रसून होनी वाञ्छनीय है। तभी उसमें वह आत्मीयता का पुट आ सकेगा जो कि किसी शालीय कार्यक्रम में जीवन-स्पन्दन उत्पन्न कर सकता है। मानसिक बौद्धिक रूप से इसे स्वीकार करने पर उसकी मनोवृत्ति निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी उसकी विविध व्यवस्थाओं में झलकती रहेगी। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह होगी कि वह व्यक्तिगत रुचि रखता हुआ इसके सम्बन्धित सभी क्रियाकलापों में अधिकाधिक रूप से उपस्थित रहने का प्रयास करेगा।

(ख) कार्मिकों की अनुकूल अभिवृत्तियाँ प्रधानाध्यापक की ऐसी स्पष्ट मानसिक स्वीकृति तथा उससे उद्भूत निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी उसके अनुकूल व्यवहार का शाला-कार्मिकों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा। यह तो एक अनुभूत वास्तविकता है कि शाला कार्यक्रमों की पूर्ववर्तिताएँ शाला प्रशासक की निजी रुचियों पर एक बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर रहती हैं। शाला का प्रधान जिस कार्यकलाप को महत्त्वपूर्ण समझता है उसमें शाला कार्मिक भी अनायास ही रुचि लेने लगते हैं और यह भी एक सिद्ध सत्य है कि कार्मिकों की रुचि के बिना कोई भी कार्यक्रम सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

इस सम्बन्ध में जो बात हमने शाला प्रधानाध्यापक तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारियों के विषय में कही थी उसे हम पुनः शाला-कार्मिक तथा शाला प्रधान के सन्दर्भ में दोहरा सकते हैं। हमने कहा था कि केवल एक उच्चादेश के पालन मात्र के रूप में यदि प्रधानाध्यापक किसी शालीय कार्यक्रम को सम्पन्न करता है तो उसमें वह अपनत्व का प्राण नहीं फूँक सकता इसी सामान्य अनुमान को अगले स्तर पर चरितार्थ करते हुए हम कह सकते हैं कि यदि शाला-कार्मिक अपने निर्देशन विषयक उत्तरदायित्वों को केवल शाला प्रधान के आदेश-पालन के रूप में ही पालित करते हैं तो वे इस कार्यक्रम को आत्मीयता से नहीं सजो सकेंगे। इस कार्यक्रम की प्रकार्यात्मक सफलता के लिए तो आवश्यक है कि शाला का प्रत्येक कार्मिक इस इतनी आत्मीयता से देखे-परखे कि वह इसमें अनायास ही अनुरक्त हो सके। शाला के प्रधानाध्यापक का यह प्रधान उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह इस प्रकार की अनुकूल मनोवृत्तियों का अपने सहकर्मियों में सृजन कर सके।

इस प्रकार की मनोवृत्तियों से प्रशासक शिक्षक सम्बन्धों में भी एक आनन्ददायी समरसता उत्पन्न हो जाती है। प्रशासन सम्बन्धी साहित्य में एक शाला प्रशासक की तुलना प्रायः चाक की धुरी से की जाती है तथा इसके सहकर्मियों की समता धुरी से संयुक्त वर्तुल शलाकाओं से। स्पष्ट है कि इन शलाकाओं की गति [illegible] गति विधियों द्वारा पूर्णरूपेण अनुबन्धित होती है। शाला प्रशासक की मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं अभिवृत्तियाँ ही मूलतः शाला-कर्मचारियों के कार्य-व्यापारों तथा क्रिया पूर्ववर्तिताओं को निर्धारित

करती है और यह एक तर्कसंगत तथ्य है कि किसी भी कार्यक्रम की सफलता में कार्यकर्ताओं की मनोवृत्तियों का एक बहुत बड़ा अंश रहता है। तो हम यह सकते हैं कि इस अंश का अप्रत्यक्ष मार्गान्तर शाला प्रधानाध्यापक ही होता है तथा उसे यह भूमिका कुशलतापूर्वक निभा सकनी चाहिए।

(ग) प्रशासकीय प्रावधान उक्त अनुच्छेद में विवेचित प्रशासक की मानसिक मनोवृत्तियों की एक प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है शाला कार्यक्रम हेतु प्रस्तुत किए गए प्रकार्यात्मक प्रावधानों में। चूंकि व्यावहारिक क्रिया वयन की दृष्टि से यह प्रावधान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है इसलिए निम्न स्पष्ट शीर्षकों के अन्तर्गत उनका स्पष्टीकरण एवं अग्रिम व्याख्या का प्रस्तुतिकरण किया जाएगा।

(अ) वित्तीय प्रावधान

माध्यमिक शाला के बजट की मोटी रूपरेखा का निर्धारण तो प्राय उच्च स्तरीय शिक्षा विभागों से ही होता है किन्तु उस बजट में शालोपयोगी नूतन एवं प्रगतिगामी प्रस्तावों को समाहित करने का उत्तरदायित्व शाला प्रधान का ही होता है। इसलिए सर्वप्रथम तो प्रधानाध्यापक को शासकीय निदेशन सेवाओं के नवीन संक्षिप्त कार्यक्रम हेतु एक न्यूनतम धनराशि अनुशंसित करवा लेनी चाहिए। यह सक्रिय भूमिका केवल शाला प्रशासक ही अदा कर सकता है।

इस प्रारम्भिक अनुशासित के पश्चात् निदेशन सेवाओं की प्रारम्भिक स्थापना एवं स्तरित संचालन में वर्ष-वर्ष छोटे मोटे खर्चों हेतु प्रधानाध्यापक की अनुशंसित अपेक्षित होती है। कई बार कुछ सामान्य से प्रोत्साहन प्रदान करके विविध स्तरीय कार्मिकों को इस नूतन कार्यक्रम में अन्तःप्रेरक करना पड़ता है। कभी निदेशन सम्बन्धी सभाओं को आकर्षक बनाने हेतु कुछ साज सज्जा की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार के विविध कार्य-कलापों के लिए छोटी मोटी धनराशि की आवश्यकता पड़ती रहती है। तथा ऐसे अवसरों पर उसका प्रावधान कर सकना एक कुशल प्रशासक की सूझबूझ पर एक बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर रहता है।

(आ) कर्तव्यों का वितरण

निदेशन-कार्यक्रम के स्वरूप का विवेचन करते समय हो इस तथ्य पर बल दिया जा चुका है कि वह एक सहयोगी प्रक्रम है। किन्तु प्रकार्यात्मक रूप से इस सहयोग को निष्कण्टक बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि विविधस्तरीय कार्मिकों की विभिन्न प्रवृत्तीय भूमिकाओं में अनावश्यक द्वन्द्व उत्पन्न न होने पाए। ऐसी सुरक्षा सुनिश्चित सम्भव करने की पूर्वावश्यकता है विभिन्न कार्यकर्ताओं के दत्त कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में मणिम प्राञ्जलता।

सामान्यतः एक प्रशासक के कौशल्य की प्रारम्भिक पहिचान इस तथ्य से होती है कि उसके द्वारा दी गई कर्तव्य दत्तता में कितना औचित्य, संगति एवं प्राञ्जलता है। इस भूमिका को दक्षतापूर्वक निभाने हेतु जहाँ उसे एक ओर शाला की आवश्य-

कलाओं का एक मनोवैज्ञानिक मानचित्र सतत सम्मुख रखना पड़ता है वहाँ दूसरी ओर अपने विद्यालय के प्रत्येक कार्मिक की एकक रुचि, अभिक्षमता, योग्यता आदि का समुचित अवबोध प्राप्त करना होता है। तभी वह क्रिया की प्रकृति तथा कार्यकर्ता के स्वभाव के मध्य समुचित संगति स्थापित करके अधिकतम कार्य-उत्पादन करवा सकेगा।

क्रिया-स्वरूप तथा कार्मिक स्वभाव की संगतता के अतिरिक्त एक और समस्या का प्रशासक को कार्य वितरण के समय ध्यान रखना पड़ता है और वह है किसी प्रक्रिया के उत्तरदायित्व से संयुक्त कार्यकर्ताओं की प्रकृति में समरसता। उदाहरणार्थ यदि पर्यावरणीय सूचना सेवा के आयोजन का उत्तरदायित्व कुछ अध्यापकों को एक साथ दिया जा रहा है तो प्रशासक को पहले आश्वस्त हो जाना चाहिए कि इन व्यक्तियों में एक टीम का सामरस्य है। विरोधी स्वभाव वाले अथवा पारस्परिक पूर्वाग्रहों वाले कार्यकर्ताओं के एक साथ किसी कार्य का उत्तरदायित्व दल में उस कार्य की गति अवरुद्ध हो जाने की ही आशंका अधिक रहती है।

एक समूह में विशिष्ट कार्य हेतु कार्यकर्ताओं के स्वभाव की समरसता से मिलता जुलता एक और नाजुक प्रश्न है और वह है उनकी वरिष्ठता एवं योग्यता-स्तरों का। सामूहिक रूप में किसी कार्य का उत्तरदायित्व व्यक्तियों को देते समय उस समूह के संयोजक को निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। इस संयोजक को पुनः एक प्रशासक की भूमिका निभाते हुए अपने समूह का कार्य आयोजन करना पड़ता है क्योंकि उत्तरदायित्वों का वितरण करना होता है तथा समय-समय पर कार्य सम्बन्धी विविध नियम भी निर्देश के रूप में प्रसारित करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि कोई वरिष्ठ अथवा सुयोग्य व्यक्ति अपने से निम्न स्तरीय व्यक्ति से किसी प्रकार का निर्देश आदेश ग्रहण करना पसन्द नहीं करेगा और यदि दुर्भाग्यवश इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न कर दी गई तो कार्यकर्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों में मनमुटाव आ जाने की आशंका रहती है जो कि समूचे कार्य के स्तर को विपरीत रूप में प्रभावित कर सकता है।

(इ) भौतिक कार्य-व्यवस्था

चूँकि निर्देशन सेवाओं का संचालन एक शुद्धरूपेण प्रकार्यात्मक कार्यक्रम है इसलिए उसके प्रशासन हेतु कतिपय न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं का होना स्वाभाविक है। उपबोधन कार्य के लिए एक स्वतन्त्र एवं एकान्त कक्ष, वैयक्तिक अनुसूचियों के व्यवस्थित अनुरक्षण हेतु स्थान एवं साधन, पर्यावरणीय सूचनाओं के प्रदर्शन प्रसारण हेतु बुलेटिन बोर्ड्स आदि उक्त आवश्यकताओं के कुछ सामान्य उदाहरण हैं। इन आवश्यकताओं की संवेदना तथा इनकी सहज भाव से पूर्ति एक प्रशासक की ही भूमिका के अन्तर्गत आती है। निर्देशन के कार्यक्रम में सामान्यतः इनके ही दत्त विश्लेषण एवं सूचना प्रेषण की आवश्यकता पड़ती रहती है। इस प्रकार के नैमी कार्यों के लिए तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कार्मिकों की सहायता भी अपेक्षित होती

है। स्पष्ट है कि यह सहायता बिना प्रशासक के स्पष्ट आदेश के प्राप्त नहीं हो सकती।

(३) समय सारणी में प्रावधान

हमने बारम्बार इस मौलिक तथ्य पर बल दिया है कि निर्देशन सेवाएं समस्त शाला कार्यक्रम की एक सुन्दर भालर मात्र न होकर उसके प्रत्येक ताने बाने में गुथी हुई अन्तरंग नियामक होना चाहिए। इस तथ्य के सफल क्रियान्वयन की व्यावहारिक पूर्वावश्यकता यह होगी कि शाला की निर्धारित समय सारणी में इसके लिए नियमित प्रावधान हो। यहाँ एक सामान्य मनोवृत्तियों का प्रश्न होता है कि समय विभाग चक्र में जिस क्रिया का निश्चित समयानुसार उल्लेख नहीं किया जाता वह कार्यकर्ताओं द्वारा एक उपेक्षित भार स्वरूप ही समझा जाती है —और इस प्रकार की मनोवृत्ति लेकर एक अनावश्यक एवं अतिरिक्त कार्यभार के रूप में ही सम्पन्न होकर अपनी प्रभाविता घटाती जाती है।

भारतीय माध्यमिक शालाओं की वर्तमान निर्देशन-व्यवस्था में कहीं-कहीं पर शिक्षक उपबोधक — टीचर काउन्सलर—अथवा करियर मास्टर्स की नियुक्ति होने लगी है। किन्तु यदि समय सारणी में उन्हें नियमित रूप से अपने कर्त्तव्यों के लिए प्रावधान नहीं मिलता तो प्रशिक्षित होने पर भी वे निर्देशन के लिए अपनी निष्ठा एवं उत्साह को शनैः शनैः खोते जाते हैं। अधिक शोचनीय स्थिति तो वह हो जाती है जब इन करियर मास्टर अथवा शिक्षक उपबोधक जैसे तकनीकी उपाधि धारण करने वाले व्यक्ति न तो पूर्णतया सामान्य शिक्षक के सहज कर्त्तव्य सम्पन्न करते, किन्तु न ही किसी तकनीकी कार्मिक के विशेषाधिकारों का लाभ उठा पाते हैं। शाला-कार्यक्रम में उनकी स्थिति एक त्रिशंकु के समान हो जाती है। और यह स्थिति अधिक दुखदायी तब हो उठती है जब सतत उपबोधक अवस्था के समान वे शाला के समूचे ढाँचे में किसी भी रिक्त किसी भी समय किसी भी सामयिक रिक्त स्थान पर भरपाई फिट कर दिए जाते हैं। दोपहर के विश्राम के अनन्तर छात्र उपस्थिति लेना, खेल अध्यापक की अनुपस्थिति में शारीरिक प्रशिक्षण अथवा कार्यालय सचिव की बीमारी में उसके कुछ उत्तरदायित्व—जैसे विभिन्न कृतिक पूर्ण करने के लिए ये विशेषज्ञ चलती गाड़ी के कुछ छूटे हुए पैंचों के समान उस गाड़ी को धक्का देने के साधन बन अपना वैयक्तिक अभिमान भी खोते जाते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम के लिए यह स्थिति अत्यन्त ही अवरोधजनक है। इसलिए प्रशासक को चाहिए कि शाला के नियमित समय चक्र विभाग में निर्देशन प्रक्रिया दिन में उसका निश्चित समय तथा उस क्रिया का उत्तरदायी व्यक्ति सबका उल्लेख स्पष्टता से करवा दे।

(उ) निर्देशन समिति का अध्यक्ष

शाला में एक नूतन निर्देशन कार्यक्रम को प्रारम्भ करने तथा उसके सतत संचालन हेतु यदि एक कार्यकारिणी का निर्माण कर लिया जाय तो कार्य अन्त सुचारु रूप से चल सकता है। इस समिति के निर्माण संचालन आदि सम्बन्धी बातों का विवेचन तो अध्याय के अंतिम अंश में ही किया जायगा। यहां पर तो इस प्रकार की समिति में प्रधानाध्यापक की भूमिका के सम्बन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। यद्यपि यह सत्य है कि निर्देशन सेवाओं जैसे क्रियात्मक कार्यक्रम का विशेषज्ञता प्रशिक्षित उपबोधक ही होता है तथा शुद्ध शैक्षिक दृष्टिकोण से उसमें ही इस कार्य के सम्पादन करने की अध्यक्षता करने की योग्यता होती है। किन्तु शुद्ध व्यावहारिक एवं प्रशासकीय दृष्टिकोण से यह वांछनीय ही नहीं अपितु अनिवार्य होना चाहिए कि इस प्रकार की बैठकों की अध्यक्षता स्वयं शाला का प्रधान ही करे। हमारी इस मान्यता के कई कारण हैं जिनमें से कुछ निम्नांकित किए जा रहे हैं।

किसी भी शालीय कार्यक्रम के आयोजन में प्रशासक की उपस्थिति मात्र उस कार्य को अनायास ही एक गुरुता एवं महत्त्व प्रदान कर देती है। अब यदि उसकी उपस्थिति वहां पर नाममात्र की समझी जाती है तो वह उसके स्तरानुकूल हो नहीं समुचित होगा। सम्पूर्ण शाला के नेता को किसी भी समिति में अन्य पद से निम्नतर स्तर प्रदान करना न उसके लिए ही शोभनीय है न समिति सदस्यों के लिए लाभदायक। सभी दृष्टिकोणों से उसे अध्यक्षीय आसन पर ही बिठाना समीचीन होगा।

हमारी मान्यता का द्वितीय कारण व्यावहारिक है। इस प्रकार की बैठकों में सम्बन्धित कार्य के विषय में कई नीति निश्चय लिए जाते हैं। इन निश्चयों को गुरुता प्रदान करने तथा इनका पालन सम्भव कर सकने के लिये आवश्यक है कि अध्यक्ष के स्थान पर प्रधानाध्यापक के ही हस्ताक्षर हों। इसके अतिरिक्त किसी भी समिति निश्चय को क्रियान्वित करने का अधिकार केवल शाला में प्रशासक के ही पास रहता है। शाला की किसी भी समिति के कोई भी निश्चय को व्यावहारिक रूप देने के लिए कागजात पुनः प्रधानाध्यापक की टेबल पर प्रेषित किए जाते हैं। स्वयं प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता में पारित किए गए निश्चयों को पुनः यह द्वितीय सोपान नहीं चढ़ना पड़ता।

फिर यह तो एक सामान्य तथ्य है कि स्वयं के हस्ताक्षर कर चुकने पर व्यक्ति उस निश्चय के लिये बाध्य हो जाता है। अतएव नूतन निर्देशन कार्यक्रम के अविलम्ब क्रियान्वयन के लिये यही व्यावहारिक होगा कि प्रधानाध्यापक ही निर्देशन समिति के अध्यक्ष की भूमिका निभाये।

(२) उपबोधक

शाला के निर्देशन कार्यक्रम में उपबोधक के स्थान को भी प्रशासक की

भूमिका के सदृश न एक कुछ भूमिका के रूप में वर्णित किया जा सकता है। किन्तु इन दोनों केन्द्रीय भूमिकाओं में एक मौलिक अन्तर है। जहां शाला प्रधान का केन्द्रीय नेतृत्व शुद्धरूपेण प्रशासकीय स्तर पर रहता है वहां उपबोधक का उतना ही केन्द्रीय महत्व प्रमुखरूपेण तकनीकी स्तर का होता है। किसी बिन्दु के विवेचन अथवा उसमें सम्बन्धित निश्चय करने में प्रशासक का भी उपबोधक का राय लेना अभीप्सित होता है। किन्तु समिति का प्रयत्न अध्यक्षता सम्बन्धी इससे जो सामान्य पूर्व कथन से अभिप्रेत की तरह यहां पर पुनः सावधानीपूर्वक दोहराना ही चाहिये। अर्थात यहां पर यह कहना समीचीन होगा कि निर्देशन समिति की अध्यक्षता उपबोधक को नहीं करना चाहिये। हां—अध्यक्षता न करने पर भी अपनी तकनीकी दक्षता के कारण उसका समस्त सदस्यों में इस प्रकार का अप्रत्यक्ष प्रभाव होना चाहिये कि वह समस्त सदस्यों को अनायास ही अपने विचारों व दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में विश्वस्त कर सके तथा समिति में लिए गए निश्चय स्वाभाविक रूप से ही उसकी तकनीकी प्रायोजना के अनुकूल उतरें। इस तथ्य को इस प्रकार कहा जाय तो कदाचित अधिक स्पष्ट हो पायेगा कि रंगमंच के पर्दे के पीछे रह कर भी एक कुशल सूत्रधार की भांति उपबोधक निर्देशन की समस्त क्रिया व क्रिया विधियों को निर्देशित—सचालित करता रहता है।

अपनी भूमिका के इस सामान्य परिचय की पृष्ठभूमि में उपबोधक के विशिष्ट उत्तरदायित्वों का स्पष्टीकरण कतिपय विशिष्ट शीर्षकों के अन्तर्गत सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) छात्रों को उपबोधन

शाला के छात्रों को उपबोधन देना एवं उपबोधन की समूची कार्य भूमिका का सर्वप्रधान सर्वोच्च तथा सर्वोत्तम पक्ष है। वस्तुतः एक प्रशिक्षित तकनीकि के रूप में उसकी नियुक्ति ही इसी तकनीकी सेवा के लिए किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम की अन्य सभी सेवाओं में विभिन्न कार्मिकों का विविध भांति सहयोग लेना अपेक्षित होता है। किन्तु यही वह केन्द्रीय महत्व की विशिष्ट सेवा है जिसमें उपबोधक के अतिरिक्त और कोई कार्मिक न्यायसंगत कार्य नहीं कर पाता। हम गत अध्याय में निर्देशन सेवाओं के परिचय के समय इस सेवा की तकनीकी प्रकृति पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। उपबोधन एक ऐसी तकनीकि कला अथवा कलात्मक विज्ञान है जिसमें तकनीकि कार्यविधियों द्वारा सकलित दत्त सामग्री लिए हुए वस्तुनिष्ठ विधाओं द्वारा मानवीय व्यक्तित्व जैसे गत्यात्मक चर के साथ कलापूर्ण कार्य किया जाता है। अतएव छात्रों के उपबोधन के रूप में हम शाला उपबोधक की प्रमुख भूमिका का महत्व देना चाहते हैं। इस उपबोधन कार्य का परीक्षण मोटे रूप से निम्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है।

(अ) औसत छात्र की सामान्य समस्याएं

एक औसत व्यक्ति के दैनन्दिन जीवन में जो साधारण समस्याओं का अस्ति

— एक सहज वास्तविकता है। साथ ही यह भी सत्य है कि व्यक्ति इस प्रकार की समस्याओं की अनुभूति के समय किस प्रकार की सहायता की अपेक्षा करता है। कई बार यह सहायता उसे उचित व वांछित रूप में नहीं मिल पाती। फलस्वरूप वह अपेक्षाकृत अवांछित स्रोतों से इसे प्राप्त करता है और ऐसी परिस्थिति में लाभान्वित होने के रूप में कई बार हानि का भी शिकार बन जाता है। कई बार वह संकोचवश किसी भी व्यक्ति के पास न जाकर या तो मन ही मन घुटता रहता है अथवा अपने ही स्तर के अपरिपक्व सहपाठियों से अपनी निजी शंकाओं का निवारण करने का असफल प्रयास करता है।

उक्त सभी प्रकार की वैकल्पिक स्थितियाँ उसके विकास तथा समायोजन में बाधक ही सिद्ध हो सकती हैं। शाला के नियमित स्टाफ में ही एक प्रशिक्षित उपबोधक का होना इस प्रकार की बाधाओं का अवरोधन करके छात्र के सम्यक विकास एवं समायोजन में सतत सहायक सिद्ध हो सकता है। छात्रों के लिए भी यह बात अत्यंत ही संतोषप्रद रहता है कि उनकी आशंकाएँ व चिन्ताएँ दूर करने हेतु ही कोई व्यक्ति शाला में विशेष रूप से नियुक्त है तथा वे उसके पास जाकर निस्संकोच बात कर सकते हैं।

सामान्य छात्र की सामान्य समस्याओं के निवारण के अतिरिक्त इन विद्यार्थियों के सन्दर्भ में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है जो कि उपबोधक का विशेष उत्तरदायित्व बनता है।

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि व्यक्ति प्राय अपने गुणों एव क्षमताओं का स्पष्टतम उपयोग नहीं कर पाता। इसके कई कारण हो सकते हैं। या तो अपनी वास्तविक क्षमताओं से परिचय न होने के कारण वह अपना अतिमूल्यन अथवा अवमूल्यन करता है या अपनी क्षमताओं को जानते हुए भी उसके व्यक्तित्व में एक स्वाभाविक अकर्मण्यता है जिसके कारण वह सामान्य से अधिक उपार्जन शक्ति रखते हुए भी अपने औसत स्तर में ही सन्तुष्ट रहता है या यह भी हो सकता है कि स्वयं की क्षमता की पहिचान एवं उच्चाकांक्षाओं की महत्त्वाकांक्षी होते हुए भी न तो उनके पास समुचित साधन सुविधाएँ हैं न ही इन्हें प्राप्त करने के स्रोतों के संबंध में ज्ञान। उपबोधक विभाग का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यही है कि व्यक्ति को उसकी क्षमताओं का अभिज्ञान कराये तथा उसे इष्टतम उपयोग की राहों में अग्रसर करके उसे अनुकूलतम विकास की दिशा में निर्देशित करे। अतः शाला उपबोधक की सबसे प्रमुख भूमिका यही हो जाती है कि वह शाला के प्रत्येक छात्र को उसकी अन्य क्षमताओं के सम्बन्ध में प्रबुद्ध करे, उनके इष्टतम उपयोग हेतु उन्हें सचेष्ट और बनाए तथा अपने वैयक्तिक लक्षणों (क्षमता तथा सीमितताएँ दोनों ही) के अनुकूल अवसर प्राप्ति में सहायता करे।

(आ) असामान्य छात्रों की विशिष्ट समस्याएँ यह तो हुई औसत छात्रों

के साथ उनके दैनन्दिन जीवन समायोजन सम्बन्धी प्रश्नों की बात। किन्तु यह एक सांख्यिकी सत्य है कि प्रत्येक औसत जनता समूह में कतिपय विचलित व्यक्ति अवश्य रहते हैं। यों प्रायः औसत छात्र की कई सामान्य कठिनाइयों के निवारण में तो शाला शिक्षकों का भी समुचित योगदान रहता है। किन्तु इन विचलित व्यक्तियों की विशिष्ट समस्याओं को समझने एवं उनके साथ कार्य करने हेतु सामान्य शिक्षक के पास न तो पर्याप्त समय रहता है न अनुकूल प्रशिक्षण के अभाव में उसकी इस कार्य में आवश्यक गति विधि ही रहती है। इन छात्रों की समस्याओं के साथ कार्य करना उपबोधक के विशिष्ट उत्तरदायित्वों में से एक है। आज के प्रगतिगामी मनोवैज्ञानिक युग में यह सिद्धान्त सामान्यतः मान्य होता जा रहा है कि जहाँ पिछड़े हुए अथवा असन्तुलित छात्रों की उपेक्षा उनके व्यक्तित्व को असीम हानि पहुँचाती है वहाँ प्रतिभावान एवं अत्यन्त सुयोग्य विद्यार्थियों के सक्षम लक्षणों की ओर उदासीनता उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित करने के साथ-साथ समाज की प्रगति में अपरिसाम अवरोधन उत्पन्न करता है। दोनों ही प्रकार के विशिष्ट छात्रों का निदान एवं उनके अन्य लक्षणों के अनुरूप उनकी शैक्षिक योजना बनाना बिना इस क्षेत्र में प्रशिक्षित व्यक्ति के सम्भव नहीं।

यों तो सामान्यतः उपबोधक को अपना अधिकांश समय शाला की अधिकांश जनता औसत छात्रों के अनुकूलतम विकास एवं इष्टतम समायोजन के प्रयासों में व्यय करना चाहिए-तथा इस कार्य के सम्बन्ध में हम उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत विशद विवेचन कर भी चुके हैं। किन्तु अपेक्षाकृत कम संख्या वाले विचलित व्यक्तियों के साथ काम करने के लिए विचलन के अनुपात में ही अधिक दक्षता योग्यता समय शक्ति एवं ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अपने विशिष्ट प्रशिक्षण के कारण शाला उपबोधक इस कार्य को समुचित रूप से कर सकता है। वह इन छात्रों की विविध पक्षीय समस्याओं का समुचित अवबोध विकसित करता हुआ उन्हें उनका सामना करने में आवश्यक सहायता प्रदान कर सकता है।

(इ) अतिरिक्त निर्देश सेवा

निर्देशन कार्मिकों के सोपानित क्रम में उपबोधक का स्तर अधिक वैज्ञानिक तकनीकी साधन पर निश्चित होता है। किन्तु यह भी सत्य है कि वह इतना बहुपक्षी विशेषज्ञ भी नहीं कि व्यक्तित्व की बहुआयामी विभिन्न समस्याओं को पूर्णरूपेण हल कर सके। इस प्रकार का विशेषज्ञ तो किसी भी विकसित विज्ञान में उपलब्ध नहीं हो सकता। मानव विकास एवं समायोजन को प्रभावित करने वाले इतने अधिक कारक इतने अधिक जीवन-क्षेत्रों में उपस्थित अथवा उत्पन्न हो सकते हैं कि उन सभी का सम्यक बोध किसी भी एक विज्ञान में स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ यदि किसी छात्र का संवेगात्मक असन्तुलन उसके वाचा दोष के कारण है और यह वाचा-दोष किसी आंगिक कुरचना या अवयव में निहित है तो छात्र को किसी चिकित्सक के पास प्रेषित करके उसका समुचित उपचार करवाना उपयुक्त रहेगा।

आयामों में भी लागू कर सकता है। सर्वप्रथम तो उसके निजी शिक्षा सम्बन्धी में इस तथ्य की स्पष्टता कई प्रकार से झलक सकती है। यह सम्भव है कि कभी-कभी उसे ऐसे व्यक्तियों के साथ शाला-कर्तव्यों का भार मिले जिनके उपागमों विचारों कार्यविधियों से उसका तनिक भी साम्य न हो। ऐसी परिस्थिति में उसे कई बार मनाशा व असन्तोष की दुःसह भावनाओं का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार सम्भव है कि वह शाला प्रधान के साथ ही एवं भी प्रश्नों से कोई बात नहीं देख पाता हो। ऐसे अवसरों पर उसे कभी-कभी मान हानि होती या आदि की दुखद अनुभूतियाँ सहन करनी पड़ें। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सहज ही वर्तमान रहने वाली कई विभिन्नताओं का वैज्ञानिक अवबोध मानव का इस प्रकार की मनःस्थापनमयी परिस्थितियों के कारणों का अधिक वस्तु निष्ठतापूर्ण विश्लेषण अध्ययन अवबोध करने में सहायक होता है तथा व्यक्ति को एक प्रबुद्ध प्रशान्तता प्रदान करता है।

(आ) वैयक्तिक अनुसूची दत्त संग्रह

निर्देशन कार्यक्रम की प्राथमिक सेवा—वैयक्तिक सूचना-हेतु जो छात्र-सूचनाएं संकलित करनी होती हैं उन्हें शिक्षक की सहायता के बिना अकेला उपबोधक नहीं कर सकता। किन्तु इन्हें विधिवत् संकलित कर सकने में पुनः शिक्षकों को उपबोधक से वैज्ञानिक नेतृत्व की अपेक्षा रहती है। व्यवस्थित विकासात्मक तथा मितव्ययी ढंग से इन्हें एकत्रित कर सकने हेतु कई प्रपत्र आयोजित करने पड़ते हैं जिन्हें विकसित करने तथा जिनका उपयोग करने में उपबोधक समस्त शाला-परिवार को समुचित नेतृत्व देता है। इनका विश्लेषण करने में भी यह अपेक्षित है कि शिक्षक उसकी समुचित सहायता कर सकें। किन्तु वस्तुतः यह सहायता देने में स्वयं उनका भी दत्त विश्लेषण विधियों में अनायास ही प्रशिक्षण होता है। इसके साथ ही एक ओर सहज लाभ उन्हें यह भी होता है कि वे अपने विद्यार्थियों को अधिक अच्छी तरह जान पहिचान सकते हैं। उपबोधक की भूमिका इस सन्दर्भ में यह है कि वह अध्यापकों को छात्र सम्बन्धी वैयक्तिक दत्त-सामग्री विधिवत् संकलित विश्लेषण करने में दक्षता प्रदान करते हुए छात्रों के सर्वांगीण अवबोध में उनकी रुचि का उत्तरोत्तर विकसित परिपक्व करता रहे।

(इ) निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन

वस्तुतः गत दो बिन्दुओं में किए गए विवेचन का समाहार इस बिन्दु के शीर्षक में समुचित रूप से हो जाता है। निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन का मूल तात्पर्य होता है प्रत्येक छात्र की विशिष्ट वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुकूल अध्यापन को सम्पन्न करना। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अध्यापन के उद्देश्य निर्धारण विषय वस्तु चयन विधि निरूपण एवम् मूल्यांकन प्रक्रम प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक छात्र के व्यक्तित्व के अनुकूल इन सोपानों के धारण में आवश्यक हेर फेर कर सकना चाहिए।

निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन का तात्पर्य यह भी होता है कि छात्र का विषय चयन उसकी क्षमतानुकूल है तथा उसके जीवन की भविष्य सम्भावनाओं से भी तारतम्य रखता है। यों मानते तो छात्रों की विषय-योजनाएं निर्धारित करने में सामान्यतः उपबोधक का ही प्रमुख भूमिका रहती है। किन्तु यह भूमिका वह बिना शिक्षकों के अवलम्ब के सम्पन्न नहीं कर सकता। किन्तु शिक्षकों को इस ओर रुचि शील बनाने तथा इस कार्य में हाथ बटा सकने की उनमें योग्यता उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व पुनः वैज्ञानिक उपबोधक का हो हो जाता है। इसलिये यह कहा सकते है कि निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन सम्पन्न कर सकने में उपबोधक शिक्षकों को समुचित दिशा प्रदान करता है।

(ई) पाठ्य सहगामी कार्यक्रम की समुचित व्यवस्था

एक छात्र की रुचि क्षमता एवं योग्यता के लिए जो बात नियमित पाठ्य क्रम के विषय में कही गई है वही उसकी पाठ्यसहगामी अथवा पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों के आयोजन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। वस्तुतः अधिक अनौपचारिक वातावरण में आयोजित तथा परीक्षा के अनिवार्य बन्धनों से मुक्त इन कार्यक्रमों में तो यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि इसके अन्तर्गत आयोजित प्रवृत्तियों में एक छात्र को वयक्तिक विशिष्टता एवम् विशिष्ट आवश्यकता के अनुरूप उसे अवसर प्रदान किए जावें। पाठ्येतर प्रवृत्तियां का क्षेत्र शाला जीवन का वह विस्तृत आयाम है जहां विद्यार्थी का व्यक्तित्व कक्षा की चहारदीवारी से उन्मुक्त होकर उसके विविध प्राकृतिक रंगों में निखर उठता है। इन रंगों को विन्यास की कला तथा इनके समुचित सम्मिश्रण से छात्र का व्यक्तित्व चित्र विकसित करने का विधान उपबोधक की वैज्ञानिक कला में निहित रहता है। और एक कुशल उपबोधक शाला के शिक्षकों का आयोजन ही सहज रूप से इस विधान में अभिविन्यासित कर सकता है।

( ) पर्यावरणीय सूचना प्रसारण

निर्देशन कार्यक्रम की द्वितीय महत्वपूर्ण सेवा है पर्यावरणीय सूचनाओं का व्यवस्थित संग्रह विश्लेषण एवं प्रसार। विद्यार्थियों तक इसके सहज प्रसार की विधाओं में शिक्षकों को अभिविन्यासित करने का उत्तरदायित्व पुनः उपबोधक का ही होता है। शिक्षक इस प्रकार को किस प्रकार कर सकते हैं यह तो अगले अध्याय में—तथा अधिक विस्तार पूर्वक सप्तम अध्याय में बताया जावेगा। यहां तो केवल शिक्षकों के इस मान में सहायक के रूप में उपबोधक की भूमिका स्वरूप इस बिन्दु का उल्लेख मात्र किया जा रहा है।

(ग) निर्देशन कार्यक्रम में अभिविन्यास

निर्देशन कार्यक्रम के संगठन—सिद्धान्तों का विवेचन करते समय हम कार्मिकों के तत्परता-स्तर को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दे चुके हैं। इस सन्दर्भ में जिस मनो वैज्ञानिक तथ्य पर पुनर्बल देना चाहते है वह यह है कि किसी भी कार्यक्रम के सम्बन्ध

पर वह शाला व समप्राय को भी प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के निकट लाता है तथा उनम पारस्परिक सम्बन्ध जाग्रत करता है—अनुप्राणित रखता है।

हमारे विचार म शाला उपबोधक का यह भूमिका न केवल उसके निजी उत्तरदायित्व के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है अपितु सम्पूर्ण शालाय विकास की दृष्टि स अत्यन्त ही मूल्यवान है।

(3) शाला शिक्षक

उपबोधक की भूमिका का विशद विवेचन करते हुए उसके द्वारा शिक्षकों को दिए हुए नेतृत्व के सदभ म शिक्षकों की निर्देशन भूमिकाओं के सम्बन्ध म कई अप्रत्यक्ष इंगित वाचकों को मिल हो चुके हैं। अब इस शीर्षक के अन्तर्गत शिक्षक के विशिष्ट निर्देशन उत्तरदायित्वों व भूमिकाओं का अधिक प्रत्यक्ष विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

अभी तक वाचकों को यह तो स्पष्ट हो ही चुका होगा कि शाला निर्देशन कायक्रम म शिक्षकों की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है। बल्कि यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि शाला अध्यापकों के पूर्ण सहयोग के बिना निर्देशन कायक्रम का सर्वोत्तम आयोजन भी समुचित रूप से क्रियान्वित नहीं हो सकता।

शिक्षक की निर्देशन म भूमिका के विषय म विशद विवेचन प्रस्तुत करने के पूर्व इस स्थल पर एक सम्बन्धित सम्भ्राति का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक होगा।

निर्देशन कायक्रम के सफल संचालन म शिक्षक के महत्वपूर्ण स्थान को अत्य धिक बल देते हुए कभी-कभी यह विचार अभिव्यक्त किया जाता है कि छात्र के साथ निकटतम सम्पर्क तथा सर्वाधिक काय करने वाले अध्यापकों को ही उनके निर्देशन का भी काय करना चाहिए। दूसरे शब्दों म इस मान्यता का यह तात्पय हुआ कि शाला निर्देशन काय के लिए कक्षाध्यापक ही पर्याप्त कार्मिक हैं। इनके अतिरिक्त इस काय हेतु कोई विशेषज्ञ व्यक्ति के नियोजन की कोई आवश्यकता नहीं है।

हम लोग उक्त प्रकार की विचारधारा से सहमत नहीं हैं। हमारी इस सम्बन्ध म स्पष्ट मान्यताएं यह है कि प्रत्येक शिक्षक एक सीमा तक निर्देशन कार्मिक है बिना शिक्षकों के सक्रिय सहयोग के शाला निर्देशन कायक्रम केवल एक सन्तोषजनक आयोजना के स्तर तक ही अवरुद्ध हो जायगा। किन्तु यह एक तकनीकी वास्तविकता है कि शाला शिक्षक एक प्रशिक्षित उपबोधक को स्थानापन्न नहीं कर सकता। शिक्षक के द्वारा सम्पन्न सामान्य निर्देशन कर्तव्यों के अतिरिक्त कतिपय विशिष्ट उपबोधन उत्तरदायित्वों को निभाने हेतु तकनीकि उपबोधक का होना एक अनिवाय आवश्यकता है। उपबोधक के इन विशिष्ट उत्तरदायित्वों पर पूर्व शीर्षक के अन्तगत पर्याप्त प्रकाश भी डाला जा चुका है। अत अब विशेष रूप से अध्यापकीय उत्तरदायित्वों का प्रस्तुतिकरण कतिपय शीर्षकों के अन्तगत किया जाएगा।

(क) **मनोवैज्ञानिक जलवायु का सजन**—अत्यंत वाछनीय प्रवृत्ति के भी शाला छात्रो द्वारा ग्राह्य एव स्वीकृत हो सकने हेतु एक महत्वपूर्ण पूर्वावश्यकता होनी है उस प्रवृत्ति के विषय म छात्रो का एक सकारात्मक मनोवैज्ञानिक उपागम। सामान्यत इस प्रकार के उपागम का सजन करने म शाला शिक्षको का बहुत बडा हाथ रहता है। यदि कोई नवीन शाला कार्यक्रम उनके मतानुकूल नहीं है तो वे कई प्रयत्न अप्रत्यक्ष व्यवहार क्रियाओ द्वारा अपनी अनुकूलता से छात्रो को अनायास ही अनवधित कर सकते है। और यदि उन छात्रा का—जिनके लिए ही मूलत निर्देशन कार्यक्रम की आयोजना होनी है—ही इस कार्यक्रम के लिए नकारात्मक उपागम बन जाता है तो उसके मूल से ही नष्ट होने की आशका रहती है।

वस्तुत छात्र हेतु आयोजित किसी भी नूतन शैक्षिक कार्यक्रम को सफल बनाने की एक महती पूर्वावश्यकता यह होती है कि छात्रो के मन मे उसके लिए आस्था उत्पन्न की जावे। उनके मस्तिष्क म यह धारणा स्पष्ट हो कि कार्यक्रम उनके हित के लिए है। शाला के एक नवीन कार्मिक के सम्बन्ध मे उनके मन मे यह विश्वास स्थापित हो कि यह उनका शुभचिंतक सहायक है। चूकि विशेषकर भारतीय परिस्थितियो मे शाला के अविभाज्य अग के रूप म निर्देशन कार्यक्रम की स्थापना छात्रो के लिए एक नवीन बात होगी इसके लिए और भी अधिक आवश्यक है कि इस प्रवत्ति के अभिप्रेत अर्थो तथा उपबोधक की आवश्यकताओ के विषय म उनके मन मे एक मंगलमय धारणा हो। छात्रो के साथ सर्वाधिक काय करने वाले शिक्षको द्वारा यह स्पष्टता सरलता से उत्पन्न की जा सकती है। निर्देशन के नूतन बीज को वे एक सकारात्मक मनोवैज्ञानिक वातावरण की अनुकूल जलवायु प्रदान करके स्वय अपने सहयोगी कर्त्तव्यो की खाद देकर एक नव पल्लवित पौधे के रूप म विकसित होने म प्रेरणा देते है।

(ख) **निर्देशन-नीतियो के अवबोध म सहायता**—उक्त वक्तव्य के अनुवत्तन मे ही प्रस्तुत भूमिका के निर्माण की बात आती है। निर्देशन कार्यक्रम के लिये अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण के सृजन के उपरान्त प्रश्न उपस्थित होता है निर्धारित निर्देशन नीतियो के स्पष्टीकरण का। प्राय ये नीतिया निर्देशन-समिति की उन बैठको मे निश्चित होती हैं जिनम कुछ निर्वाचित शाला शिक्षक भी सदस्य रहते हैं। नीति निश्चय होने के पश्चात भी उनके क्रियान्वयन के पूर्व प्रश्न उठता है–छात्रा तक उन्हें प्रसारित करने का या यो कहे कि उनके अवबोध हेतु इनकी समुचित व्याख्या का। पुन इस बात का उत्तरदायित्व छात्रो के निकटवर्ती शिक्षको पर ही पडता है। यो सामान्यत निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी प्राथमिक अभिविन्यास तो छात्रो को शाला उपबोधक अथवा शाला प्रधान द्वारा ही प्राप्त होकर समुचित होगा जिसम छात्रो के मन में कार्यक्रम विषयी मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा प्रशासकीय अवलम्बन की बातें मूल ग्रहण कर ले। किन्तु इस मूल को दृढ करने इसको पनपाने तथा विकसित करने हेतु

शिक्षकों के दत्तन्ति पोषण की आवश्यकता है जोकि इस कार्यक्रम की विविध प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उनके विचारों अभिव्यक्तियों कार्यों तथा कार्य-व्यापारों द्वारा होना है। छात्रों के साथ व्यतीत किये गए कई औपचारिक तथा अनौपचारिक अवसरों पर वे निर्देशन सम्बन्धी नीतियों का समुचित स्पष्टीकरण उनके सम्मुख कर सकते हैं– तथा उन्हें निर्देशन कार्यक्रम से अधिकाधिक लाभ उठा सकने हेतु तत्पर कर सकते हैं।

(ग) वैयक्तिक दत्त संग्रह— व्यवस्थित रूप से निर्देशन कार्य संचालित कर सकने की एक प्राथमिक आवश्यकता है छात्र विषयक वैयक्तिक सूचनाओं का विधिवत संकलन। इस प्राथमिक सेवा में शिक्षक का योगदान सर्वाधिक होता है।

सर्वप्रथम तो छात्रों के बहुमुखी व्यक्तित्व का सामान्य परिचय कई बार स्थितियों में शिक्षक को ही सबसे अधिक होता है। फिर शाला का प्रायमिक उत्तरदायित्व होता है छात्रोपयोगी कार्यों जिसमें छात्र अभिभावक प्रधानाध्यापक समुदाय तथा स्वयं अध्यापक समान रूप से रुचि रखते हैं। शाला के इस महत् पक्ष से सीधा सम्बन्ध अध्यापकों का ही होता है। छात्रों की उपलब्धि के साथ ही शाला के मान सम्मान का प्रश्न भी संयुक्त रहता है—और इस प्रकार शिक्षक का इस विषय में महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व रहता है।

अब शिक्षक ही वह कुंजी धारित है जिसके पास छात्रोपयोगी विषयक सूचना-सामग्री रहती है। सर्वप्रथम तो शाला की नमी आवश्यकता के अनुसार ही उस दत्त सामग्री का व्यवस्थित रूप से प्रस्तुतीकरण करना होता है। फिर उपयोग के वैज्ञानिक तत्त्व से लाभ उठाकर वह विश्लेषणात्मक रूप से अधिक वैज्ञानिक ढंग से इस महत्त्वपूर्ण सामग्री का लेखा रख सकता है।

यह तो हुई सूचना-सामग्री के प्रारूप की बात। किन्तु इससे भी अधिक मूल तथ्य है सामग्री संकलन के उपकरणों का। जो सामान्यतः ही शिक्षक के पास शाला के नेमी विषय पर रहता तथा उनका स्वयं का आनुवंशिक निर्माण हो वे उपकरण होते हैं जिनके माध्यम से वह अपने छात्रों के विषय में सूचनाएं एकत्रित कर के निर्देशन कार्यक्रम की वैयक्तिक सूचना सेवा की परिपूर्ति कर सकता है।

किन्तु उक्त तथा साधना के अतिरिक्त भी कई ऐसे शिक्षक निर्मित उपकरण हो सकते हैं जो तुलनात्मक दृष्टि से अधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं तथा जिनके माध्यम से संचित सामग्री अधिक विश्वसनीय व वैध होती है। उपबोधक के निर्देशन में शिक्षक एस कई उपकरण—यथा चिह्नांक सूचियां, मूल्य-निर्धारण मापनियां, प्रश्नावलियां, समाजमितिक विधियां– स्वनिर्मित करके उनके माध्यम से छात्रों के विषय में मूल्यवान सूचनाएं संकलित कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य विधियां भी हो सकती हैं जिनके द्वारा शिक्षक कक्षा में अथवा अधिक अनौपचारिक परिस्थितियों में छात्रों के सम्बन्ध में बहुमुखी सूचनाएं संकलित करके न केवल उनका अधिक सम्पूर्ण चित्र शाला के लिये प्रस्तुत करते हैं, अपितु इस प्रकार के

चित्र की सम्पूर्णता के परिप्रेक्ष्य म ---ग अधिक सर्वांगीण सहायता द सकने की अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करते है। शिक्षक द्वारा निर्मित तथा प्रयुक्त हो सकने योग्य इस प्रकार की विधाओं के सम्बन्ध म विशद विवेचन तो अगले अध्याय म स्तुत किया जायगा। यहाँ तो केवल शिक्षक का निर्देशन भूमिकाओं के स्पष्टीकरण के अन्तगत केवल इनकी ओर इगित मात्र कर दिया गया है।

(घ) **पर्यावरणीय सूचना प्रसार**—निर्देशन कार्यक्रम की द्वितीय सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा के सचालन म भी शाला अध्यापकों की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इस भूमिका को वे दो प्रकार म निभा सकते है विषय अध्यापन के माध्यम से तथा पाठ्यसहगामी प्रवृत्तियों से। दोनों ही विधाओं का सक्षिप्त विवेचन अनुच्छेदों म प्रस्तुत किया जा रहा है। विशद रूप से इनका वर्णन अध्याय सात म मिलेगा।

(अ) **विषय अध्यापन के माध्यम से**—प्रत्येक शिक्षक का यह कर्तव्य है—निस निभाने का वह सामान्यत आवश्यकता न । समभन -कि वह छात्रों को विषय ज्ञान के पूर्व तथा विषय अध्यापन के साथ साथ ही विषय के शैक्षिक म य उसकी व्यावसायिक सम्भावनाए उससे सम्बन्धित विषय शाखाएं उससे उद्भूत शैक्षिक-व्यावसायिक धाराओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर आदि सगत तथ्यों से छात्रों को प्रबुद्ध करते रहें। तभी उनका विषय अध्यापन छात्रों के लिये सही मानें म अर्थपूर्ण हो सकता। किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि हमारे शिक्षकों से सामान्यत इस प्रकार की अपेक्षा भी नहीं की जाती कि वे ये सूचनाए छात्रों तक प्रेषित करें। फलस्वरूप कई शिक्षक स्वय भी इन तथ्यों के बारे म अनभिज्ञ से रहते है। अपनी विषय वस्तु और वह भी केवल परीक्षा पाठ्यक्रम म निर्धारित के अतिरिक्त इस प्रकार की जानकारियां उपलब्ध करना उनके लिये किसी भी प्रकार युक्तिसगत नहीं होता। निर्देशन के दर्शन म अभिविन्यासित होने पर ही वे विषय-सम्बन्धी इन तथ्यों का व्यावहारिक मूल्य समझ सकते हैं तथा स्वय छात्रों को भी इस ओर सवेदनशील तथा प्रबुद्ध बना कर उनके शैक्षिक चयनों को एक सबल वास्तविक आधार प्रदान कर सकते हैं।

(आ) **पाठ्य सहगामी क्रियाओं से**—कक्षा परिस्थितियों के अतिरिक्त भी कई इस प्रकार की प्रवृत्तियां हो सकती है जिनके द्वारा शिक्षकगण निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना सेवा को परिपुष्ट कर सकते हैं। कुछ इस प्रकार की विधाए निम्न अनुच्छेदों म प्रस्तावित की जा रही है।

सर्वप्रथम तो एक प्रबुद्ध रुची के रूप म विद्यार्थियों को वैयक्तिक डायरियाँ अनुरक्षित करने के लिये प्रेरित किया जा सकता है जिसम वे अपने को अच्छे लगने वाले व्यवसायों अथवा विषयों के सम्बन्ध म अद्यतन सूचनाए नोट करते जाए। एक प्रोत्साहक के रूप म इनका प्रस्तुतिकरण भी शाला की पाक्षिक सभाओं में वाचन अथवा अनुपूरण के रूप मे करवाया जा सकता है।

छात्रों में विविध व्यवसायों की भावी आवश्यकताओं सम्बन्धी रुचि उत्पन्न की जा सकती है। प्रचलित इश्तिहारों का समाचारपत्रों से संकलित करके ये बनवाए जा सकते हैं। इस प्रकार की हाबी से न केवल छात्रों का व्यवसाय संसार सम्बन्धी अभिज्ञान परिवर्धित होगा अपितु समाचार-वाचन से उनके सामान्य ज्ञान में भी उन्नति होगी। व्यवसाय-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएँ आदि बुलेटिन बोर्ड पर प्रदर्शित करने का उत्तरदायित्व भी कुछ रुचिशाली छात्रों को सौंपा जा सकता है।

ये तो कुछ विधाएँ हैं जिनसे शिक्षक स्वतन्त्र रूप से अपनी कक्षा के छात्रों को पर्यावरणीय सूचनाएँ प्रदान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्य रूप से आयोजित पर्यावरणीय सूचना तथा सम्बन्धी विविध प्रवृत्तियों में भी शिक्षकों का सहयोग न केवल अपेक्षित है अपितु अनिवार्य है। इनमें से कुछ प्रवृत्तियों के उदाहरण हैं—विषय तथा व्यवसाय सम्बन्धी भाषणों का आयोजन, व्यवसाय दिवस, शैक्षिक संस्थाओं व औद्योगिक केन्द्रों का भ्रमण, पुस्तकालय में निर्देशन कक्ष का स्थापन, तथा कक्ष में व्यावसायिक सूचनाओं सम्बन्धी चित्रों, चार्टों, सारणियों, आलेखों, आरेखों आदि का विधिवत प्रदर्शन आदि।

(ङ) छात्रों को उपबोधन हेतु निर्दिष्ट करना— कक्षा-परिस्थितियों की औसत समस्याओं के अतिरिक्त यदि छात्रों की कुछ विशिष्ट कठिनाइयाँ हों तो उन्हें भली उपबोधक के विषय में प्रबुद्ध करके उन्हें उसके पास निर्दिष्ट करने की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में उसे ज्ञान तथा तर्कगत विवेक की आवश्यकता है कि वह किस प्रकार की समस्या वाले छात्र को निर्दिष्ट करेगा तथा किसका उत्तरदायित्व स्वयं लेगा। अब इस बात के सम्बन्ध में इन दो प्रकार की समस्याओं के बीच कोई निश्चित विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। यह निश्चय शिक्षक की क्षमता, छात्र की परिस्थिति, समस्या के स्वरूप आदि कई तथ्यों पर निर्भर रहता है। कई बार शिक्षक एवं उपबोधक को सम्मिलित रूप से भी किसी छात्र के साथ कार्य करना पड़ता है। अतः इस विषय के विवेचन के प्रारम्भ में ही हमने इस सम्बन्ध में केवल एक प्रमुख बात पर मोटे रूप से बल दे दिया है। अर्थात् सामान्य छात्र की कक्षा परिस्थितियों सम्बन्धी औसत समस्याओं के साथ शिक्षक को कार्य करना प्रायः अधिक समुचित होगा। उदाहरणार्थ किसी छात्र का कक्षा में देर से आना, गृहकार्य करके न लाना, अन्य छात्रों से झगड़ना आदि सामान्य कक्षा की समस्याएँ हैं जिन्हें लेकर एकदम ही उपबोधक के पास उनको निर्दिष्ट कर देना कदाचित उचित न हो। किन्तु यह भी सम्भव है कि इन सामान्याभासित समस्याओं के मूल में कुछ गहन ग्रन्थियाँ हों जिन्हें सुलझाने में प्रशिक्षित उपबोधक के विशिष्ट तकनीकों ज्ञान की आवश्यकता पड़े। इसलिए शिक्षक का इस भूमिका को निभाने के लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते। परिस्थिति के अनुसार उसे अपने विवेक सापेक्ष रूप से ही करने होंगे।

(४) अभिभावकगण

निर्देशन के मुख्य ध्येय या तो व्यक्ति के बहुमुखी समन्जन से सम्बन्धित होते हैं अथवा उसके सर्वांगीण विकास के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित होते हैं। निर्देशन सेवाओं का कार्यक्रम भी व्यक्ति के बहुमुखी समन्जन को ध्यान में रखकर ही सचालित होता है। सामान्यत छात्र अपने जीवन के एक तृतीयांश से अधिक समय शाला में व्यतीत नहीं करता। चूंकि व्यक्ति का समन्जन एवं विकास ऐसी सश्लिष्ट प्रक्रियाएं हैं जिन पर शाला के अतिरिक्त कई कारकों का भी प्रभाव पड़ता है इसलिए निर्देशन को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इन सभी कारकों से सहयोग की अपेक्षा करनी पड़ती है। इन सभी शालेत्तर कारकों में से हम सर्वाधिक महत्त्व छात्र के घरेलू पक्ष को देना समुचित समझते हैं। छात्र के जीवन का प्रारम्भ घर की सांस्कृतिक सामाजिक पृष्ठभूमि में होता है। अपने जीवन के सबसे अधिक निर्माणात्मक समय में वह घर के ही मूल्यों की छाप अपने कोमल व्यक्तित्व पर सदा के लिए धारण कर लेता है। उसके जीवन-उपागम मानसिक विश्वास संवेगात्मक सप्रत्ययण – सभी का मूल इसी समय घर के रहन-सहन बोल चाल आचार विचार व्यवहारों की भूमि में गहराई से प्रविष्ट हो जाता है— और उसके जीवन वृक्ष की धमनियों में सदा सर्वदा के लिए प्रवाहित होता हुआ उसके—पल्लव पुष्प फलों के रंगरूप स्वाद को प्रभावित करता रहता है। अत स्पष्ट है कि उसके सर्वांगीण विकास में उसके अभिभावकगणों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। उनके समन्जन के स्तर स्वरूप एवं सम्भवता को भी उनके बाल्यकालीन प्राथमिक जीवन-अनुभव एक बहुत बड़ी सीमा तक अनुबन्धित करते हैं। अत यह युक्तिसंगत ही होगा कि निर्देशन कार्यक्रम का सतत सम्पर्क छात्रों के अभिभावकों से बना रहे।

इस साधारण मान्यता की पृष्ठभूमि में निर्देशन सेवाओं के कार्यक्रम में अभिभावकों की विशिष्ट भूमिकाओं का विवेचन निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) वैयक्तिक सूचना सेवा— वैयक्तिक सूचना की प्रकृति के विवेचन के समय हमने उसके विकासात्मक तथा समाहारी लक्षणों पर बल दिया था। इन दोनों ही लक्षणों का अस्तित्व बिना घरेलू सहयोग प्राप्त किए नहीं हो सकता। व्यक्तिसम्बन्धी विकासात्मक सूचनाओं का मूल प्रारम्भ घर में ही होता है तथा सबसे सही रूप में अभिभावकों से ही प्राप्त किया जा सकता है। निर्देशन कार्यक्रम के सचालन में अभिभावकों का एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह हो सकता है कि वे उपबोधक द्वारा निर्मित प्रपत्रों में वाछनीय सूचनाएं विधिवत भर दें।

प्रपत्रों में मांगी हुई तात्त्विक सूचनाओं के अतिरिक्त भी व्यक्ति सम्बन्धी कई प्रश्न इस प्रकार के होते हैं जिनका उत्तर प्रपत्रों की खानापूर्ति मात्र करवा के उपलब्ध नहीं किया जा सकता। ऐसे अपेक्षाकृत गहन नाजुक अथवा सश्लिष्ट बिन्दुओं के सम्बन्ध में जब उपबोधक को सूचनाओं की अपेक्षा होती है तब उसे स्वत ही

अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करके व्यक्तिगत रूप से तथ्य एकत्रित करना होता है। ऐसे अवसरों पर अभिभावकों की अपेक्षित भूमिका यह होती है कि वे पूर्ण निष्ठा एवं वफादारी के साथ उपबोधक को अपना समय दें तथा अपेक्षित सामग्री उसे देने में संकोच न करें। उनके द्वारा प्रदत्त सूचनाओं की गोपनीयता का आश्वासन तो उन्हें एक कुशल उपबोधक से मिलना अनिवार्य है ही— यद्यपि उचित कहने की आवश्यकता न हो।

(ख) पर्यावरणीय सूचना सेवा— व्यक्ति की पर्यावरणीय सूचनाओं का प्राथमिक अभिविन्यास भी उसके कुटुम्ब में ही होता है। सर्वप्रथम वह अपने अभिभावकों के व्यवसायों से अनायास ही परिचित होता हुआ उन व्यवसायों के प्रति परिस्थिति के अनुसार मनोवृत्तियाँ भी बना लेता है। किसी व्यवसाय विशेष में यदि वह अपने माता पिता को प्रसन्न सफल सन्तुष्ट तथा सम्मानित पाता है तो अनजाने ही वह भी उनका पदगामानुगामी बनने की योजनाएं बनाने लगता है। इसके विपरीत अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में असन्तुष्ट अभिभावकों के बालकों के अचेतन में उस व्यवसाय के प्रति भी नकारात्मक अभिवृत्तियाँ बन जाती हैं।

अपनी व्यावसायिक रुचियों पर अभिभावकों के इस अप्रत्यक्ष एवं सहज स्वाभाविक प्रभाव के अतिरिक्त व्यक्ति की अभिवृत्तियाँ एवं भावी योजनाओं को अभिभावकगण प्रत्यक्ष रूप से भी प्रभावित करते हैं। कई महत्वाकांक्षी अभिभावक अपने बालकों को वह बनाना चाहते हैं जो कि वे स्वयं न बन सके। इनकी अतृप्त आकांक्षाओं का साकार स्वरूप वे अपने बच्चों की उपलब्धियों में ही देखकर इस प्रकार अपने अहम् की अप्रत्यक्ष तुष्टियाँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में एक आशंका यह रहती है कि अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति की कामना में वे अपने नवकिशोर पुत्र पुत्रियों के मनोवैज्ञानिक लक्षणों का ध्यान नहीं रखते। वस्तुतः अधिकांश अभिभावकों को तो इनके स्वरूप तथा महत्व के सम्बन्ध में अभिज्ञता भी नहीं रहती। ऐसी स्थिति में हम उनकी महती भूमिका के विषय में यही कहेंगे कि उन्हें उपबोधक से अपने पुत्र-पुत्री के मनोवैज्ञानिक लक्षणों तथा इन लक्षणों से सम्बन्धित शैक्षिक-व्यावसायिक अवसरों सम्बन्धी सूचनाओं की प्राप्ति करनी चाहिए। इन दोनों वैज्ञानिक सूचनाओं की समरसता के आधार पर छात्र को उचित शैक्षिक-व्यावसायिक-निर्देशन देने में उन्हें उपबोधक की वस्तुनिष्ठ सहायता करनी चाहिए।

शाला के निर्देशन-कार्यक्रम के अन्तर्गत आयोजित पर्यावरणीय सूचना प्रसारण में भी अभिभावकों को समुचित एवं सक्रिय रुचि लेना अपेक्षित है। इससे वे न केवल इन निर्देशन विधियों के प्रति छात्र की आस्था तथा अपने समुचित समञ्जन में उनकी वैज्ञानिक रुचि को सुदृढ़ करेंगे अपितु इस सम्बन्ध में स्वयं अपने आपको अधिक प्रबुद्ध कर सकेंगे।

(ग) उपबोधन सेवा— यदि यह कहा जाय कि व्यक्ति के माता पिता उसके प्रथम मत एवं महत्वपूर्ण उपबोधक हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आवश्यकता इस बात की है कि अपने अपेक्षाकृत व्यक्तिनिष्ठ अथवा आनुभविक उपबोधन को वे यथासम्भव शाला-उपबोधक के वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक उपबोधन की विपरीतता में न जाने दें। दूसरे शब्दों में— व्यक्ति के सम्बन्ध में अधिक सम्पूर्ण बोध विश्व सनीय सूचनाओं के आधार पर आयोजित उपबोधन का वे न केवल अवबोध प्राप्त करें अपितु उसके साथ समरसता स्थापित कर सकें।

(घ) नियोजन सेवा—समस्त सूचनाओं के परिप्रेक्ष्य में दिए गए उपागमन के आधार पर ही छात्र के शैक्षिक व्यावसायिक नियोजन की आयोजना बनानी होती है। इसमें पुनः अभिभावकों का समुचित सहयोग प्राप्त करके शाला निर्देशन कार्यक्रम को सफलता प्राप्त होती है। आयोजना के उपरान्त प्रत्यक्ष नियोजन में अभिभावकों के सहयोग की आवश्यकता और भी अधिक होती है। नियोजन की स्थिति परिवर्तन की होती है—और किसी भी परिवर्तन में समञ्जन अपेक्षित होता है। नवीन परिस्थितियों में व्यक्ति को समञ्जित हो सकने के लिये सहायता देने में अभिभावकों का अवलम्ब निर्देशन कार्यक्रम के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।

(ङ) अनुवर्ती सेवा—जैसा कि कहा जा चुका है अनुवर्ती सेवाओं का मुख्य कार्य मूल्यांकन से सम्बन्धित होता है। इस मूल्यांकन प्रक्रम में—चाहे वह छात्र प्रगति का हो अथवा शाला निर्देशन सेवाओं का—अभिभावकों की महत्वपूर्ण भूमिका निर्विवाद है। चूंकि वे शाला कार्य में प्रत्यक्ष रूप से अन्तग्रस्त नहीं होते इसलिए उनके द्वारा किया हुआ निर्देशन-सेवाओं का मूल्यांकन तुलनात्मक रूप से अधिक वस्तुनिष्ठ हो सकता है।

(५) समुदाय

शाला निर्देशन कार्यक्रम में स्थानीय समुदाय की सहयोगी भूमिकाओं की ओर हम स्थान स्थान पर संकेत कर चुके हैं। विशिष्ट विवेचन के रूप में निम्न दो बिन्दुओं के अन्तर्गत इस भूमिका का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

(क) अतिरिक्त निर्देशन सेवा—हम कह चुके हैं कि शाला की निर्देशन सेवाओं द्वारा ही छात्र की समस्त समस्याओं का हल नहीं खोजा जा सकता। इन समस्याओं के तदनुरूपी स्वरूप के कारण कुछ छात्र-समस्याएं ऐसी भी होती हैं जिन्हें शालेत्तर विशेषज्ञों के पास निर्देशित करना पड़ता है। इस प्रकार की कतिपय कठिनाइयों के उदाहरण हम अन्यत्र दे चुके हैं। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि समुदाय के विविध क्षेत्रीय विशेषज्ञों को ऐसे अवसरों पर छात्रों की समुचित सहायता करके निर्देशन कार्यक्रम में अपनी अतिरिक्त वैज्ञानिकों की भूमिकाएं निभानी चाहिए।

(ख) पर्यावरणीय सूचना प्रसारण—इस सेवा के नामानुसार इसके अन्तर्गत सूचना-सामग्री की अद्यतन उपलब्धि पर्यावरणीय केन्द्रों संस्थाओं तथा विशेषज्ञों

द्वारा ही हो सकती है। शाला निर्देशन कार्यक्रम में समुदाय पर्यावरणीय सूचना सेवा के संकलन तथा प्रसारण में निम्न दो प्रकार से सहायता कर सकता है।

एक तो शाला निर्देशन कार्यक्रम द्वारा आयोजित शक्षिक-व्यावसायिक भ्रमण व्यावसायिक वार्ताओं तथा व्यावसायिक दिवसों के आयोजन में समुदाय अपने विशेषज्ञ व्यक्तियों की सेवाएं न्यूनतम धनराशि स्वयं-सेवा सम्बन्धी अर्पण करके उन्हें सम्पुष्टि प्रदान कर सकता है।

इसके अतिरिक्त छात्रों को शक्षिक व्यावसायिक जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों से परिचित कराने के लिये आवश्यक है कि शक्षिक संस्थाओं तथा व्यावसायिक औद्योगिक केन्द्रों में छात्रों की पर्यवेक्षित विजिटस आयोजित की जावें। इन आयोजनाओं में आवश्यक सहयोग प्रदान करके ही समुदाय पर्यावरणीय सूचना प्रसारण के महत्वपूर्ण निर्देशन कार्य में अपनी भूमिका का समुचित रूपेण निर्वाह कर सकता है।

(६) छात्र

अंतिम किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निर्देशन कार्यक्रम में है-उन छात्रों की जिनके लिये निर्देशन कार्यक्रम की मूलतः आयोजना की जाती है।

छात्रों की भूमिका इस कार्यक्रम के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उसमें घुली मिली रहती है। सर्वप्रथम तो वे अपने विषय में आवश्यक सूचनाएं सही एवं निस्संकोच रूप से उपबोधक को देकर निर्देशन कार्यक्रम की नींव तैयार करते हैं। इस वैयक्तिक दत्त के विश्लेषण में भी यदि वे रुचि लें तो न केवल उनका स्वयं का अवबोध वर्धित होता है अपितु उनमें एक वस्तुनिष्ठ परिपक्वता का विकास होता है। शाला निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना आयोजन में वे विविध भाँति अपनी भूमिकाएं अदा करते हैं-जिनके उदाहरण-उनकी वैयक्तिक डायरियों आत्मकथाएं स्वपत्र विकास व्यावसायिक कार्नर आदि के वर्णन में हम दे चुके हैं। शक्षिक-व्यावसायिक भ्रमणों के आयोजन का भी अधिकांश उत्तरदायित्व छात्रों पर ही होना चाहिये। तत्पश्चात् उपबोधन का समय एक द्विमार्गी प्रक्रियाओं में सम्पन्न होना है तथा छात्र के सहयोग के बिना बहुत अग्रसर नहीं हो सकता।

अन्त में अपने स्वयं के विकास-समन्जन का तथा इस विकास-समायोजन हेतु आयोजित निर्देशन सेवाओं का सबसे सही मूल्यांकन स्वयं छात्रों द्वारा ही हो सकता है। इस वास्तविक भूमिका को निभाने में वे वस्तुतः अपने विकास तथा समन्जन की राह पर ही अधिक अग्रसर हो पाते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम आयोजन के विविध सोपान

इस अध्याय में अभी तक हमने निर्देशन कार्यक्रम संगठित करने के सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए विविध सम्भावित भागीदारों की भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों का अध्ययन किया। इस पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में निर्देशन-कार्यक्रम के व्यावहारिक आयोजन के कतिपय प्रकार्यात्मक चरणों का विवेचन क्षेत्रीय कार्य

कर्त्ताओं के लिये अर्थपूर्ण एवं सहायक रहेगा। इन चरणों के प्रस्तुतीकरण के पूर्व हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह प्रस्तुतीकरण केवल एक लचीली रूपरेखा के स्वरूप में ही दिया जा रहा है। प्रत्येक विद्यालय के लिए यह वांछनीय होगा कि इस निर्देशन-तन्त्र के परिप्रेक्ष्य में स्थानीय आवश्यकताओं तथा साधनों के अनुरूप अपने कार्य चरणों को निश्चित करें।

(१) निर्देशन आवश्यकताओं का सर्वेक्षण

यह तो एक तर्कसंगत तथ्य है कि किसी भी स्थानीय कार्यक्रम के अर्थपूर्ण हो सकने की एक महती पूर्वावश्यकता यह है कि उसके उद्देश्य कार्य विभाग आदि छात्रों की अनुभूत आवश्यकताओं के आधार पर ही निश्चित होनी चाहिए। तभी अध्यापक-वर्ग एवं स्थानीय समुदाय की भी उसमें आवश्यक सहयोग देने की रुचि होगी तथा छात्रगणों की उसमें वांछनीय आस्था उत्पन्न होगी। चूंकि निर्देशन-कार्यक्रम मूलतः छात्र केन्द्रित होता है इसलिए छात्रों की अनुभूत आवश्यकताओं का व्यवस्थित सर्वेक्षण ही निर्देशन कार्यक्रम का प्रथम एवं चरण होना चाहिये।

इस प्रकार का सर्वेक्षण करने हेतु प्रयोग में आ सकने वाले साधनों का संक्षिप्त व विवेचन निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) प्रमाणीकृत उपकरणों द्वारा

पश्चिम में तो इस प्रकार के सर्वेक्षणों के लिये प्रायः कुछ ऐसे प्रमाणीकृत उपकरण उपलब्ध होते हैं जिनके प्रशासन तथा अंकन के आधार पर छात्रों की अनुभूत कठिनाइयों का सरलता के साथ निदान किया जा सकता है। भारत में इस प्रकार का प्रामाणिक सर्वेक्षण करने योग्य सरल उपकरणों का प्रायः अभाव-सा है। किन्तु हम कतिपय ऐसे पश्चिमीय उपकरणों का यहां सुझाव देना चाहते हैं जो कि तुलनात्मक दृष्टि से सरलता युक्त हैं तथा जिनका प्रयोग आवश्यक सावधानीसहित भाषान्तर होकर किया जा सकता है।

(अ) मूनी प्राब्लम्स-चैक-लिस्ट

इस सरल उपकरण में छात्र के विविध जीवन-क्षेत्रों में से सम्भावित कठिनाइयों की सूची संकलित करदी गई है। छात्र से अपेक्षित है कि वह इस सूची को ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए अपने स्वयं पर लागू होने वाली कठिनाई को चिह्नांकित करता जावे। प्रत्येक क्षेत्र में अंकित कठिनाइयों की स्वतन्त्र एवं सामूहिक रूप से गणना करने का इस सूची के प्रारूप में समुचित प्रावधान है। शाला के समस्त छात्रों द्वारा पूरित सूची-प्रारूपों का विश्लेषण शाला में छात्रों द्वारा सामान्यतः अनुभूत समस्याओं का एक वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर देता है जोकि निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन हेतु एक वृहद निर्देशन-तन्त्र प्रस्तुत करता है।

यदि मूनी प्राब्लम्स चैक लिस्ट में दी गई समस्याएं किसी शाला को किसी प्रकार अनुपयुक्त-प्रतीत हों तो इस सरल प्रारूप को ध्यान में रखकर स्थानीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस प्रकार की सूची बनाई जा सकती है।

(आ) वाक्य पूर्ति सूचियां

इन उपकरणों की गणना अब प्रक्षेपण प्राविधियों के अन्तर्गत की जा सकती है। वाक्य के प्रारम्भ में या अथवा अन्त के कुछ शब्द अथवा शब्द समूह देकर छात्रों को अपनी अनुभूत भावनाओं के अनुसार वाक्य-पूर्ति करने को कहा जाता है। इस प्रकार कराई गई वाक्य पूर्तियों के मूल में यह अभिप्रेत होता है कि वाक्य पूर्ति करते समय व्यक्ति अनायास ही अपनी अचेतन आकांक्षाओं, मन्तव्यों, आशंकाओं आदि को अपनी वाक्य रचना में प्रक्षेपण कर देता है। पश्चिम में इस प्रकार की सूचियां उपलब्ध हैं। या तो उन्हीं का प्रयोग करके उनका विश्लेषण स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है अथवा विद्यालयी आवश्यकताओं के अनुरूप ही इस प्रकार की सूचियों का निर्माण किया जा सकता है।

(ख) शिक्षक-निर्मित साधनों का उपयोग

उक्त सुझाव के अनुवर्तन में ही इस महत्वपूर्ण बिन्दु को कुछ अधिक विशद रूप से जानना समीचीन होगा।

हमारे विचार में निर्देशन कार्यक्रम के किसी भी स्तर पर शिक्षक निर्मित साधनों का उपयोग इसलिये लाभदायक रहेगा कि इसमें उन्हें कार्यक्रम को अपनी निजी कृति मान कर उसमें अन्तरंग रूप से अन्तर्ग्रस्त हो सकने की सहज प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

सामान्यतः ये साधन प्रश्नावली, समस्या सूची, जीवन-वृत्त, आख्यानात्मक लेख आदि के रूप में हो सकते हैं। इनका विशद विवेचन अगले अध्याय में विशिष्ट रूप से किया जायगा। यहाँ पर तो हम केवल इस तथ्य पर बल देना चाहते हैं कि निर्देशन कार्यक्रम की आयोजना करने के पूर्व छात्रों की वास्तविक आवश्यकताओं तथा अनुभूत समस्याओं का समुचित सर्वेक्षण कर लेना एक वैध प्राथमिक चरण होगा।

(२) स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण एवं उपयोग

छात्र आवश्यकताओं का सर्वेक्षण कर चुकने पर निर्देशन कार्यक्रम आयोजन का द्वितीय स्वाभाविक चरण होना चाहिये उपलब्ध साधन-सुविधाओं का मूल्य निर्धारण। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि जितने अधिक साधन उपलब्ध होंगे उतनी ही कार्यक्रम की सम्पन्नता में वृद्धि होगी। किन्तु यह आदर्श स्थिति सर्वत्र सम्भव नहीं हो सकती। वस्तुतः आदर्श की व्याख्या भी किसी स्थान की सामान्य साधन सम्पन्नता के सन्दर्भ में ही की जा सकती है। विशेषकर भारत की परिस्थिति में जहाँ पर निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा के लिये ही समुचित साधनों का अभाव है—एक निर्देशन कार्यक्रम के लिये साधनों का जोड़ना यन्त्रिमगन मनवाला प्रायः कठिन हो जाता है।

यहाँ पर हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि तकनीकी निर्देशन कार्यक्रम से सम्बन्धित जितनी प्रवृत्तियां शाला में सामान्यतः प्रचलित होती हैं उनका लेखा

जोखा करके उनकी समुन्नति का प्रयत्न किया जावे। हमारी इस मान्यता के पोषण में नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) संचयात्मक लेख

कई वर्तमान शालाओं में छात्रों के वैयक्तिक संचयात्मक लेख रखने का नियम-सा हो चला है। इन्हीं लेखों का वैयक्तिक अनुसूची सेवा के रूप में विकास किया जा सकता है।

(ख) दल-व्यवस्था—कुछ शालाओं में छात्रों के लिये दल-व्यवस्था की जाती है। इसका निर्माण प्रायः कक्षा के आधार पर ही होता है। प्रत्येक कक्षा अथवा दल के लिये कक्षा का मुख्य अध्यापक उत्तरदायी होता है। अध्यापक के इस दत्त उत्तरदायित्व का सीमा विस्तार शैक्षिक क्षेत्र से बाहर छात्र के अन्य जीवन आयामों में भी किया जा सकता है और इस प्रकार छात्र के सर्वांगीण विकास एवं समंजन के प्रति भी अध्यापक को अधिक संवेदनशील बनाया जा सकता है। इस वांछनीय संवेदनशीलता का यदि शाला उपबोधक के निर्देशन-नेतृत्व से समुचित तार तम्य बिठाया जा सके तो उसे इस कार्यक्रम में अध्यापकों का वांछनीय सहयोग प्राप्त करने में बहुत सहायता मिल सकती है। अपने दल कार्य में ही वह विविध निर्देशन उपकरणों का प्रयोग करके अपने कार्य को अधिक वैज्ञानिक बनाते हुए निर्देशन सेवाओं की भी पुष्टि प्रदान कर सकता है।

(ग) शनिवारीय सभाएं— वर्तमान शालाओं में आजकल यह प्रवृत्ति भी प्रचलित हो चली है कि सप्ताह में एक दिन—सामान्यतः शनिवार—के अधिकांश समय का उपयोग कतिपय शालेतर प्रवृत्तियों में भी किया जाता है। इन शालेतर प्रवृत्तियों के स्वरूप निरूपण में भी निर्देशन-कार्यक्रम की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जा सकता है। उदाहरणार्थ इस समय आयोजित वार्ताओं के अन्तर्गत कतिपय शिक्षा शास्त्री अथवा औद्योगिक विशेषज्ञों की वार्ताओं की व्यवस्था की जा सकती है। इस दिन के निये नियोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में व्यावसायिक विषयों पर विद्यार्थियों के प्राशु भाषणों की व्यवस्था करके उन्हें व्यवसाय संसार सम्बन्धी अद्यतन सूचनाएं संकलित करने के लिये प्रेरणा दी जा सकती है। शाला में स्थापित व्यवसाय-क्लब के प्रतिवेदन अथवा उसके कार्यों के सम्बन्ध की प्रदर्शनी इत्यादि द्वारा भी निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना सेवा को पुष्टि प्राप्त होगी।

(घ) प्रातः प्रार्थना सभा—कई विद्यालयों में प्रातः प्रार्थना-सभा के कार्यक्रम के अन्तर्गत सूचना प्रसारण की प्रवृत्ति समाहित की जाती है। शाला के कुछ चयनित छात्र अद्यतन सूचनाएं तैयार करके उन्हें समस्त शाला समूह के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार की नमी सूचनाओं के साथ सप्ताह में एकाध बार शैक्षिक-व्यावसायिक पर्यावरण के सम्बन्ध में अद्यतन सूचना-संग्रह तथा प्रसारण हेतु छात्रों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे छात्र एवं अध्यापक—दोनों के हेतु निर्देशन-अभिविन्यास में सहायता मिलेगी।

(ड) शिक्षक-अभिभावक-सम्मेलन—इस प्रकार के सम्मेलन भी हमारी वर्तमान प्रगतिगामी शालाओं की नयी प्रवृत्तियां के अन्तर्गत आ चुके हैं। हमारे विचार में ये सम्मेलन निर्देशन कार्यक्रम की दृष्टि से एक स्वर्ण—अवसर हैं जबकि निर्देशन में अभिभावकों की आवश्यक रुचि व सहयोग का अनायास ही प्राप्ति हो सकता है। यह वह सम्मेलन है जिसमें अभिभावक तथा शिक्षक छात्र की सम्भावित समस्याएं तथा उनकी स्वयं की अनुभूत कठिनाइयों के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते हैं तथा उनके निवारण का प्रयत्न कर सकते हैं। निर्देशन कार्यक्रम का प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक सम्बन्ध इस प्रकार की कठिनाइयों के अवरोधन से होता है। इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण विषय जिस पर इस समय चर्चा की जा सकती है वह है छात्र की भविष्य में शैक्षिक-व्यावसायिक आयोजनाओं की सम्भावनाएं तथा उनका मूल्य निर्धारण। इस सम्बन्ध छात्रों की वास्तविक तस्वीर एवं पर्यावरण के उपलब्ध अवसरों के पारस्परिक मिलान द्वारा अभिभावकों को छात्रों के सही मार्गदर्शन के लिये प्रेरित किया जा सकता है—या यों कहें कि उन्हें इस विषय में अधिक प्रबुद्ध बनाकर उनकी भावी महत्वाकांक्षाओं को अधिक वास्तविक एवं व्यावहारिक स्वरूप दे सकते हैं।

(ढ) कक्षा कार्य—नमी कक्षा-कार्य का भी निर्देशन आवश्यकताओं के निमित्त सर्वेक्षण एवं पूर्ति के लिये समुचित उपयोग किया जा सकता है। नीचे कुछ इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—जिनके आधार पर शाला—कार्मिक इस प्रकार की निर्देशन अभिविन्यासित कक्षा प्रक्रियाएं और भी सोच सकते हैं।

(अ) जीवन वृत्तीय लेख

साहित्य एवं भाषा अध्ययन की कक्षाओं में प्रायः एक सामान्य आवश्यकता होती है निबंध लेखन। अध्यापक अपने सृजनात्मक चिंतन के आधार पर कुछ ऐसे विषय सोच सकते हैं जिनमें विद्यार्थी अपनी आशाओं निराशाओं, आकांक्षाओं आशंकाओं प्रातियों मान्यताओं आदि से सम्बन्धित अपने भाव अभिव्यक्त कर सकें। यदि अध्यापक छात्र सामरस्य उचितकोटि का है तो इस प्रकार के लेखों में छात्रों के प्रान्तरिक व्यक्तित्व की कई महत्वपूर्ण झलक उपलब्ध हो सकती हैं जोकि उनके विकास एवं समायोजन में सहायता देने हेतु मूल्यवान सामग्री प्रदान करती हैं। इस प्रकार के लेख शीर्षकों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—

—मेरे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दिवस।

—मेरी महत्वाकांक्षा।

—एक भग्नाशापूर्ण अनुभूति।

—मैं क्या बनना चाहूंगा।

—यदि मैं प्रधानाध्यापक होता।

—यदि मैं शिक्षा-मन्त्री होता।

—यदि मैं प्रधानाध्यापक होता।

(आ) सामाजिक विज्ञान के विषय

सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन अध्यापन में कई पर्यावरणीय तथ्यों का समावेश बड़ी स्वाभाविकता से किया जा सकता है। स्थानीय भौगोलिक ऐतिहासिक वास्तविकताओं के सन्दर्भ में जीवन एवं कार्य परिस्थितियां तात्कालिक औद्योगिक व्यवस्थाएं एवं सम्भावनाएं, विविध व्यवसायों के आर्थिक सामाजिक स्तर आदि ये ऐसे महत्वपूर्ण ज्ञान बिन्दु है जिनका प्रेषण इतिहास भूगोल सामाजिक ज्ञान आदि के अध्यापन में छात्रों तक किया जा सकता है।

(इ) कार्मिकों के तत्परता-स्तर का निर्माण

निर्देशन-कार्यक्रम के संगठन-सिद्धान्तों में हमने कार्मिकों के तत्परता स्तर का एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया था। तदनुसार इस वाञ्छनीय स्तर तक कार्मिकों को पहुँचाना निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन का एक प्रमुख चरण रहेगा। इन कार्मिकों में वे सभी व्यक्ति समाहित हैं जिनकी विशिष्ट निर्देशन भूमिकाओं का वर्णन हम अध्याय के पूर्वांश में कर चुके हैं। इन सभी कार्मिकों को अपने विशिष्ट उत्तरदायित्वों के सन्दर्भ में निर्देशन अभिविन्यास प्रदान करना एक सफल एवं सक्षम निर्देशन कार्यक्रम की महती पूर्वावश्यकता होती है।

यह अभिविन्यास बैठकों वार्ताओं कार्य गोष्ठियों स्थानीय भ्रमणों साहित्य प्रसारण आदि के माध्यम से किया जा सकता है। अगले अध्यायों में इन सभी विधाओं के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत चर्चा की जायेगी।

जिस मुख्य कार्य चरण के सन्दर्भ में ये बातें कही जा रही है वह है कार्मिकों का तत्परता स्तर। बिना उनकी कार्य-तत्परता के निर्देशन कार्यक्रम नहीं चल सकता। उपबोधक को उनके सक्रिय सहयोग के बिना एक पद भी अग्रसर करना दूभर है। और बिना कार्य-तत्परता के यह वाञ्छनीय सहयोग केवल एक आदर्श आवश्यकता की धारणा के स्तर तक ही सीमित रह जायगा।

(४) समितियों का निर्माण

छात्र के बहुमुखी समायोजन एवं सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित होने के कारण निर्देशन सेवाएं एक संगठित कार्य-व्यवस्था है। इस आवश्यक संगठितता को साथ लिए हुए भी सरल संयम एवं स्वार्थ-विहीन संचालन का एक उपाय यह हो सकता है कि इसके अन्तर्गत अपेक्षित विविध प्रक्रियाओं के लिए विभिन्न समितियों का निर्माण कर दिया जाय। उदाहरणार्थ कुछ अध्यापकों को छात्रों की वैयक्तिक सूचनाओं के रखने का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है तथा कुछ अन्य कार्मिकों को पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन व्यवस्थीकरण एवं प्रसारण विषयक कर्तव्य दिए जा सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार वैयक्तिक तथा सामूहिक उत्तरदायित्वों के निर्धारण तथा इनसे सम्बन्धित समितियों के निर्माण में कार्मिकों की व्यक्तिगत रुचियों योग्यताओं तथा अभिक्षमताओं का पूरा ध्यान रखा जाना

चाहिए। वस्तुत आदर्श स्थिति तो यह होगी कि प्रस्तावित निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा एव उसके अन्तर्गत आयोजित कार्यों से अभिविन्यासित हो जाने के उपरान्त कार्मिक स्वय अपने रुचि क्षेत्र से सम्बन्धित उत्तरदायित्व के लिए स्वय आग्रह कर । इस प्रकार के पूर्व आयोजनाओं के आधार पर किया हुआ उत्तरदायित्व वितरण सामान्यत अधिक सक्षम एव प्रभावशाली होता है।

सक्षेप म यह एक सामान्य निर्देशन कार्यक्रम सयोजित करने के पूर्व चरणो की एक सक्षिप्त रूपरेखा । विशेषकर वर्तमान भारतीय परिस्थितियो के अन्तर्गत एक सम्भावित न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम के स्वरूप तथा उसके आयोजन चरणो का विशद विवेचन पुस्तक के अन्तिम अध्याय म किया जाएगा।

उपसहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय का मूल उद्देश्य था एक व्यावहारिक निर्देशन-कार्यक्रम के प्रत्यक्ष सगठन के विषय म वाचको को सामान्यत अभिविन्यासित करना। तदनुसार सर्वप्रथम सगठन के कतिपय मूलभूत सिद्धान्तों का सक्षिप्त विवेचन विषय की एक वध पृष्ठभूमि के रूप म प्रस्तुत किया गया। इस पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य म ही हमने विविध निर्देशन-कार्मिकों की विशिष्ट कार्य भूमिकाओं का विशद अवबोध प्राप्त करने का प्रयास किया। अध्याय के अन्तिम अश म एक निर्देशन कार्यक्रम को प्रकार्यात्मक रूप से आयोजित करने हेतु आवश्यक कतिपय कार्य चरणो का सक्षिप्त निरूपण किया।

अबतक के प्रस्तुत अध्यायो म से उद्भूत विविध महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का विस्तृत विवचन अगले अध्यायो म किया जाएगा।

६

व्यक्ति के अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्रविधियाँ एव साधन

[प्रस्तावना व्यक्ति के अध्ययन का विभिन्न क्षेत्रों मे उपयोग व्यक्ति अध्ययन सम्बन्धी कुछ प्रमुख सिद्धान्त–(१) विविधता (२) व्यापकता (३) विश्वसनीयता वैयक्तिक सूचनाओ के स्रोत वैयक्तिक सूचनाओं के क्षेत्र वैयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्रविधिया —

(१) प्रेक्षण— (क) वैज्ञानिक प्रेक्षण के लक्षण (अ) उद्देश्य निर्धारण (आ) योजना (इ) परिणामो का अभिलेखन (ई) उपयुक्त नियन्त्रण (ख) प्रेक्षण का उपयोग (अ) बालक का कक्षा मे प्रेक्षण (आ) बालक का पाठ्यसहगामी प्रवृत्तियो मे प्रेक्षण (इ) बालक का अन्य परिस्थितियो मे प्रेक्षण (ग) प्रेक्षण के प्रकार (अ) नियन्त्रित एव अनियन्त्रित प्रेक्षण (आ) भाग ग्राही एव भाग अग्राही प्रेक्षण (घ) प्रेक्षण प्रविधि की सीमाए (अ) प्रेक्षण के अवसर की अनिश्चितता, (आ) प्रत्यक्ष व्यवहार का प्रेक्षण सभव नही (इ) प्रेक्षक के पूर्वाग्रहो का प्रभाव (ई) प्रेक्षक का प्रशिक्षण।

(२) साक्षात्कार— (क) साक्षात्कार के लाभ (अ) महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होने की सम्भावना (आ) साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओ का महत्त्व (इ) सूचनाओ के स्पष्टीकरण की सम्भावना (ई) सूचनाओ की पृष्ठभूमि का पता लगाना (उ) अन्य प्रविधियो एव साधनो से प्राप्त सूचनाओ की सपुष्टि एव सत्यापन (ख) साक्षात्कार की सीमाए (अ) व्यक्तिनिष्ठ प्रविधि (आ) प्रशिक्षण की आवश्यकता (इ) समय एव श्रम का अधिक व्यय (ग) साक्षात्कार के उपयोग (अ) व्यक्ति की भविष्य योजनाए एव आकाक्षा स्तर (आ) व्यक्ति की अभिव्यक्त अभिरुचिया (इ) व्यक्ति के शीलगुण (ई) मानसिक द्वन्द्व एव समन्जन समस्याए (उ) पारिवारिक सूचनाए (ऊ) शालीय जीवन सम्बन्धी सूचनाए (ए) छात्र के सम आयु साथी (घ) साक्षात्कार के प्रकार (अ) सरचित साक्षात्कार (आ) अ–सरचित साक्षात्कार (ङ) साक्षात्कार के कुछ प्रमुख सिद्धान्त— (अ) साक्षात्कृत से तादात्म्य (आ) सूचनाओ की गोपनीयता (इ) साक्षात्कार का वातावरण (ई) साक्षात्कार के परिणामो का

अभिनयन (उ) साक्षात्कार का समापन (च) साक्षात्कार कर्ता के कुछ वाञ्छनीय गुण।

( ) समाजमिति— (क) समाजमिति स्तर का अध्ययन (ख) आत्मप्रिय तथा व तिरस्कृत गम्य (ग) समाज आरेख।

वयक्तिक अध्ययन के साधन— (१) मानवीकृत साधन (क) निमित एव निष्पादन साधन। (अ) निमित साधन (१) निमित साधना का उपयोग (२) निमित साधना के प्रकार परीक्षण—(१) बुद्धि परीक्षण (२) अभिक्षमता परीक्षण (३) निदानात्मक परीक्षण (४ उपलब्धि परीक्षण सूचियाँ विह्वावन सूचियाँ प्रक्षेपी प्रविधियाँ – रोशा परीक्षण टी ए टी परीक्षण अन्य प्रक्षेपी विधियाँ। (आ) निष्पादन साधन (१) बुद्धिमापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण (२) अभिक्षमता मापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण।

(ख) वयक्तिक एव सामूहिक साधन (अ) वयक्तिक साधन (आ) सामूहिक साधन

(२) अमानवीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधन— (क) निर्धारण मापनी (अ) निर्धारण मापनी के लाभ (आ) निर्धारण मापनी के निर्माण एव उपयोग सम्बन्धी कुछ प्रमुख सावधानियाँ (ग) उपाख्यान वृत्त (अ) उपाख्यान वृत्त का महत्व (आ) उपाख्यानवृत्त की आवश्यकता ( ) उपाख्यानवृत्त में किन घटनाओं का समावेश किया जाय।

(३) आत्म विवरणात्मक साधन – (क) आत्मकथा (ख) घटना विवरण (ग) प्रश्नावलियाँ।

(४) **वयक्तिक सूचना सकलन हेतु प्रयुक्त साधनों के उपयोग के प्रमुख सिद्धान्त—** *(क) मानवीकृत साधना के उपयोग के सिद्धान्त (अ) मानवीकरण सम्बन्धी सूचनाए (आ) साधन की उपयुक्तता (इ) साधन से प्राप्त दत्त (ई) साधन के उपयोग से पूर्व उससे पूर्ण परिचित होना (उ प्रशासन के समय सावधानियाँ (ऊ) परीक्षणों के परिणाम (ए) मानवीकृत साधन ही एकमात्र साधन नहीं (ए) भारत में परीक्षणों के प्रयोग की विशेष सावधानियाँ (ख) अमानवीकृत साधना के उपयोग के सिद्धान्त—(अ) निर्माण के प्रमुख साधन (आ) उपयोग से सम्बन्धित सावधानियाँ*

भारत में उपलब्ध परीक्षणों के कुछ उदाहरण

बुद्धि परीक्षण व्यक्तित्व परीक्षण अभिरुचि परीक्षण अभिक्षमता परीक्षण।

उपसंहारात्मक कथन ?

निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य है व्यक्ति में अपनी समस्याए स्वतन्त्रता से सुलझाने की क्षमता उत्पन्न करना अथवा विविध पक्षीय जीवन सम्बन्धी विभिन्न निश्चय स्वयं बुद्धिमत्ता पूर्ण एव स्वतन्त्रता से ले सकने की क्षमता उत्पन्न करना। यह तभी सम्भव हो सकता है जब एक ओर व्यक्ति को अपने सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी हो तथा दूसरी ओर जिस वातावरण से सम्बन्धित समस्या उद्भूत

हुई है उसका पूर्ण परिचय हो। यदि व्यक्ति अपनी विशेषताओं एवं सीमितताओं को ध्यान में रखते हुए कोई निर्णय लेता है अथवा कोई योजना बनाता है तो वह अधिक वास्तविक वादी होगा। अनेक बार या तो बालक स्वयं अथवा उनके माता पिता बालक की योग्यताओं अथवा गुणों की वस्तुस्थिति को समझे बिना शैक्षिक अथवा व्यावसायिक चयन सम्बन्धी निर्णय ले लेते हैं और फलस्वरूप बालक एवं अभिभावक दोनों को निराशा का मुँह देखना पड़ता है। विज्ञान विषय लेने के लिए तो शालाओं में प्रत्येक विद्यार्थी आतुर रहता है चाहे उसमें अनिवार्य योग्यताएं क्षमताएं हों अथवा न हों। अनेक बार तो समझदार विद्यार्थी अथवा माता पिता आवश्यक जानकारी के अभाव में भी त्रुटिपूर्ण निर्णय ले बैठते हैं। व्यक्ति के सम्बन्ध की जानकारी के आधार पर उचित निर्णय लेने से व्यक्ति को तो संतोष प्राप्त होगा ही साथ साथ राष्ट्रीय मानवीय ऊर्जा का भी संरक्षण सम्भव हो सकेगा।

व्यक्ति अध्ययन का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग

यदि व्यक्ति अध्ययन के फलस्वरूप वैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाओं का संग्रह किया जाय तो इसका उपयोग अनेक परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। यद्यपि इसके महत्त्व का वर्णन अध्याय ४ में विस्तृत रूप से किया गया है फिर भी इस अध्याय के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख तथ्यों की पुनरावृत्ति कदाचित यथोचित सिद्ध हो सकती है। जैसा उपरोक्त अनुच्छेद में कहा गया है कि बालक को जीवन की अन्यान्य परिस्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्ण एवं स्वतन्त्र निर्णय लेने में उसके सम्बन्ध की जानकारी अनिवार्य होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों के लिए भी यह सूचनाएं अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकती है। यदि शिक्षक अपने छात्रों की विशेषताओं सीमितताओं से पूर्णरूप से भिज्ञ है तो वह अध्ययन अध्यापन परिस्थितियों का निर्माण अधिक कुशलता से कर सकता है। साथ ही वह कक्षा में बालकों द्वारा निर्मित समस्याओं को भी अधिक अच्छे ढंग से सुलझा सकता है। पाठ्यचर्या निर्माण कर्ताओं एवं शाला प्रशासकों के लिए भी इन सूचनाओं का अत्यधिक महत्त्व है। माता पिताओं एवं अभिभावकों के लिए तो अपने बच्चे की विशिष्टताओं एवं सामान्यताओं का जानना अनेक परिस्थितियों में उपयुक्त निर्णय लेने के लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। उपबोधन सेवा का तो आधार ही व्यक्ति के सम्बन्ध का पूर्ण विश्वसनीय वैज्ञानिक ढंग से एकत्रित की हुई सूचनाएं हैं। बिना पर्याप्त सूचनाओं के उपबोधक उपबोध्य को किसी समस्या के हल ढूंढने में सहायता ही नहीं प्रदान कर सकता। व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाओं के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए निर्देशन सेवाओं में से एक सम्पूर्ण सेवा—वैयक्तिक सूचना सेवा—का गठन किया गया है। जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्बन्धित आवश्यक सूचनाओं का संकलन विश्लेषण वर्गीकरण मिसिलीकरण निर्वचन एवं उपयोग विधिवत ढंग से किया जाता है।

व्यक्ति अध्ययन सम्बन्धी कुछ प्रमुख सिद्धान्त

(१) विविधता—व्यक्ति का जीवन इतना जटिल है कि उसके जीवन के किसी भी क्षेत्र की समस्या का सही हल तबतक नहीं ढूँढा जा सकता जबतक उसके जीवन के विविध पक्षों सम्बन्धी पूर्ण जानकारी हम न हो। अत व्यक्ति के बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना निर्देशन कार्यकर्ता के लिए आवश्यक हो जाता है। विभिन्न क्षेत्रों के घनिष्ठ अन्तसम्बन्धों को चिकित्साशास्त्र के उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। अनेक बार देखने को मिलता है कि रोगी के पेट के विकार के निदान एव उपचार के लिए चिकित्सक रक्त मल मूत्र आदि का परीक्षण करता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए शायद इतने परीक्षण अनावश्यक लगे किन्तु विशेषज्ञ यह जानता है कि रोग के लक्षण एक क्षेत्र में हो सकते हैं तथा कारण शरीर के किसी अन्य क्षेत्र में। अत रोग के समुचित निदान हेतु शरीर सम्बन्धी अधिक से अधिक वैज्ञानिक सूचनाए एकत्रित करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(२) व्यापकता—व्यापकता से हमारा तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के सम्बन्ध की सूचनाए जितनी लम्बी अवधि की होगी उतनी ही उनमें अधिक विश्वसनीयता होगी एव उन सूचनाओं की उपयोगिता भी बढ जायगी। पुन चिकित्साशास्त्र के ही उदाहरण को लेते हुए इस बिन्दु को स्पष्ट करना चाहेंगे। एक चिकित्सक रोगी के रोग का निदान करने से पूर्व उससे उस रोग का इतिहास पूछता है। तात्कालिक जानकारी के आधार पर हो सकता है कि त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाला जाय। वैसे भी यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि सीमित तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष सम्पूर्ण तथ्यों पर आधारित निष्कर्षों से विश्वसनीय होते हैं। व्यक्ति के किसी एक व्यवहार के आधार पर उसके शीलगुणों का अनुमान लगा लेना न तो उचित होगा न ही विश्वसनीय। जबतक व्यक्ति का लम्बे समय तक अध्ययन कर उसके सम्बन्ध की पर्याप्त सूचनाए हम एकत्रित नहीं कर लेते तबतक हम कोई अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए।

(३) विश्वसनीयता व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाओं को एकत्रित करने का एक सिद्धान्त यह भी है कि जो भी सूचनाए हम एकत्रित करे वे विश्वसनीय हो। इस अध्याय में हम व्यक्तिक सूचनाओं को एकत्रित करने की विभिन्न प्रविधियों एव साधनों की चर्चा करेंगे। परन्तु सूचना एकत्रित करने वाले व्यक्ति को प्रविधि अथवा साधन का चयन करते समय यह देख लेना चाहिए कि विशिष्ट परिस्थितियों मे कौन सा साधन अथवा प्रविधि अत्यधिक विश्वसनीय सूचना प्राप्त करने में सहायक हो सकती है। एक परिस्थिति में जो साधन या प्रविधि उपादेय सिद्ध हो सकती है शायद दूसरी परिस्थिति में उसकी इतनी उपादेयता न हो। दूसरा तथ्य यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक ही स्रोत पर आधारित सूचना के स्थान पर यदि

हम विविध स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त कर उनका संकलन विश्लेषण करें तो शायद हम अधिक विश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

वैयक्तिक सूचनाओं के स्रोत

निर्देशन कार्यकर्ता को वैयक्तिक सूचनाओं को अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने हेतु किसी एक स्रोत से प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। जितने अधिक से अधिक स्रोतों से सूचनाओं का संकलन किया जायेगा सूचनाओं का संग्रह उतना ही अधिक सारगर्भित हो सकेगा। इस कथन के संदर्भ में ही यहां वैयक्तिक सूचनाओं के कौन-कौन से स्रोत हो सकते हैं इसका उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। सर्वप्रथम तो जिस व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित की जा रही हैं वह स्वयं सूचनाओं का एक महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है। उस व्यक्ति के सहयोग बिना वैयक्तिक सूचनाओं का संकलन अपूर्ण ही रहेगा। जैसाकि अध्याय ४ में लिखा जा चुका है कि व्यक्ति के प्राथमिक अभिज्ञानधारण दत्त से लेकर उसकी भविष्य योजनाओं सम्बन्धी प्रत्येक सूचना में हमें उस व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाएं केवल उसी व्यक्ति से ही प्राप्त हो सकती हैं। बल्कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इन सूचनाओं की व्यक्तिनिष्ठता को कम करने हेतु यह अनिवार्य हो जाता है कि हम व्यक्ति से प्राप्त सूचनाओं का सम्पुष्टिकरण एवं सत्यापन अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं से करें। इन अन्य स्रोतों में व्यक्ति के अभिभावक अथवा घर के अन्य सदस्य समव्यायुसार्थी अध्यापक प्रधानाध्यापक उल्लेखनीय हैं। अध्यापकों से छात्रों की समन्जन समस्याओं शालीय उपलब्धियों अभिरुचियों सामाजिक गुणों अध्ययन आदतों अथवा अन्य आदतों समव्यायुसाथियों के अन्तःसम्बन्धों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। अभिभावकों से बालक की आदतों अभिरुचियों घर के अन्य सदस्यों के साथ समन्जन अथवा अन्य सामाजिक आर्थिक दत्त सामग्री प्राप्त की जा सकती है। बालक की किसी भी समस्या के हल हेतु उसके घर की पृष्ठभूमि का जबतक हमें पूर्णज्ञान नहीं होगा हम समस्या का समुचित हल ढूंढने में उसे सहायता प्रदान नहीं कर सकते। बालक के मित्रों से भी हम उसके विभिन्न गुणों उसके समाजमितिक स्तर रुचियों आदि का पता लगा सकते हैं। साथ ही यह भी ज्ञान हो सकता है कि बालक किस प्रकार के छात्रों में रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपरोक्त वर्णित विभिन्न स्रोतों से हमें व्यक्ति के सम्बन्ध की सम्पन्न दत्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। और अधिक से अधिक स्रोतों से जानकारी प्राप्त कर हम उन सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं वस्तुनिष्ठता को मापन कर सकते हैं।

वैयक्तिक सूचनाओं के क्षेत्र—

निर्देशन कार्यकर्ता को सामान्यतया व्यक्ति से सम्बन्धित जिन क्षेत्रों की जान

कारी उपयोगी सिद्ध हो सकती है इसकी विषद विवेचना चतुर्थ अध्याय में की जा चुकी है इनमें व्यक्ति के अभिनिर्धारण दत्त शारीरिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी दत्त शालीय उपलब्धियाँ मनोवैज्ञानिक दत्त आकांक्षाएं भविष्य योजनाएं आदि प्रमुख हैं। इन विभिन्न प्रकार की दत्त सामग्रियों को एकत्रित करने हेतु निर्देशन कार्यकर्ता को विभिन्न प्रकार की प्रविधियां एवं साधनों का उपयोग करना पड़ता है जिनका वर्णन आगे के अनुच्छेदों में किया जावेगा। इन प्रविधियों का केवल वर्णन मात्र ही नहीं अपितु इनके उपयोग सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों का भी यथास्थान प्रतिपादन किया जायगा। अन्त में भारतीय निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की जानकारी हेतु भारत में उपलब्ध कुछ साधनों का भी उल्लेख किया जायगा।

वैयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्राविधियां

व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित करने की तीन प्रमुख प्रविधियों की हम यहाँ पर चर्चा करेंगे जो हैं—प्रेक्षण साक्षात्कार एवं समाजमिति।

(१) प्रक्षण—प्रक्षण का उपयोग वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति दैनन्दिन अपने जीवन में करता है। हम किसी सुन्दर दृश्य दुर्घटना सड़क पर हो रहे झगड़े शान्ति भंग परिस्थितियों का प्रेक्षण करते हैं। इसी प्रकार हम जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं उनकी आदतों रुचियों गुण एवं कमियों का अनुमान अपने प्रक्षणों के आधार पर लगाते हैं। प्रेक्षण के आधार पर सूचनाओं का संकलन करना यह कोई नई विधि नहीं है। वैज्ञानिक प्रेक्षण एवं सामान्य प्रेक्षण में अन्तर यह है कि वैज्ञानिक प्रेक्षण अधिक सोद्देश्य सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित ढंग से किया जाता है तथा प्रेक्षक इस कला में प्रशिक्षित होता है। जबकि सामान्य प्रेक्षणों में इतनी सुनियोजितता नहीं होती। प्रेक्षण को वैज्ञानिक बनाने हेतु हम निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

(क) वैज्ञानिक प्रक्षण के लक्षण

(अ) उद्देश्य निर्धारण—प्रेक्षण करने से पूर्व हम यह निर्धारित कर लेना चाहिये कि हम व्यक्ति के व्यक्तित्व के कौनसे पक्ष का प्रेक्षण करने जा रहे हैं। यदि प्रेक्षण के उद्देश्य स्पष्ट न होंगे तो हम ऐसी अनावश्यक दत्त सामग्री एकत्रित करने में हमारा समय नष्ट करेंगे जोकि शायद हमारे लिये सहयोगी सिद्ध न हो। यदि हम व्यक्ति की रुचियों के अध्ययन हेतु प्रेक्षण प्रविधि का उपयोग करना है और हम उसके रंग रूप बोलने के ढंग पोशाक आदि सम्बन्धी प्रेक्षणों में हमारा समय नष्ट करेंगे तो वह नितान्त निरर्थक होगा।

(आ) योजना—प्रेक्षण करने से पूर्व प्रेक्षण की सम्पूर्ण योजना बना लेनी चाहिये। किस समय किन परिस्थितियों में कितनी अवधि के लिये कौन-कौन से व्यवहारों को देखना है इसकी यदि हमारे मस्तिष्क में स्पष्ट रूपरेखा होगी तो हम प्रेक्षण से महत्त्वपूर्ण दत्त एकत्रित कर सकेंगे। आकस्मिक प्रेक्षणों से महत्त्वपूर्ण एवं

हमारे उद्देश्य स सम्बन्धित सूचनाए प्राप्त होने की सम्भावनाए कम होती है। और यदि एसे प्रश्नो से सूचनाए प्राप्त हो भी जाए तो उनकी विश्वसनीयता एव वस्तुनिष्ठता पर सन्देह सा हो रहता है। यदि सुनियोजित ढग से प्रश्न किया गया तो हम निर्धारित पक्षो को अधिक गम्भीरता से देखने के लिए तैयार रहेंगे और अधिक सार्थक परिणाम प्राप्त कर सकेंगे।

(इ) परिणामों का अभिलेखन—प्रेक्षण के परिणामो का अभिलेखन तुरन्त एव योजनाबद्ध विधि से हो जाना चाहिये। प्रेक्षण के परिणामो का अभिलेखन कैसे किया जायगा इसके सम्बन्ध में यदि पूर्व विचार नहीं किया गया तो यह सम्भव हो सकता है कि प्रेक्षक समय पर महत्वपूर्ण बिन्दुओ का अभिलेखन करना भूल जाय। प्रेक्षण एव अभिलेखन में कम से कम समयान्तर होना चाहिए अन्यथा प्रेक्षण के परिणामो की विश्वसनीयता-तथ्यो में अन्तर पड जाने की सम्भावना के कारण घट जाती है।

(ई) उपयुक्त नियन्त्रण—प्रेक्षण के परिणामों की विश्वसनीयता एव वैधता को बनाए रखने हेतु कुछ नियन्त्रण का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त परिणामो का सम्पुष्टिकरण अन्य स्रोतो से प्राप्त सूचनाओ से कर लेना चाहिये। फिर प्रेक्षण के परिणामो की विश्वसनीयता एव वैधता इस बात पर भी निर्भर करती कि प्रेक्षक एक कुशल एव प्रशिक्षित प्रेक्षक है या नहीं अथवा प्रेक्षक तटस्थ होकर व्यक्ति के गुण दोषों का अवलोकन कर सकता है या नहीं। पूर्वाग्रहो पर आधारित प्रेक्षण वैज्ञानिक अध्ययन के आधार नहीं बन सकते।

(घ) प्रेक्षण का उपयोग—जब हम व्यक्ति के विभिन्न व्यवहारो सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करनी होती है तो हम प्रेक्षण प्रविधि का प्रयोग कर सकते हैं। निर्देशन कार्यकर्त्ता व्यक्ति सम्बन्धी अनेक सूचनाएं प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त कर सकता है। आवश्यक नहीं कि इसके लिए वह स्वय हर बालक का प्रेक्षण करे। बालक से सम्बन्धित विभिन्न अध्यापको के प्रेक्षणो के आधार पर भी बालक से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाए प्राप्त की जा सकती हैं।

(अ) बालक का कक्षा मे प्रेक्षण—कक्षा मे बालक के व्यवहार का प्रेक्षण कर शिक्षक अथवा निर्देशन कार्यकर्त्ता बालक से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाए एकत्रित कर सकता है। उदाहरणार्थ बालक की विषय के प्रति जिज्ञासा एव रुचि अध्यापक छात्र छात्र-छात्र अन्तसम्बन्ध बालक की सृजनात्मक शक्ति बालक की अन्तमुखता आदि अनेक बातो का पता बालक का कक्षा मे प्रेक्षण कर लगाया जा सकता है।

(आ) बालक का पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों मे प्रेक्षण—इन प्रवृत्तियो में जब बालक का प्रेक्षण करते हैं तब उसकी रुचिया सामूहिक समजन नेतृत्व के गुणो सृजनात्मक शक्ति आदि का पता आसानी से लग सकता है। अनेक बार शाला के बाहर भ्रमण के लिए जब बालको को ले जाते है तब हम उनका अनेक दृष्टि से

क्षमताओं सीमितताओं का पता चलता है क्योंकि ऐसे अवसरों पर बालक अधिक स्वाभाविक व्यवहार करते हैं। शायद इन गुण दोषों का पता हम अधिक औपचारिक साधनों से न लगा सकते। इसी प्रकार से बालक को खेल के मैदान पर जब हम देखते हैं या शिविरों में उसका प्रेक्षण करते हैं तब उसके अनेक अन्य गुण हमारे सामने आ जाते हैं। शायद इसीलिए अच्छी पाठशालाओं में शाला के सीमित वातावरण के अतिरिक्त भी बालक से सम्पर्क पर आग्रह रहता है। कोई आश्चर्य नहीं कि जिन शालाओं में भ्रमण, शिविरों, यात्राओं आदि पर बल दिया जाता है वहाँ के शिक्षक अपने छात्रों की क्षमताओं–सीमितताओं को अधिक निकट से पहचानते हैं। इन अनौपचारिक परिस्थितियों में ही बालक के सहज व्यवहार का प्रेक्षण कर हम उसकी आदतों एवं चारित्रिक गुणों का सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

(इ) बालक का अन्य परिस्थितियों में प्रेक्षण—शालीय जीवन से सम्बन्धित उपरोक्त दो महत्वपूर्ण परिस्थितियों के अतिरिक्त भी ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें बालक का प्रेक्षण किया जा सकता है और उसमें सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाओं का सकलन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ बालक की अध्ययन आदतों के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने हेतु जब बालक अध्ययन करता है या गृहकार्य करता है अथवा प्रयोगशाला में कार्य करता है तब ऐसी परिस्थितियों में यदि प्रेक्षण किया जाय तो हम महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

इसी प्रकार बालक का यदि अपने समवयस्क साथियों के बीच प्रेक्षण किया जाय तो हमें उसके अनेक सामाजिक गुणों का पता चलता है। इसी प्रकार बालक के उसके माता पिता अथवा अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ कैसे सम्बन्ध हैं इसका पता हम बालक के घरेलू जीवन का प्रेक्षण करने पर ही लगा सकता है। निर्देशन कार्यकर्त्ता को तो ऐसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें बालक के पारिवारिक जीवन का अध्ययन किए बिना समस्या का उचित निदान हो नहीं मिल सकता।

(ग) प्रेक्षण के प्रकार

(अ) नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित प्रेक्षण—प्रेक्षण का उपयोग जैसाकि उपर्युक्त अनुच्छेद में कहा गया है व्यक्ति के विभिन्न व्यवहारों का अध्ययन करने हेतु किया जाता है। यह अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है एक तो जिन परिस्थितियों में व्यवहार घटित होता है उन्हीं स्वाभाविक परिस्थितियों में व्यवहार का अध्ययन किया जाय। इस प्रकार के प्रेक्षण को अनियन्त्रित प्रेक्षण कहते हैं। दूसरी विधि यह हो सकती है कि हम जिन परिस्थितियों में व्यक्ति का व्यवहार देखना चाहते हैं पहले उन परिस्थितियों का यथावत निर्माण किया जाय और उन परिस्थितियों में विषयी को रख कर उसके व्यवहार का प्रेक्षण किया जाय। मनोवैज्ञा

नियन्त्रित प्रयोगशालाओं में अधिकतर दूसरे प्रकार के प्रेक्षण का प्रयोग किया जाता है। बहुत प्रयोगशालाओं में प्रयोग में निर्धारित परिस्थितियों का ठीक निर्माण एवं नियन्त्रण किया जाता है और फिर उन परिस्थितियों में विषयी का प्रेक्षण किया जाता है। बच्चों पर अनेक प्रयोग करके उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करना मनोवैज्ञानिकों के लिए एक सामान्य बात है। ये प्रेक्षण नियन्त्रित होते हैं। क्योंकि प्रयोगशालाओं में हम हमारी सुविधा एवं आवश्यकतानुसार परिस्थितियों का निर्माण कर सकते हैं अतः हम प्रेक्षण के परिणामों का अभिलेखन अधिक व्यवस्थित ढंग से कर सकते हैं। साथ ही नियन्त्रित प्रेक्षण में हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अमुक व्यवहार अमुक परिस्थितियों के फलस्वरूप घटित हुआ है क्योंकि परिस्थितियों पर हमारा नियन्त्रण रहता है। अनियन्त्रित प्रेक्षण में अनेक बार परिस्थिति इतनी जटिल होती है कि यह कह सकना अत्यन्त कठिन होता है कि व्यवहार किन कारणों से घटित हुआ है फिर अनेक बार अनियन्त्रित प्रेक्षण के परिणामों के अभिलेखन में भी कठिनाई होने की सम्भावना रहती है क्योंकि इस प्रकार के प्रेक्षण के समय को हम अपनी इच्छानुसार आयोजित नहीं कर सकते। नियन्त्रित प्रेक्षण के कुछ लाभ होते हुए भी एक निर्देशन कार्यकर्ता को तो अधिकतर परिस्थितियों में अनियन्त्रित प्रेक्षण का ही प्रयोग करना पड़ता है क्योंकि निर्देशन कार्यकर्ता शुद्ध मनोवैज्ञानिक की भाँति प्रयोगशाला की नियन्त्रित परिस्थितियों में बालक के व्यवहार का प्रेक्षण नहीं कर सकता। उसे तो बालक के सहज व्यवहार का स्वाभाविक परिस्थितियों में ही अध्ययन करना होगा। अतः निर्देशन के क्षेत्र में अनियन्त्रित प्रेक्षण का ही महत्त्वपूर्ण स्थान माना जा सकता है।

(आ) भागग्राही एवं भाग-अग्राही प्रेक्षण—यद्यपि इन दो प्रेक्षणों की निर्देशन के सन्दर्भ में चर्चा आवश्यक नहीं फिर भी संक्षिप्त में इनके सम्बन्ध में बता देना विषय के औचित्य की दृष्टि से आवश्यक समझा गया है। जब प्रेक्षक किसी समूह का सदस्य बनकर उस समूह का अध्ययन करता है तो इस प्रकार के प्रेक्षण को हम भागग्राही प्रेक्षण कहते हैं। और यदि प्रेक्षक समूह का अध्ययन एक बाहर के व्यक्ति की हैसियत से करता है तो हम ऐसे प्रेक्षण को भाग अग्राही प्रेक्षण कहते हैं। उदाहरणार्थ जब किसी कक्षा का शिक्षक अपने विद्यार्थियों की विशेषताओं का कक्षाध्यापन के समय अध्ययन करता है तो यह प्रेक्षण भागग्राही प्रेक्षण कहलावेगा। किन्तु यदि अध्यापक कक्षा में पढ़ा रहा हो और निर्देशन कार्यकर्ता पीछे बैठकर कुछ बालकों का अध्ययन करे तो यह प्रेक्षण भाग अग्राही प्रेक्षण कहलाता है। भागग्राही प्रेक्षण में प्रेक्षक क्योंकि समूह का स्वीकृत एवं जाना पहिचाना सदस्य होता है अतः समूह के सदस्यों के व्यवहार में औपचारिकता अथवा कृत्रिमता नहीं होती। अतः ऐसे प्रेक्षण में हम व्यक्ति के सहज व्यवहार का अध्ययन कर सकते हैं। किसी बाहरी व्यक्ति के सामने हम अनेक बार हमारे सहज व्यवहारों को प्रदर्शित नहीं करते अथवा हमारे में एक कृत्रिमता आ जाती है। जहाँ तक हो सके

हम व्यक्ति के सहज एव स्वाभाविक व्यवहारो का अध्ययन करना चाहिए तभी हम उसके सम्बन्ध मे सही ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

(घ) प्रेक्षण प्रविधि की सीमाएं

प्रेक्षण के उपयुक्त गुणो एव विशेषताओ से ये न हम यह अनुमान न लगा ले कि वैयक्तिक अध्ययन की यह एकमात्र सर्वोत्तम प्रविधि है। इस प्रविधि की अपनी सीमाएं है जिन्हे ध्यान मे रखकर यदि हम इस प्रविधि का प्रयोग करें तो शायद हम अधिक सफलतापूर्वक इसका लाभ उठा सकते हैं।

(अ) प्रेक्षण के अवसर की अनिश्चितता—अनेक बार अनियन्त्रित प्रेक्षण मे हम बालक के जिन व्यवहारो का प्रेक्षण करना चाहते हैं वे उस समय घटित होते है जब हम प्रेक्षण के परिणामो के अभिलेखन के लिये तैयार नही होते। या ऐसा भी हो सकता है कि हम जिन व्यवहारो का अध्ययन करना चाहते हैं वे लम्बे समय तक हम देखने को ही न मिले। उदाहरणार्थ हमारा बालक निराशाजनक परिस्थितियो मे कैसा व्यवहार करता है यह हम देखना चाहते हैं किन्तु हो सकता है दुर्भाग्य से हम ऐसी परिस्थिति ही न मिले।

(आ) प्रत्यक्ष व्यवहार का प्रेक्षण सम्भव नहीं—कुछ व्यवहारो का प्रेक्षण करना कठिन होता है। सौतेली मां बालक के साथ कैसा व्यवहार करती है यह प्रत्यक्ष रूप से देख सकना कठिन हो सकता है। क्योकि बाहर के व्यक्ति के सामने कृत्रिम स्नेहपूर्ण व्यवहार की अभिव्यक्ति कठिन नही है। अत वास्तव मे अत्यन्त क्रूर होते हुए भी हमे यह आभास हो सकता है कि माता पुत्र के सम्बन्ध मे अत्यन्त स्नेहपूर्ण है।

(इ) प्रेक्षक के पूर्वाग्रहों का प्रभाव—प्रेक्षण के परिणामो की विश्वसनीयता बहुत सीमा तक प्रेक्षक पर निर्भर करती है। अत यदि प्रेक्षक के अपने पूर्वाग्रह हुए तो वह प्रेक्षण के परिणामो को आसानी से दूषित कर सकता है। जिस शिक्षक के किसी छात्र से सम्बन्ध तनावपूर्ण हैं उससे यदि हम छात्र की विशेषताओ के सम्बन्ध मे पूछें तो उसके प्रेक्षण कितने विश्वसनीय होगे इसका अनुमान सहज लगाया जा सकता है।

(ई) प्रेक्षक का प्रशिक्षण—प्रेक्षक यदि प्रेक्षण की कला मे प्रशिक्षित न हो तो भी वह वैज्ञानिक ढग से तथ्यो का सकलन नही कर सकता न ही उसके प्रेक्षणो मे अधिक गहराई हो सकती है।

(२) साक्षात्कार

वैयक्तिक अध्ययन की दूसरी प्रमुख प्रविधि साक्षात्कार है। साक्षात्कार से हमारा तात्पर्य है व्यक्ति से प्रत्यक्ष भेंट कर उससे वार्तालाप कर उससे सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त करना। साक्षात्कार के लिये अंग्रेजी शब्द इन्टरव्यू है जिसका अर्थ है पारस्परिक मानसिक सर्वेक्षण अथवा पारस्परिक दृष्टि निरीक्षण।

ऐसी अंग्रेजी शब्द के मूल फ्रेंच शब्द का अर्थ है एक झलक प्राप्त करना। अतः साक्षात्कार में हम व्यक्ति से प्रत्यक्ष भेंट कर उसके गुणों एवं सीमाओं की एक झलक प्राप्त करते हैं। साक्षात्कार के अन्तर्गत दो अनिवार्य बातें होना चाहिए एक तो जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में हम जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उससे हमारा प्रत्यक्ष भेंट होना चाहिए और भेंट के पीछे कुछ पूर्व निर्धारित सूचनाओं का संकलन एक अनिवार्य उद्देश्य होना चाहिये। केवल दो व्यक्तियों के मिलकर गपशप करने को हम साक्षात्कार नहीं कह सकते। इसी प्रकार अध्यापक कक्षा में किसी बालक से पढ़ाई गई पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछकर उत्तर प्राप्त कर रहा हो तो उसे भी साक्षात्कार नहीं कहा जा सकता। इस चर्चा के अंत में यदि हम साक्षात्कार को परिभाषित करने का प्रयास करें तो शायद परिभाषा इस प्रकार होगी– साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कृत से प्रतिपिन सम्पर्क स्थापित कर पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कुछ सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास करता है।

(क) साक्षात्कार से लाभ

(अ) महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावना—चूंकि साक्षात्कार में हम व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास करते हैं अतएव अनेक बार हम ऐसी महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावना होती है जो अन्य प्रविधियों से प्राप्त नहीं हो सकती। लिखित रूप से व्यक्ति अनेक व्यक्तिगत सूचनाएं देने से हिचकिचाहट करता है किन्तु जब साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कृत का विश्वास प्राप्त कर लेता है तो साक्षात्कृत अपने जीवन के अनेक रहस्य उसके सामने खोलकर रख देता है। कुशल साक्षात्कारकर्त्ता संवाद के माध्यम से ही व्यक्ति से अनायास महत्त्वपूर्ण सूचनाएं निकलवा लेता है जो शायद लिखित प्रश्नों के उत्तर के रूप में व्यक्ति कभी नहीं देता। समाचार पत्रों के संवाददाता मन्त्रियों अथवा राजनीतिज्ञों से प्रश्नों के माध्यम से ही अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य निकलवा लेते हैं।

(आ) साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओं का महत्त्व—व्यक्तिगत सम्पर्क से महत्त्वपूर्ण सूचनाएं तो प्राप्त होती ही हैं साथ ही इस प्रकार प्राप्त सूचनाएं लिखित रूप से प्राप्त सूचनाओं से अधिक विश्वसनीय होती हैं। क्योंकि लिखित रूप से दिये गये उत्तरों में अधिक औपचारिकता होती है। व्यक्ति लिखित उत्तर देते समय कई बार यह सोचता है कि कहीं उसका उत्तर ऐसा तो नहीं है जो समाज की सामान्य मान्यताओं के विपरीत है अतएव वह अपने वास्तविक उत्तर को ऐसा रूप देने का प्रयत्न करता है जो सामान्य हो। साक्षात्कार में एक बार साक्षात्कारकर्त्ता यदि साक्षात्कृत का विश्वास सम्पादन कर ले तो इस प्रकार के कृत्रिम एवं औपचारिक उत्तर प्राप्त होने की सम्भावना घट जाती है।

(इ) सूचनाओं के स्पष्टीकरण की सम्भावना—इस प्रविधि में क्योंकि

साक्षात्कार कर्त्ता एवं साक्षात्कृत एक दूसरे के अभिमुख होते हैं अतएव यदि साक्षात्कृत के किसी उत्तर के सम्बन्ध में अनिश्चितता हो अथवा उत्तर अस्पष्ट हो तो उसी समय साक्षात्कृत से स्पष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है।

(ई) सूचनाओं की पृष्ठभूमि का पता लगाना—साक्षात्कार में हम न केवल व्यक्ति ने प्रश्न का क्या उत्तर दिया है इसका पता लगाते हैं अपितु इस प्रकार के उत्तर देने के पीछे क्या कारण है इसका भी पता लग सकता है। एक छात्र यदि यह कहता है मुझे गणित के शिक्षक अच्छे नहीं लगते तो साक्षात्कार कर्त्ता यहीं पर नहीं ठहरता वह यह भी ज्ञात करता है कि छात्र की गणित शिक्षक के प्रति ऐसी मनोवृत्ति क्यों बनी?

(उ) अन्य प्रविधियों एवं साधनों से प्राप्त सूचनाओं की सम्पुष्टि एवं सम्पादन—साक्षात्कार का उपयोग अन्य साधनों एवं प्रविधियों से प्राप्त सूचनाओं की वैधता एवं विश्वसनीयता की जाँच हेतु भी किया जा सकता है।

(ग) साक्षात्कार की सीमाएं

यद्यपि सामान्यतया यह देखा गया है कि एक कुशल साक्षात्कार कर्त्ता इस प्रविधि से व्यक्ति से महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कर सकता है फिर भी इस प्रविधि की अपनी सीमाएं हैं जिन्हें निर्देशन कार्यकर्त्ता को ध्यान में रखना चाहिए।

(अ) व्यक्तिनिष्ठ प्रविधि—प्रश्नावली की भांति इस प्रविधि में भी दत्तों की विश्वसनीयता काफी सीमा तक साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर करती है। एक सूचना जो एक साक्षात्कारकर्त्ता प्राप्त करता है हो सकता है अन्य व्यक्ति उस सूचना को प्राप्त करने में सफल न हो। साक्षात्कारकर्त्ता के पूर्वाग्रहों का भी इस प्रविधि से प्राप्त सूचनाओं पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

(आ) प्रशिक्षण की आवश्यकता—साक्षात्कार की सफलता हो साक्षात्कार कर्त्ता की सवाल या वार्तालाप द्वारा सूचनाएं प्राप्त कर सकने की क्षमता पर निर्भर करती है। यह क्षमता प्रशिक्षण एवं लम्बे अनुभव के फलस्वरूप ही प्राप्त की जा सकती है। और फिर यह आवश्यक भी नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति इस कला को प्राप्त कर ही ले।

(इ) समय एवं अर्थ का अधिक व्यय—साक्षात्कार प्रविधि में हम प्रत्येक व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त करते हैं। अतः इस प्रक्रम में अधिक समय एवं धन का व्यय होता है। जितना समय एक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करने में लगता है उतने समय में हम समूह परीक्षण में सम्पूर्ण कक्षा के बालकों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित कर सकते हैं। साक्षात्कार में हम बहुत सा समय तो व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करने में लगता है। बिना तादात्म्य स्थापित किए हम व्यक्ति से वास्तविक सूचनाएं प्राप्त भी नहीं हो सकती। परीक्षणों में हम इसके लिए अधिक समय नहीं लगाना पड़ता।

(ग) साक्षात्कार के उपयोग

वैसे तो साक्षात्कार का उपयोग अनेक परिस्थितियों में विभिन्न उद्देश्यों से किया जाता है किन्तु यहां पर हम अपनी चर्चा मात्र साक्षात्कार का उपयोग वैयक्तिक सूचनाएं एकत्रित करने में कैसे किया जा सकता है इस बिन्दु पर केन्द्रित करेंगे। साक्षात्कार के अन्य उपयोग हैं-उपबोधन के लिए नौकरी हेतु व्यक्ति की क्षमता सीमितताओं को आंकने हेतु मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति के उपचार हेतु अनुसंधान कार्य में तथ्य संकलन हेतु किसी राजनीतिज्ञ अथवा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति के विचार जानने के लिए। अध्यापक इसका उपयोग अनुशासन समस्याओं को सुलझाने हेतु भी कर सकते हैं। अब हम यह देखें कि साक्षात्कार प्रविधि से हम व्यक्ति सम्बन्धी कौनसी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं।

(अ) व्यक्ति की भविष्य योजनाएं एवं आकांक्षा स्तर—साक्षात्कार के माध्यम से हम पता लग सकता है कि व्यक्ति के भविष्य की क्या योजनाएं हैं उसकी क्या आकांक्षाएं हैं तथा इन आकांक्षाओं और भविष्य योजनाओं के कार्यान्वयन में उसकी क्या तैयारी है। हम यह भी पता लग सकता है कि व्यक्ति की भविष्य योजनाएं एवं आकांक्षाएं वास्तववादी है या नहीं।

(आ) व्यक्ति की अभिव्यक्त अभिरुचियाँ—व्यक्ति किन क्षेत्रों में अभिरुचियां अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रदर्शित करता है इसका आभास साक्षात्कार कर्ता को हो सकता है। जिस क्षेत्र में व्यक्ति की रुचि है उस क्षेत्र के सम्बन्ध की उसे अधिक जानकारी होगी तथा वह उस क्षेत्र के सम्बन्ध में बातचीत करने में अधिक रुचि लेगा।

(इ) व्यक्ति के शीलगुण—व्यक्तित्व के कुछ शीलगुण ऐसे हैं जिनका पता साक्षात्कार के माध्यम से लग सकता है जैसे अन्तर्मुखता आत्मविश्वास अभिमान आशावाद निराशावाद। साक्षात्कार कर्ता व्यक्ति का अनेक अभिव्यक्तियों से उपयुक्त गुणों का पता लगा सकता है। बहुत कम बोलने वाला व्यक्ति या जितना पूछा जाए उतना जवाब देने वाला व्यक्ति अन्तर्मुखी है यह कुशल साक्षात्कार कर्ता आसानी से देख सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति जब अपने भविष्य के सम्बन्ध में बातचीत करता है या उपलब्धियों असफलताओं के सम्बन्ध में अभिव्यक्ति करता है तब इस बात का पता लग सकता है कि वह आशावादी है या निराशावादी।

(ई) मानसिक द्वन्द्व एवं समन्जन समस्याएं —साक्षात्कार के दौहरान साक्षात्कृत अपने अन्दर मानसिक द्वन्द्वों का अथवा समन्जन समस्याओं का रहस्योद्घाटन कर देता है। इन सूचनाओं का उपबोधन सेवा में अत्यन्त महत्त्व है। व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance) कार्य का तो आधार ही ये सूचनाएं हैं। यहां यह अवश्य कहना होगा कि एक भेंट में ही इन महत्वपूर्ण सूचनाओं की प्राप्ति हो ही जाए यह आवश्यक नहीं। इसके लिए तो साक्षात्कार कर्ता को साक्षात्कृत से पर्याप्त

तादात्म्य स्थापित कर उसका विश्वास सम्पादन करना होगा।

(उ) पारिवारिक सूचनाएं—व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान भी साक्षात्कार के माध्यम से हो सकता है। उसके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्ध उसकी आर्थिक एवं अन्य कठिनाइयाँ घर पर उपलब्ध अध्ययन हेतु साधन सुविधाएं आदि का ज्ञान साक्षात्कार कर्ता को आसानी से हो सकता है।

(ऊ) शालेय जीवन सम्बन्धी सूचनाएं—छात्र को किन विषयों में रुचि है कौन से अध्यापक अच्छे लगते हैं जो विषय कठिन लगते हैं अथवा जिन अध्यापकों की कक्षा में उसका मन नहीं लगता इसके क्या कारण है? छात्र किन प्रवृत्तियों में भाग लेता है यदि पाठ्येतर क्रियाओं में वह सक्रिय भाग नहीं लेता तो इसके क्या कारण है? अध्ययन सम्बन्धी छात्र की अन्य क्या कठिनाइयाँ हैं? आदि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं इस प्रविधि से संकलित की जा सकती हैं।

(ए) छात्र के समव्यवसायी—छात्र के मित्र कौन है वे किस प्रकार के हैं क्या वे उसके विकास में सहायक हैं या उसे अवांछित मार्ग पर ले जा रहे हैं छात्र एकाकी है अथवा समूह द्वारा स्वीकृत आदि बातों का पता भी साक्षात्कार से लग सकता है। उनके समाजमितिक स्तर का अधिक विस्तृत ज्ञान हम समाजमितिक प्रविधियों से ही सकता है जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

(घ) साक्षात्कार के प्रकार

साक्षात्कार के प्रमुख दो प्रकार हैं संरचित साक्षात्कार एवं असंरचित साक्षात्कार जिनका संक्षिप्त विवरण यहां असंगत नहीं होगा।

(अ) संरचित साक्षात्कार—संरचित साक्षात्कार का संचालन पूर्व निर्धारित प्रश्न सूची या साक्षात्कार सूची के आधार पर होता है। साक्षात्कारकर्त्ता निर्धारित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में ही रुचि रखता है। प्रश्नों का प्रारूप पूर्व निर्धारित होने के कारण साक्षात्कार को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है तथा अनावश्यक दत्त सामग्री के संकलन की सम्भावना कम हो जाती है।

(आ) असंरचित साक्षात्कार—इसमें साक्षात्कार कर्त्ता को परिस्थितिनुसार नए प्रश्न पूछने प्रश्नों के क्रम को बदलने अथवा पूरक प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता होती है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता का उद्देश्य कोई सीमित सूचनाएं एकत्रित करना न होकर व्यक्ति से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्रित करना होता है। अतएव साक्षात्कार के संचालन की कोई जड़ रूपरेखा नहीं हो सकती। इस साक्षात्कार की एक विशेषता ही इसका लचीलापन है। अनेक बार तो ऐसे साक्षात्कार में हमें व्यक्ति के उन आयामों के सम्बन्ध की सूचना प्राप्त हो सकती है जिनकी हम कल्पना भी न हों। असंरचित साक्षात्कार में व्यक्तिनिष्ठता आजाने की सम्भावना अवश्य होता है किन्तु इसका लाभ यह है कि इसमें साक्षात्कारकर्त्ता को अपने व्यक्तिगत कौशल का लाभ उठाकर अधिक सम्पन्न सूचनाएं प्राप्त करने का अव

सर मिलता है। और फिर निर्देशन एवं उपबोधन कार्य में तो हमें अधिकतर परिस्थितियों में असंरचित साक्षात्कार का ही प्रयोग करना पड़ता है।

(ड) साक्षात्कार के कुछ प्रमुख सिद्धान्त

यद्यपि पहले कहा जा चुका है कि साक्षात्कार की सफलता बहुत अधिक सीमा तक साक्षात्कारकर्त्ता की कुशलता एवं अनुभव पर निर्भर करती है। इसकी सफलता हेतु कोई निश्चित सार्वभौमिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्ततोगत्वा तो साक्षात्कारकर्त्ता को परिस्थिति विशेष का ध्यान में रखते हुए सूझबूझ के आधार पर अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं और साक्षात्कार की हर परिस्थिति अपने आप में एकाकी होती है। एक सफल साक्षात्कारकर्त्ता कई वर्षों के अनुभव के पश्चात् सूचनाओं के संकलन की अपनी पृथक शैली बना लेता है इस शैली का सहज स्थानान्तरण नहीं किया जा सकता। फिर भी नए कार्यकर्त्ता के मार्गदर्शन हेतु कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(अ) साक्षात्कृत से तादात्म्य— साक्षात्कार की सफलता ही इस बात पर निर्भर करती है कि साक्षात्कारकर्त्ता ने साक्षात्कृत के साथ कितना तादात्म्य स्थापित कर लिया है। संकोच, लज्जा अथवा भय के वातावरण में विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन सम्भव नहीं हो सकता। साक्षात्कार का प्रारम्भिक समय इस कार्य के लिए लगाना साक्षात्कार की सफलता के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध होता है।

(आ) सूचनाओं की गोपनीयता— साक्षात्कारकर्त्ता एक बार जब साक्षात्कृत का विश्वास सम्पादन कर लेता है तो साक्षात्कृत उसे अपने जीवन की अत्यन्त गोपनीय घटनाएं भी बता देता है। ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्राप्त सूचनाओं की गोपनीयता बनाए रखे। इसमें केवल मौखिक आश्वासन दे देना ही पर्याप्त नहीं। साक्षात्कारकर्त्ता को अपने व्यवहार से भी यह सिद्ध करना होगा कि उसमें जताए गए विश्वास का दुरुपयोग नहीं हो रहा है। इसके लिए सावधानी यह रखी जा सकती है कि साक्षात्कार के समय साक्षात्कृत को किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति की आशंका न रहे। दूसरी सावधानी हम यह बरत सकते हैं कि प्राप्त सूचनाएं किसी अनाधिकृत व्यक्ति के हाथ में न जाएं। इसका अर्थ यह नहीं कि इन सूचनाओं का कोई उपयोग ही न किया जाए। सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति की सहायता करना तो निर्देशन का लक्ष्य है ही। सूचनाओं की गोपनीयता बनाए रखते हुए भी उसका लाभ व्यक्ति को पहुँचाया जा सकता है।

(इ) साक्षात्कार का वातावरण—सफल साक्षात्कार के लिए उपयुक्त वातावरण का होना आवश्यक है। साक्षात्कार का स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ शोर गुल, व्यक्तियों का आवागमन, टेलीफोन की घण्टी की खनखनाहट अथवा अन्य व्यव

घान कम से कम हो। अनेक बार सामान्य छोटी मोटी मौलिक सुविधाएं जैसे आरामदायक बैठन का स्थान कमरे की सजावट भी साक्षात्कृत की मनोदशा (Mood) को प्रभावित करता हैं।

(ई) साक्षात्कार के परिणामों का अभिलेखन—साक्षात्कार के परिणामों का अभिलेखन तुरन्त एवं ठीक ढंग से यदि न किया गया तो इस प्रविधि से प्राप्त दत्त की उपयोगिता कम हो जाती है। परिणामों के अभिलेखन के लिए दो विधियां अपनाई जा सकती हैं। एक तो साक्षात्कार के समय ही तथ्यों का अभिलेखन कर लिया जाय। अथवा साक्षात्कार समाप्ति के तुरंत पश्चात् परिणामों का अभिलेखन किया जाय। दोनों के अपने लाभ एवं सीमाएं। साक्षात्कार के समय अभिलेखन से परिणामों में त्रुटि की सम्भावना कम हो जाती है और कोई महत्वपूर्ण बात छूट जाने की आशंका भी नहीं रहती। किन्तु कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि साक्षात्कृत के सामने ही लिखने से साक्षात्कृत सचेत हो जाता है और उसके उत्तरों में स्वाभाविकता नहीं रहती अथवा अनेक बार तो वह उत्तर देने में हिचकिचाहट अनुभव करने लगता है। यदि उसे यह ज्ञात हो जाए कि उसके उत्तरों को नोट किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में अभिलेखन की दूसरी विधि को अपनाना ही श्रेष्ठ है अर्थात साक्षात्कार के तुरंत पश्चात अभिलेखन कार्य पूर्ण कर लिया जाए। कोई भी विधि अपनाई जाय। अभिलेखन का यह महत्वपूर्ण सिद्धांत याद रखना चाहिए कि घटना एवं अभिलेखन में जितना अधिक समयान्तर होगा तथ्यों की विश्वसनीयता उतनी ही घटती जावेगी। साक्षात्कार के परिणामों के अभिलेखन में कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं वे हैं—

(१) अभिलेखन सुवाच्य एवं स्पष्ट हो ताकि कुछ समय के पश्चात् भी अभिलेखन में समाविष्ट तथ्य सहज समझ में आ सकें।

(२) अभिलेखन में समस्त तथ्यों को तटस्थतापूर्ण समाविष्ट करना चाहिए। तथ्यों के प्रस्तुतिकरण में वस्तुस्थिति का ठीक ठीक वर्णन हो न तो कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूटने पावे न ही तथ्यों में अतिशयोक्ति हो। साथ ही तथ्यों के प्रस्तुतिकरण में पूर्वाग्रहों का प्रभाव न होने पावे इसकी सावधानी रखनी चाहिए।

( ) साक्षात्कृत द्वारा दिया गया उत्तर ही महत्वपूर्ण नहीं होता उत्तर देते समय उसकी भाव भंगिमा किसी बिंदु पर दिया गया बल आदि भी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत करते हैं और साक्षात्कारकर्त्ता को इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिए।

(उ) साक्षात्कार का समापन— जिस प्रकार सक्षम साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार के प्रारम्भ में उपयुक्त विधियों से साक्षात्कृत से तादात्म्य स्थापित करता है एवं उसका विश्वास सम्पादन करने का प्रयास करता है उसी प्रकार साक्षात्कार को समाप्त करना भी एक कला है। साक्षात्कार के समापन के समय साक्षात्कृत को यह आभास होना चाहिए कि उसने साक्षात्कारकर्त्ता के साथ भेंट में जो समय

व्यतीत किया वह सार्थक रहा। साक्षात्कार ऐसे वातावरण में समाप्त होना चाहिए कि साक्षात्कृत मन में विश्वास एवं पुनः भेंट की इच्छा लेकर जाए। परिणामतः यदि पुनः उसी व्यक्ति से साक्षात्कार करने का अवसर मिले तो उससे पूर्ण सहयोग मिल सके।

अनेक बार साक्षात्कारकर्त्ता के आवश्यक सूचनाएं प्राप्त कर चुकने पर भी साक्षात्कृत अपनी अभिव्यक्ति जारी रखता है। ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता को कुशलतापूर्वक बिना साक्षात्कृत को ठेस पहुँचाए पुनः भेंट का आश्वासन देते हुए साक्षात्कार को समाप्त करना चाहिए।

(च) साक्षात्कारकर्त्ता के कुछ वांछनीय गुण— सफल साक्षात्कार के लिए कुछ निर्देशन बिन्दु उपयुक्त अनुच्छेदों में वर्णित हैं। किन्तु जब तक साक्षात्कारकर्त्ता में कुछ वांछनीय गुण नहीं होंगे तब तक वह साक्षात्कार का सफल संचालन नहीं कर सकता। साक्षात्कारकर्त्ता एक हँसमुख मिलनसार बाह्यमुखी व्यक्ति होना चाहिए। व्यक्तियों से सुसंगत सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता साक्षात्कार की सफलता के लिए आवश्यक है। मानव स्वभाव के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि भी साक्षात्कारकर्त्ता के लिए एक देन सिद्ध हो सकती है। दूसरों के विचारों को समानुभूति सहानुभूति एवं शान्ति से सुनने की क्षमता साक्षात्कारकर्त्ता के लिए अनिवार्य है। अनेक बार व्यक्तियों में अपने विचार प्रस्तुत करने की इच्छा इतनी तीव्र होती है कि उनमें दूसरे के विचार सुनने का धैर्य ही नहीं होता। ऐसे व्यक्ति सफल साक्षात्कारकर्त्ता नहीं बन सकते। तथ्यों को गोपनीय रखने की आदत भी साक्षात्कारकर्त्ता की प्रतिष्ठा बढ़ाने में अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है।

(३) समाजमिति

व्यक्ति जिस समूह में रहता है उस समूह के सदस्यों के साथ उसके अन्तःसम्बन्धों का प्रभाव उसके जीवन के विविध पक्षों पर पड़े बिना नहीं रहता। कक्षा में यदि बालक के अन्य सहपाठियों के साथ मधुर सम्बन्ध नहीं हैं तो कक्षागत एवं कक्षोत्तर कार्यों में उसे कठिनाई का आभास हो सकता है। सीखने पर समूह गतिकि का प्रभाव होता है यह तथ्य तो अनुसंधानों द्वारा सिद्ध ही किया जा चुका है। अतः एक निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए बालक के अन्य साथियों के साथ अन्तःसम्बन्धों का ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समाजमिति एक प्रविधि है जो हमें समूह के व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन में सहायता प्रदान करती है।

(क) समाजमितिक स्तर का अध्ययन

व्यक्तियों के समाजमितिक स्तर का पता लगाने हेतु हम व्यक्तियों के सम्मुख प्रश्नों के माध्यम से कुछ ऐसी परिस्थितियाँ रखते हैं जिनमें वह अन्य व्यक्तियों के साथ सामान्यतया सहयोग किया करता है। उदाहरणार्थ कुछ प्रश्न नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) आप कक्षा में किसके निकट बैठना पसन्द करेंगे ?
(२) आप अपने घर किस खाना खाने बुलाना पसन्द करेंगे ?
(३) खेल में आप अपना साथी किसे बनाना चाहेंगे ?
(४) आप किसके साथ घूमने जाना पसन्द करेंगे ?

उपरोक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त भी ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें बालक अन्योन्य क्रिया करते हों। उपरोक्त सब परिस्थितियाँ सकारात्मक हैं यदि हम तिरस्कृत बालकों का पता लगाना चाहें तो हम नकारात्मक प्रश्नों का भी समावेश कर सकते हैं जैसे आप किसके साथ बैठना पसन्द नहीं करेंगे। उपरोक्त प्रश्नों की भाँति प्रश्न बना कर समूह के प्रत्येक सदस्य को अपनी राय प्रकट करने के लिए कहा जाता है। छात्रों द्वारा अभिव्यक्त वरण (Choices) के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि प्रत्येक छात्र को कितनी बार चाहा गया है और उसकी आवृत्ति ज्ञात कर ली जाती है। इन आवृत्तियों को समाजमितिक अंक कहते हैं। किसी व्यक्ति के समाजमितिक अंक से यह पता लग सकता है कि उसका समाजमितिक स्तर क्या है।

(ख) लोकप्रिय एकाकी एवं तिरस्कृत सदस्य

समूह के सदस्यों के वरणों के आधार पर किसी भी सदस्य की समूह में कैसी स्थिति है या उसका समाजमितिक स्तर क्या है इस बात का पता लगाया जा सकता है। जिस सदस्य को अत्यधिक व्यक्तियों ने पसन्द किया हो उसे समूह का लोकप्रिय सदस्य कहते हैं। जिस व्यक्ति को समूह के किसी भी सदस्य ने नहीं चाहा हो उसे एकाकी सदस्य कहते हैं। तथा जिसके साथ अधिक लोगों ने रहना पसन्द न किया हो उसे तिरस्कृत सदस्य कहते हैं।

(ग) समाज आलेख

किसी समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों को चित्र के रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस चित्र को समाज आलेख कहते हैं। समाज आलेख बनाने के लिए समूह के प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जाता है कि किसी एक परिस्थिति में वह किन किन अन्य सदस्यों को अपने साथ संयुक्त करना चाहेगा ? जैसे खेल के लिए यदि कोई टोली बनानी हो तो उसमें वह किन किन सदस्यों को लेना चाहेगा ? इसके उपरान्त समूह के सदस्यों द्वारा अभिव्यक्त वरणों को निम्न प्रकार से चित्र के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।
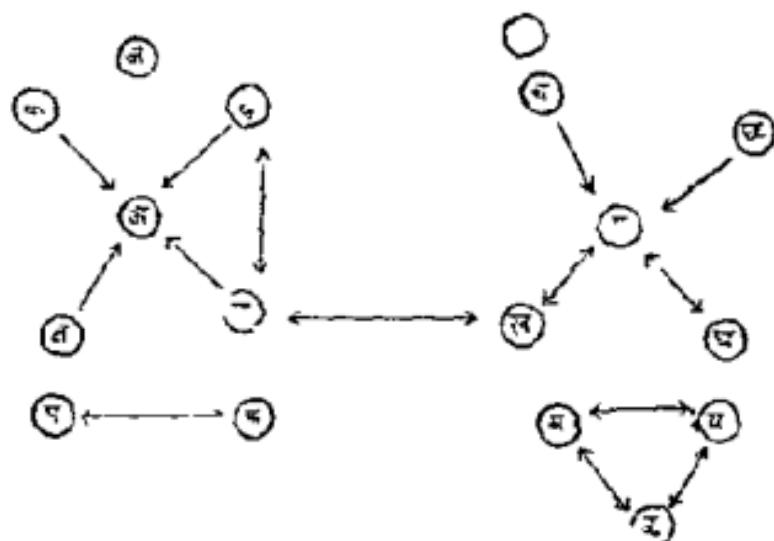
चित्र समाज-आलेख

→ वरण

←→ पारस्परिक वरण

उपर्युक्त चित्र को समाज आलेख कहते हैं। इसमें एक समूह के सदस्यों के बीच के पारस्परिक सम्बन्धों को व्यक्त किया गया है। इस समाज आलेख को देखने से यह ज्ञात होता है कि न तथा भ दोनो सदस्य एकाकी हैं जिन्हें समूह के किसी सदस्य ने नहीं चाहा है। प फ तथा म र य केवल आपस में एक दूसरे को चाहते हैं किन्तु ये दोनों गुट समूह के अन्य सदस्यों से अलग हैं। अत एक दृष्टि से ये भी एकाकी हैं। सदस्य अ तथा ग लोकप्रिय सदस्य हैं क्योंकि उन्हें समूह के अत्यधिक सदस्यों ने चाहा है। इस प्रकार समाज आलेख से समूह के सदस्यों के अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान आसानी से हो सकता है।

वैयक्तिक अध्ययन के साधन

इस अध्याय के पूर्वार्ध में हमने वैयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त तीन प्रमुख प्रविधियों की चर्चा की। अब हम कुछ प्रमुख साधनों की चर्चा करेंगे जिनकी सहायता से निर्देशन कार्यकर्ता व्यक्ति के विविध पक्षीय जीवन सम्बन्धी सूचनाओं का सकलन कर सकता है। इन साधनों के प्रयोग के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की भी अन्त में चर्चा की जाएगी।

वयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त साधनो को हम प्रमुख श्रेणियो म बांट सकते हैं।

(१) मानकीकृत साधन

(२) अमानकीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधन

(३) आत्म विवरणात्मक साधन (Self Reportng)

निर्देशन कार्यकर्ता के लिए यह विवाद निरर्थक है कि मानकीकृत साधन श्रेष्ठ है अथवा अन्य। उसे तो परिस्थिति के अनुसार विभिन्न साधनों का प्रयोग करना चाहिए। यही नही वरन जसाकि अध्याय के प्रारम्भ म कहा गया है उसे किसी एक साधन स प्राप्त सूचनाओं पर पूर्णतया निर्भर रहने की अपेक्षा विविध स्रोतो से सूचनाएं प्राप्त कर सूचनाओं की विश्वसनीयता को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। अत निर्देशन सेवाओं म उपरोक्त तीनो प्रकार के साधनो का महत्व है। अब हम तीनो प्रकार के कुछ प्रमुख साधनो की चर्चा करगे।

(१) मानकीकृत साधन

मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण देन मानव के बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो के मापन हेतु साधनो के रूप म रही है। मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि अभिरुचि अभिक्षमता अभिवृत्ति व्यक्तित्व शैक्षिक उपलब्धि आदि अनेक पक्षो के मूल्यांकन हेतु मानकीकृत साधन हमारे सामने रखे हैं जिनकी सहायता स इन गुणो का वध एव विश्वसनीय मापन किया जा सकता है। प्रत्येक पक्ष के मापन हेतु इतने अधिक साधन उपलब्ध हैं कि प्रत्येक का वर्णन न तो इस पुस्तक म सम्भव है न ही वाछनीय। मापन एव मूल्यांकन तो अपने आप म एक अलग पुस्तक का विषय बन सकता है। यहां तो इन मानकीकृत साधनो के प्रमुख प्रकारों की चर्चा करना ही सम्भव हो सकता है।

समस्त मानकीकृत साधनो का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार स किया जा सकता है। वर्गीकरण की इन सब विधियो की यहाँ चर्चा करना आवश्यक नही। वर्गीकरण के दो प्रमुख आधारो की यहाँ चर्चा की जाएगी वे हैं—

(क) लिखित एव निष्पादन साधन।

(ख) वयक्तिक एव सामूहिक साधन।

(क) लिखित एव निष्पादन साधन

लिखित साधन वे साधन हैं जिनमे व्यक्ति को लिखित सामग्री को पढ़ कर लिखित रूप मे उत्तर देने पड़ते हैं जबकि निष्पादन साधन वयक्तिक सूचना सकलन के वे साधन हैं जिनमे व्यक्ति को मूर्त सामग्री के साथ कार्य कर अपने किसी गुण अथवा योग्यता को अभिव्यक्त करना पड़ता है।

(अ) लिखित साधन—लिखित साधनो का प्रयोग मनोवैज्ञानिक परीक्षणों म अत्यधिक होता है क्योकि इनके प्रयोग म धन समय एव शक्ति की बचत होती है।

साथ ही इनका प्रयोग समूह परीक्षणों में किया जा सकता है जब कि निष्पादन साधन अधिकतर व्यक्तिगत रूप से ही काम में लिए जा सकते हैं। लिखित साधन सुविधा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जा सकते हैं। लिखित साधनों के प्रशासन में भी विशेष कठिनाई नहीं पड़ती।

(I) लिखित साधनों का उपयोग—आजकल तो व्यक्ति के व्यक्तित्व के लगभग सभी पक्षों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित करने के लिए लिखित साधनों का प्रयोग किया जाने लगा है। बुद्धि अभिरुचि अभिक्षमता अभिवृत्ति व्यक्तित्व शैक्षिक उपलब्धि आदि सभी गुणों के मापन हेतु लिखित साधनों का प्रयोग किया जाता है।

(II) लिखित साधनों के प्रकार—लिखित साधनों का निर्माण परीक्षणों सूचियों चिन्हांकन सूचियों अभिवृत्ति मापनियों प्रक्षेपी एवं अर्ध प्रक्षेपी प्रविधियों के रूप में किया जाता है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित अनुच्छेदों में किया जा रहा है।

परीक्षण

परीक्षणों के माध्यम से व्यक्ति के किसी न किसी गुण अथवा योग्यता का मापन किया जाता है। बुद्धि परीक्षण अभिक्षमता परीक्षण उपलब्धि परीक्षण निदानात्मक परीक्षण परीक्षणों के प्रमुख प्रकार है। परीक्षणों में विषयी को कुछ प्रश्नों को हल करना पड़ता है अथवा समस्याओं का विश्लेषण करना पड़ता है। अधिकतर परीक्षणों में व्यक्ति को निर्धारित समय में कुछ प्रश्न हल करने पड़ते हैं। व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तरों की जाँच के आधार पर व्यक्ति के प्राप्तांक ज्ञात किए जाते हैं और फिर परीक्षण के मानकों के आधार पर व्यक्ति का योग्यता स्तर ज्ञात किया जाता है। कुछ परीक्षण ऐसे भी होते हैं जिनमें व्यक्ति के कार्य करने की गति पर आग्रह न होकर शक्ति पर आग्रह होता है। ऐसे परीक्षणों में परीक्षण को पूर्ण करने का कोई निर्धारित समय नहीं होता। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि व्यक्ति भाग की क्रिया में कहाँ त्रुटि करता है तो उसे हम भाग का ऐसा निदानात्मक परीक्षण देंगे जिसमें कितने समय में वह भाग कर सकता है इसकी जाँच न होकर भाग की क्रिया के किस सोपान में वह त्रुटि करता है इसका पता लगाने पर आग्रह होगा। लिखित परीक्षणों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

(१) बुद्धि परीक्षण—डा. जलोटा डा. प्रयाग मेहता इलाहाबाद ब्यूरो आफ सायकालाजी द्वारा निर्मित भारतीय परीक्षण लिखित परीक्षणों के उदाहरण हैं। रेवन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस टेस्ट आर्मी अल्फा एवं आर्मी बीटा कैलिफोर्निया शोर्ट फार्म टेस्ट आफ मेन्टल एबिलिटि आदि विदेशी लिखित बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण हैं। इनमें से कुछ परीक्षणों में भाषा का प्रयोग किया जाता है जबकि कुछ परीक्षणों में चित्रों अथवा संकेतों का प्रयोग किया जाता है। भाषा प्रयोग किए जाने

वाले परीक्षणों को शाब्दिक परीक्षण कहते हैं व जिनमें चित्रों आकृतियों अथवा सक्रता का प्रयोग होता है उन्हें अशाब्दिक परीक्षण कहते हैं। जलोटा मेहता आदि के परीक्षण शाब्दिक परीक्षण हैं जब कि रेवेन प्रोग्रेसिव मेट्रिसिस टेस्ट अशाब्दिक परीक्षण है। उपयुक्त बुद्धि परीक्षणों में कुछ शाब्दिक व कुछ अशाब्दिक परीक्षण हैं।

(२) निदानात्मक परीक्षण — शोनेल द्वारा निर्मित गणित के निदानात्मक परीक्षण प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार स्टेनफोर्ड डायग्नोस्टिक रीडिंग टेस्ट वाचन के क्षेत्र में निदानात्मक कार्य के लिए काम में लिया जाता है।

( ) उपलब्धि परीक्षण — विभिन्न विषयों में उपलब्धि की जाँच हेतु अनेक मानवीकृत उपलब्धि परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। आयोवा टेस्ट आफ बेसिक स्किल्स साइन्स रिसर्च एसोसियेट्स एचीवमेंट सीरीज मेट्रोपोलिटन एचीवमेंट टेस्ट्स आदि अनेक मानवीकृत विशेषी परीक्षण हैं जिनका उपयोग विभिन्न स्तरों पर अलग अलग क्षेत्रों में उपलब्धि मापन हेतु किया जाता है।

सूचियाँ

सूचियों का प्रयोग विशेषकर व्यक्तित्व एवं अभिरुचियों के मापन हेतु किया जाता है। बर्नराइटर परसनलिटी इन्वेन्टरी (Bernreuter Personality Inventory) बेल्स एडजस्टमेंट इन्वेन्टरी (Bell s Adjustment Inventory) तथा मिनासोटा मल्टीफासिक इन्वेन्टरी (Minn sota Multi phasic Inventory) व्यक्तित्व सूचियों के कुछ उदाहरण हैं। भारतीय व्यक्तित्व सूचियों में अस्थाना एवं सक्सेना की व्यक्तित्व सूचियाँ प्रमुख हैं। सूचियों में विषयों से कुछ प्रश्न के उत्तर हाँ नहीं या अनिश्चित में देने को कहा जाता है। इन स्तरों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन *किया जाता है। सामान्यतया व्यक्तित्व सूचियों से हमें* व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों का पता चलता है। अभिरुचि सूचियों में सामान्यतया प्रयुक्त सूचियाँ निम्नलिखित हैं। कूडर प्रिफरेन्स रेकार्ड (Kuder Preference Record) स्ट्रांग्स वोकेशनल इन्टरेस्ट ब्लेंक (Strong s Vocational Interest Black) आलपोर्टवरनन स्टडी आफ वेल्यूस (Allportvernon Study of values)। भारत में डा. भिगरन ने स्ट्रांग के व्होकेशनल इन्टरेस्ट ब्लेंक के आधार पर अभिरुचि सूची बनाई है।

चिह्नांकन सूचियाँ

चिह्नांकन सूचियों में व्यक्ति को दिए गए कथनों के सम्बन्ध में अपनी सहमति अथवा असहमति अथवा अनिश्चितता प्रकट करने को कहा जाता है। इनका प्रयोग भी व्यक्तित्व एवं अभिरुचियों के अध्ययन में किया जाता है। उदाहरणार्थ मूनी प्रोब्लेम चेकलिस्ट (Mooney Problem checklist) में स्वास्थ्य अध्ययन घर तथा परिवार आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याएं दी जाती हैं और व्यक्ति जिन

समस्याओं को अनुभव करता है उनको चिन्हांकित करता है। इस प्रकार व्यक्ति का किन क्षेत्रों में किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है इसकी सूचना मिल सकती है। इस सूचना के आधार पर उपरोक्त आवश्यक निर्देशन कार्य कर सकता है।

इसी प्रकार डा. मेहता की अभिरुचि चिन्हांकन सूची भी प्रसिद्ध है। इसमें ३ अभिरुचि क्षेत्रों से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाकलापों का उल्लेख है। प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित पांच पांच क्रियाकलाप लिए गए हैं। विषयी प्रत्येक क्रियाकलाप के प्रति अपनी रुचि अरुचि अथवा उदासीनता अभिव्यक्त करता है। जिस क्षेत्र में अधिक क्रियाकलापों के प्रति रुचि व्यक्ति की होती है वह क्षेत्र विषयी के अभिरुचि का क्षेत्र माना जाता है।

प्रक्षेपी प्रविधियाँ — प्रक्षेपण वह प्रक्रम है जिसमें व्यक्ति अपने अन्तरंग में निहित इच्छाओं आकांक्षाओं एवं विचारों को किसी बाहरी उद्दीपन पर थोपता है। बाह्य उद्दीपन का विवेचन वह इन इच्छाओं आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के आधार पर करता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस मानव स्वभाव का लाभ उठा कर प्रक्षेपी एवं अर्ध प्रक्षेपी प्रविधियों का निर्माण किया है। प्रक्षेपी प्रविधियों में व्यक्ति के सम्मुख स्याही के धब्बे अथवा अस्पष्ट चित्रों के रूप में असंरचित उद्दीपन रख जाते हैं और व्यक्ति उनकी अपने अचेतन में छुपे भावों के आधार पर संरचना करता है। एक ही स्याही के धब्बे के अलग अलग व्यक्ति भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं और एक ही अस्पष्ट चित्र के आधार पर भिन्न भिन्न व्यक्ति बिल्कुल भिन्न कहानियों की रचना करते हैं। व्यक्तियों के इन उत्तरों के विश्लेषण के आधार पर उनके व्यक्तित्व के गठन का पता चलता है। उद्दीपनों में जितनी अस्पष्टता होगी व्यक्ति द्वारा प्रक्षेपण की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी। प्रक्षेपी प्रविधियों के सामान्यतः काम में लाई जाने वाली दो प्रमुख प्रविधियाँ हैं एक तो रोशा परीक्षण (Rorschach Test) व दूसरा थीमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट (Thematic Apperception Test)

रोशा परीक्षण में स्याही के धब्बों के दस चित्र विषयी के सम्मुख एक एक करके प्रस्तुत किए जाते हैं और उसकी अनुक्रियाएं प्राप्त की जाती हैं। इन अनुक्रियाओं के विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। इसका आविष्कार हरमन रोशा (Herman Rorschach) नामक मनोवैज्ञानिक ने किया था।

टी ए टी परीक्षण मरे एवं मोरगन (Murray and Morgan) नामक मनोवैज्ञानिकों की देन है। इस परीक्षण में ३१ कार्ड होते हैं जिनमें से एक कोरा होता है व अन्य ३० कार्डों पर अर्ध संरचित (Semi structured) चित्र बने हुए होते हैं। विषयी इन चित्रों को देख कर प्रत्येक चित्र पर आधारित एक कहानी की रचना करता है। इन कहानियों के विश्लेषण के आधार पर विषयी के व्यक्तित्व

का अध्ययन किया जाता है।

प्रक्षपी प्रविधिया स प्राप्त परिणामा का विवचन इतना जटिल है कि जब तक इसव योग का व्यक्ति को विशप परीक्षण प्राप्त न हो इन प्रविधिया का प्रयोग नही करना चाहिए। यही कारण है कि यहाँ इनकी निवचन विधिया की चर्चा नहीं की गई है।

अन्य प्रक्षेपी प्रविधिया म रोजनत्वग पिक्चर फ्रस्ट्रेशन स्टडी फार पिक्चर टेस्ट सी ए टी ग्रादि प्रमुख हैं। बच्चो की कहानियाँ अथवा रगकहानियाँ भी प्रक्षेपण प्रश्न के अध्ययन हेतु मूल सामग्री के रूप म उपयोग म ली गई हैं। इसी प्रकार गुडियाओ व खेल को भी प्रक्षपी प्रविधि क रूप म काम म लिया गया है।

अर्ध प्रक्षपी प्रविधियाँ—इन विधियों म भी व्यक्ति क प्रक्षेपण की क्रिया के आधार पर उसक व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। किन्तु इसम जो उद्दीपन होते हैं व रोर्शा तथा टी ए टी परीक्षणो जितने असरचित नहीं होते। इन प्रविधिया म उद्दीपन अपूर्ण वाक्यो या कुछ शब्दो के रूप म होते हैं। व्यक्ति जब इन वाक्यो की पूर्ति करता है या शब्दो स वाक्य बनाता है तो ऐसी धारणा है कि वह अपनी अभिवृत्तियो अचेतन इच्छाओ आकांक्षाओ का प्रक्षेपित करता है। इन पूरे किए गए वाक्या के विश्लेषण क आधार पर उसक व्यक्तित्व के शीलगुणो का पता लगाया जाता है। राटस इनकम्पलीट सेन्टेन्सेस ब्लैक (Rotters Incomplete Sentences Blank) एव वर्ड एसोसियशन टेस्ट (Word Association Test) इस कोटि की प्रविधिया के उदाहरण है। राटस इनकम्प्लीट सेन्टेन्सेस ब्लैक मे किस प्रकार के वाक्या की पूर्ति करने को कहा जाता है इसक कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं।

I like.... ... ...
A Mother... ... ...
Boys... ...
Reading ... ...
I failed ...

वाक्य बनाने हेतु दिए गए वाक्यांश इतने असरचित होते हैं कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार वाक्यपूर्ति कर सकता है।

(आ) निष्पादन साधन— निष्पादन साधन अथवा परीक्षण व परीक्षण हैं जिनम व्यक्ति को किसी लिखित समस्या का उत्तर नहीं देना पडता किन्तु कुछ मूत काय करना पडता है जसे कुछ गुट्टों से कोई आकृति बनाना किसी पेटी (Box) म रखे हुए गुट्टों को खिसका कर एक स्थान से दूसर स्थान पर दी हुई आकृति के अनुसार ले जाना चित्र के भागो को जोड कर सम्पूर्ण चित्र बनाना कुछ पुर्जों को जोड कर कुछ वस्तुओ का निर्माण करना अथवा अन्य कई प्रकार के मत काय इन

परीक्षणों में विषयी से करवाए जाते हैं। निष्पादन परीक्षणों का उपयोग सामान्य तथा बुद्धि एवं अभिक्षमता मापन में किया जाता है। इन परीक्षणों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

(i) बुद्धिमापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण कोहस ब्लाक डिजाइन टेस्ट—यह परीक्षण बुद्धिमापन हेतु काम में लिया जाता है। इसमें १६ घनाकार लकड़ी के गुटके होते हैं जिनकी ६ सतहें अलग अलग रंगों से रंगी होती हैं। इन गुटकों के अतिरिक्त कुछ कार्ड भी होते हैं जिन पर रंगीन आकृतियाँ बनी होती हैं। विषयी को इन गुटकों को जोड़ कर कार्ड पर दी गई आकृति जैसी आकृति बनाने को कहा जाता है। कुछ आकृतियाँ ४ गुटकों से बन सकती हैं। कुछ ९ से तथा कुछ समस्त १६ गुटकों से बनाई जाती हैं। प्रत्येक आकृति बनाने में लगे समय को नोट कर लिया जाता है व फिर नियम पुस्तिका में दी गई विधि से बुद्धिलब्धि ज्ञात की जाती है।

बुद्धिमापन हेतु अन्य निष्पादन परीक्षण भी काम में लिए जाते हैं जिनमें से प्रमुख हैं अलिक्जाण्डर पास अलोंग टस्ट (A exander Pa s along Test) क्यूब कन्स्ट्रक्शन टेस्ट (Cube Construction Test) भाटिया बैटरी (Bhatia Battery) वैक्सलर एडल्ट इन्टेलिजेन्स स्केल (Wechsler Adult Intelligence Scale) तथा आर्थर पाइंट स्केल (Arthur Point Scal)।

निष्पादन परीक्षणों की विशेषता यह है कि यदि कोई व्यक्ति पढ़ा लिखा नहीं है या किसी भाषा को नहीं जानता तो भी इन परीक्षणों से उसकी बुद्धि का मापन किया जा सकता है।

(ii) अभिक्षमता मापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण—अभिक्षमता मापन में अधिकतर निष्पादन परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। कुछ अभिक्षमतायों को लिखित साधनों से भी मापा जा सकता है। अभिक्षमता मापन हेतु प्रयुक्त कुछ निष्पादन परीक्षणों के उदाहरण निम्नलिखित हैं —

ओकोनर ट्वीजर डेक्टेरिटी टेस्ट—यह परीक्षण सर्वप्रथम एक विद्युत् कम्पनी में विद्युत् मीटरों एवं अन्य यन्त्रों को जोड़ने के लिए कार्यकर्ताओं के चयन हेतु बनाया गया था। फिर अन्य कार्यों के कार्यकर्ताओं पर भी इसका प्रयोग किया गया। इस परीक्षण के आधार पर ऊंगलियों के कौशल का मापन किया जा सकता है। विशेषकर ऐसे कार्यों में जिनमें चिमटे से सूक्ष्म वस्तुओं को उठाकर निर्धारित स्थान पर रखने की आवश्यकता हो। घड़ीसाज या अन्य सूक्ष्म यन्त्रों से सम्बन्धित मशीनरी में इस अभिक्षमता की आवश्यकता होती है। इस परीक्षण में एक धातु की प्लेट होती है जिसमें एक ओर गड्ढा-सा बना होता है तथा शेष भाग में १०० छिद्र बने होते हैं। छिद्रों की दस समानान्तर पंक्तियाँ होती हैं व प्रत्येक पंक्ति में समान दूरी पर दस छिद्र बने होते हैं। परीक्षण के लिए अन्य आवश्यक सामग्री एक

चिमटी या सी म अधिक पिन डाली हैं जो कि प्लेट म बने छिद्रों म आसानी से जा सकती हैं। परीक्षण म व्यक्ति को प्लेट म बने ग ढे म रखी पिन को चिमटी की सहायता से छिद्र म डालने को कहा जाता है। समस्त सौ छि । म पिन डालने के लिए जितना समय लगता है उसके आधार पर ऊगलियों के कौशल का मापन किया जाता है।

अभिरुचिमता मापन के कुछ अन्य प्रमुख निष्पादन परीक्षण हैं विगली ब्लॉक डिजाइन टेस्ट (Wiggly Block Design Test) स्टेनक्विस्ट मकेनिकल एसेम्बली टस्ट (Stenquist Mechanical Assembly Test) डेट्रायट मैनुअल एबिलिटी टस्ट (Detroit Manual Ability Test) हैण्ड स्टेडिनेस टस्ट (Hand Steadiness Test) आदि।

(ख) वयक्तिक एव सामूहिक साधन

व्यक्ति के अध्ययन हेतु प्रयुक्त साधनों म से कुछ एसे हैं जिनके द्वारा एक समय पर एक ही व्यक्ति का परीक्षण किया जा सकता है एसे साधनों को वयक्तिक साधन कहते हैं। कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनके द्वारा एक साथ किसी भी समूह का परीक्षण किया जा सकता है एसे साधनों को सामूहिक साधन कहते हैं।

(अ) वयक्तिक साधन—वैयक्तिक साधनों स हम एक साथ कई व्यक्तियों का परीक्षण नहीं कर सकते। इसके कई कारण हैं। अधिकतर वयक्तिक साधनों म परीक्षण हेतु कुछ उपकरणों का प्रयोग किया जाता है अत एक समय अधिक उपकरणों का उपलब्ध होना कठिन है। इन परीक्षणों म परीक्षण सामग्री उपकरणों के रूप में होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग निर्देश देने की आवश्यकता होती है अन्यथा परीक्षण में त्रुटि होने की आशंका रहती है। वयक्तिक परीक्षणों म सामान्यतया किसी काय को व्यक्ति कितने समय म पूरा कर सकता है अथवा किसी काय म कितनी त्रुटियाँ करता है इसका अभिलेख रखना पड़ता है। अत यह समूह म सम्भव नहीं हो सकता। चूकि वयक्तिक परीक्षणों म हम एक समय म एक ही व्यक्ति का परीक्षण करते हैं अत परीक्षण म त्रुटि की कम सम्भावना रहती है। साथ ही व्यक्ति जब परीक्षण म दी गई समस्या को हल करता है उस समय के उसके अन्य व्यवहारों का भी अध्ययन इन परीक्षणों म किया जा सकता है। किन्तु इन परीक्षणों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनमें अत्यधिक समय लगता है। अत जब अधिक व्यक्तियों का परीक्षण करना हो तो इन साधनों के प्रयोग म कठिनाई हो सकती है।

अधिकतर निष्पादन परीक्षण वयक्तिक ही होते हैं। अत वयक्तिक परीक्षणों के अलग स उदाहरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं।

(आ) सामूहिक साधन—अधिकतर लिखित परीक्षण कई व्यक्तियों को एक साथ समूह म दिये जा सकते हैं। सामूहिक परीक्षण पुस्तिकाओं के रूप म होते

हैं अत एक साथ कई प्रतियां उपन ध हो सकती हैं। इन्ही पुस्तिकाओं पर सामान्य तथा निर्देश भी छप रहते हैं जोकि एक साथ कइ व्यक्तियों को पढ़कर सुनाए जा सकते हैं। चू कि सामूहिक परीक्षणो म अधिकतर कुछ प्रश्नो के उत्तर देने होते ह अत निर्देशो क समझन म विशेष कठिनाइ होने की आशका नही रहती। इन परी क्षणो म प्रत्येक व्यक्ति का काम करन का समय ज्ञात नही करना पडता किन्तु निश्चित अवधि के पश्चात् उत्तर पुस्तिकाए वापस लनी होती है। अत यह काय भी समूह म किया जा सकता है।

समूह परीक्षणो मे जलोटा का सामान्य मानसिक योग्यता का परीक्षण प्रयाग मेहता का बुद्धि परीक्षण इलाहाबाद ब्यूरो ग्राफ साइकोलाजी के बुद्धिपरीक्षण कूडर एव स्ट्राग की ग्रभिरुचि सूचियां मेहता की व्यावसायिक अभिरुचि चिह्नाकन सूची राटर का वाक्यपूर्ति परीक्षण डी ए टी आदि परीक्षण उल्लेखनीय हैं। समूह परीक्षणो को वयक्तिक परीक्षणो के रूप मे भी काम म लिया जा सकता है किन्तु वयक्तिक परीक्षणो को समूह म एक साथ नही दिया जा सकता। इसम जो कठिनाइयां हैं उनका वणन पहले किया जा चुका है।

समूह परीक्षणो का लाभ यह है कि इनके द्वारा एक साथ कई व्यक्तियो का परीक्षण किया जा सकता है यत समय की बचत होती है। साथ ही आर्थिक दृष्टि से भी इनमे कम व्यय होता है। जहाँ कई व्यक्तियो का परीक्षण करना हो वहा इन परीक्षणो का प्रयोग किया जा सकता है।

(२) अमानकीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधन—

निर्देशन कायकर्ता के लिये केवल मानकीकृत परीक्षणो पर निभर रहना आवश्यक नही। वह वयक्तिक सूचनाओ को एकत्रित करन के कुछ अन्य साधनो का भी निर्माण कर सकता है। कभी कभी तो इन शिक्षक निर्मित अथवा अमानकीकृत साधनो स भी हमें ऐसी सूचनाए प्राप्त होती हैं जो कि मानकीकृत साधनो से नही हो सकती। शिक्षक निर्मित साधनो का उपयोग हम पूरक साधनो के रूप म भी कर सकत है। मानकीकृत साधनो से व्यक्ति सम्बन्धी जो सूचनाए रह गई हो उनको हम शिक्षक निर्मित साधनो से एकत्रित कर सकते हैं। फिर हमारे देश म दो कारणो से शिक्षक निर्मित साधनो क ही अधिक उपयोग की सम्भावना हो सकती है। एक तो हमारे यहा अर्थाभाव के कारण प्रत्येक शाला म सभी आवश्यक मानकीकृत परीक्षणो के खरीदने की निकट भविष्य म कल्पना नही की जा सकती। फिर भारत म सभी क्षेत्रो म पर्याप्त मानकीकृत परीक्षण उपल ध भी नही हैं। हिन्दी म तो फिर भी कुछ परीक्षण उपलब्ध हैं किन्तु अन्य प्रान्तीय भाषाओ म तो मानकीकृत परीक्षणो की ओर भी कमी पाई जाती है। अत इन परिस्थितियो मे सबसे व्याव हारिक हल जो दृष्टिगोचर होता है वह है शिक्षक निर्मित साधनो का। विदेशी परिस्थितियो मे निर्मित एव मानकीकृत साधनो के प्रयोग स अधिक वाछनीय तो यह

है कि हम शिक्षक निर्मित साधनों का प्रयोग करें। शिक्षक निर्मित कुछ साधनों के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) निर्धारण मापनी—निर्धारण मापनी के आधार पर हम किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों की क्या राय है यह ज्ञात करते हैं। व्यक्ति के विभिन्न गुणों के सम्बन्ध में एसे व्यक्तियों से राय प्राप्त की जाती है जिनका व्यक्ति से निकट का सम्बन्ध है। *निर्धारण मापनी में किसी भी गुण को विभिन्न स्तरों पर* परिभाषित किया जाता है और निर्धारक यह बताता है कि व्यक्ति में यह गुण किस स्तर पर है। केवल बहुत अधिक सामान्य या बहुत कम इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करने की अपेक्षा गुण को इन स्तरों पर गुणात्मक रूप से उसके व्यवहार अभिव्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्तर को १ २ ३ ४ ५ आदि अङ्क दिए जाते हैं ताकि गुण निर्धारण गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों रूप से किया जा सके। परिमाणात्मक गुण *निर्धारण से हम समस्त कक्षा में बालक का इस गुण के सन्दर्भ में क्या स्थान है यह पता लगाने में सहायता मिलती है तथा यदि तुलनात्मक अध्ययन करना हो तो* भी परिमाणात्मक मूल्यांकन उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उदाहरणार्थ—

स्वतः प्रेरणा

१	२	३	४	५
नए कार्य या जिम्मेदारियाँ अपने आप ढूँढ निकालता है।	किसी भी कार्य में आगे रह कर भाग लेता है।	*दी गई जिम्मेदारी को निष्ठा के साथ वहन करता है।*	*जिम्मेदारी का काम* लेने में हिचकिचाहट अनुभव करता।	किसी भी कार्य में भाग लेने की इच्छा नहीं रखता है।

निर्धारण मापनी में व्यक्ति के स्वतः प्रेरणा का मूल्यांकन करने हेतु निर्धारक देखेगा कि व्यक्ति सामान्यतया किस प्रकार का व्यवहार करता है और उसके अनुकूल स्वतः प्रेरणा व्यक्ति में किस स्तर पर है इसका वह चिह्नांकन करेगा। किसी भी गुण को जितनी स्पष्टता से विभिन्न स्तरों पर परिभाषित किया जाएगा गुण के मापन में उतनी ही कम त्रुटि होने की आशंका होगी। गुण की सुस्पष्ट परिभाषा निर्धारक को यह जानने में सहायक होती है कि अमुक गुण से हमारा क्या तात्पर्य है या इस गुण के अन्तर्गत किस प्रकार के व्यवहारों की कल्पना की जा रही है।

(अ) निर्धारण मापनी के लाभ—निर्धारण मापनी का सबसे बड़ा लाभ यह

है कि इसे किसी भी विद्यालय में बड़ी सरलता से शिक्षकों द्वारा निर्मित किया जा सकता है। इसके उपयोग में अन्य साधनों की अपेक्षा अत्यन्त कम व्यय होता है अतः भारतीय परिस्थितियों में इसकी अधिक उपादेयता है। इसके उपयोग हेतु विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती अतः कोई भी शिक्षक इसका उपयोग कर सकता है। इसमें उन्हीं गुणों का समावेश किया जा सकता है जिनके सम्बन्ध में हम सूचनाएं प्राप्त करनी हैं।

(आ) निर्धारण मापनी के निर्माण एवं उपयोग सम्बन्धी कुछ प्रमुख सावधानियाँ

(i) निर्धारण मापनी की सफलता जैसाकि पहले कहा जा चुका है बहुत सीमा तक इस पर निर्भर करती है कि गुणों की परिभाषा विभिन्न स्तरों पर कितने स्पष्ट रूप से की गई है। केवल अत्यधिक अधिक सामान्य कम और बहुत कम इन स्तरों में गुण को चिह्नांकित करने के लिये कहना गुण के सही मूल्यांकन में सहायक नहीं होता। इन स्तरों पर गुण का व्यवहार व्याख्या करना गुण के सही मूल्यांकन के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(ii) निर्धारण मापनी का उपयोग उन्हीं व्यक्तियों को करना चाहिए जोकि विषयी से निकट रूपेण सम्बन्धित हों। तभी विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावनाएं हो सकती हैं।

(iii) किसी भी गुण का निर्धारण करते समय अल्पकालीन प्रेक्षणों के आधार पर अपना मत व्यक्त नहीं करना चाहिए। लम्बी अवधि तक यदि गुण का प्रेक्षण किया गया हो तभी उन अनुभवों के आधार पर गुण निर्धारण करना वाञ्छनीय होगा।

(iv) अनेक बार यह देखा गया है कि निर्धारक व्यक्ति के गुणों के निर्धारण हेतु आवश्यक कष्ट नहीं उठाते और केवल औपचारिकता निभाने हेतु कहीं भी चिह्न लगा देते हैं। इस सम्भावना को कम करने हेतु अनेक बार निर्धारकों से जिन प्रेक्षणों के आधार पर गुणों का निर्धारण किया गया है उन्हें भी लिखने के लिए कहा जाता है।

(v) यह भी देखा गया है कि निर्धारक सामान्यतया नकारात्मक राय देने से सकोच करते हैं और केवल अच्छे पक्षों को ही प्रकाश में लाना चाहते हैं फलस्वरूप व्यक्ति में कोई दुर्गुण भी हो तो वे उसे सामान्य स्तर पर चिह्नांकित करते हैं। अतः निर्धारकों को स्पष्ट निर्देश दिए जाएं कि वे निःसंकोच गुणों का निर्धारण करें और यह भी आश्वासन दिया जाए कि उनके निर्धारण गोपनीय रखे जाएँगे।

(vi) निर्धारण मापनी का प्रयोग करते समय निर्धारक को यह सावधानी रखनी चाहिए कि अपने पूर्वाग्रह, व्यक्तिगत रुचियों, अरुचियों आदि का प्रभाव व्यक्ति के गुण निर्धारण पर न पड़ने पाए।

(vii) निर्धारण मापनी से प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता को बढ़ाने हेतु एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी व्यक्ति के गुणों का निर्धारण करवाना लाभ

प्रद सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भी गुण का निर्धारण वर्ष म कम से कम दो तीन बार करना चाहिए क्योंकि हो सकता है वर्ष के प्रारम्भ म या कुछ समय तक एक गुण विकसित न हुआ हो किन्तु बाद मे वह गुण विकसित हो जाए अत कई बार गुणो का निर्धारण करने से हमे विश्वसनीय सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं।

(ख) उपाख्यान वृत्त—व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाए एकत्रित करने का एक और अप्रमानीकृत साधन हो सकता है उपाख्यान वृत्त। इस साधन म शिक्षक यदि किसी बालक से सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण घटना देखता है तो उसका संक्षिप्त वर्णन एक प्रपत्र पर लिख कर निर्देशक तक पहुँचा देता है। व्यक्ति से सम्बन्धित ऐसी घटनाओं के संकलन विश्लेषण से व्यक्ति के अध्ययन मे सहायता मिल सकती है। उपाख्यान वृत्त जिस प्रपत्र पर लिखा जा सकता है उसका एक प्रस्तावित स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

विद्यालय का नाम

उपाख्यान वृत्त प्रपत्र

छात्र का नाम

कक्षा

घटना के प्रेक्षण का दिनांक

घटना का संक्षिप्त विवरण

घटना प्रेक्षक के हस्ताक्षर

इन उपाख्यान वृत्त प्रपत्रों को एकत्रित करने हेतु निर्देशन केन्द्र में एक पेटी रखी जा सकती है जिसमें शिक्षक उपाख्यान वृत्त प्रपत्रों को कभी भी डाल सकते हैं। समय समय पर निर्देशन कार्यकर्त्ता इन प्रपत्रों को निकाल कर सम्बन्धित छात्र के संचित अभिलेख में रख सकता है। छात्र के संचित अभिलेख में ऐसे उपाख्यान वृत्त जब एकत्रित हो जाएं तो उनसे प्राप्त सूचनाओं को अभिलेख में स्थाई रूप से स्थानान्तरित किया जा सकता है। केवल महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को ही संचित अभिलेख में स्थानान्तरित करना चाहिए।

(अ) उपाख्यान वृत्त का महत्त्व— औपचारिक रीति से विशद प्रेक्षण की चर्चा हमने प्रारम्भ में की है किन्तु अनेक बार इतना विस्तृत निरीक्षण न तो सम्भव हो पाता है न ही सदैव इसकी आवश्यकता ही अनुभव की जाती है। फिर वस्तुतः एवं औपचारिक प्रेक्षण में समय भी अधिक लगता है। उपाख्यान वृत्त भी एक प्रकार से व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धी प्रेक्षणों का अभिलेख ही है। अन्तर केवल यह है कि इसमें केवल किसी घटना विशेष सम्बन्धी प्रेक्षणों का समावेश होता है तथा यह अधिक औपचारिक प्रेक्षण नहीं होता। घटनावृत्त क्योंकि विभिन्न शिक्षकों से प्राप्त होते हैं अतः एक ही व्यक्ति के प्रेक्षणों में जो व्यक्तिनिष्ठता आ जाने की आशंका रहती है वह दोष कुछ सीमा तक इस साधन के प्रयोग से कम हो जाता है। फिर उपाख्यान वृत्त के उपयोग हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती अतः इनका उपयोग कोई भी शिक्षक कर सकता है।

(आ) उपाख्यान वृत्त की आवश्यकता—पाठकों के मन में यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि शिक्षक जिन व्यवहारों को देखते हैं उन्हें लिखित रूप में निर्देशन कार्यकर्त्ता के पास क्यों पहुँचाएं। इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि जितने अधिक व्यक्तियों के प्रेक्षण निर्देशन कार्यकर्त्ता के पास होंगे उतनी ही अधिक विश्वसनीय राय वह छात्र के सम्बन्ध में बना सकता है। लिखित रूप से अपने प्रेक्षण उपबोधक के पास पहुँचाने से तथ्यों में अन्तर पड़ने की सम्भावना कम हो जाती है। केवल स्मृति पर आधारित तथ्यों पर हम अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

(इ) उपाख्यान वृत्त में किन घटनाओं का समावेश किया जाए—एक बिन्दु हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि उपाख्यान वृत्तों में केवल महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ही उल्लेख किया जाए। ये घटनाएं ऐसी होनी चाहिए जिनसे हमें व्यक्ति की क्षमताओं तथा कमियों समायुमाथियों के साथ अन्तः सम्बन्धों का पता चलता हो। छात्र के आक्रामक व्यवहार पलायन प्रवृत्ति सौहार्दपूर्ण व्यवहार आदि महत्त्वपूर्ण व्यवहारों से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन यदि किया जाए तो छात्र के व्यक्तित्व को अधिक अच्छी तरह से समझने में सहायता मिल सकती है। उपाख्यान वृत्त में घटना की पृष्ठभूमि तथा घटना के महत्त्वपूर्ण तथ्य दोनों का समावेश होना चाहिए ताकि तथ्यों

के निवचन म सुविधा न सके। यदि उपाख्यान का लिखन वाला व्यक्ति घटना के आधार पर अपना निष्कर्ष भी लिखना चाहता है तो स्पष्ट रूप स अलग करके लिखना चाहिए। घटनाएँ एसी न हो जो या तो छात्र के किसी सामान्य गुण की पुष्टि करती हो अथवा छात्र सम्बन्धी किसी सामान्य धारणा के विपरीत हो। कहने का तात्पर्य यह कि घटनावृत्त तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है जब उनमे वर्णित घटनाएँ महत्वपूर्ण हो।

(२) आत्म विवरणात्मक साधन

मानवीकृत एव अमानवीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधनो के अतिरिक्त कुछ साधन एस भी हो सकते हैं जिसमे छात्र स्वय म सम्बन्धित सूचनाए स्वय ही प्रदान करता है। इन्हे आत्म विवरणात्मक साधन कह सकते हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

(क) आत्मकथा—अमानवीकृत साधनो म आत्मकथा भी एक महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। भाषा के शिक्षक कक्षा-कार्य के रूप म छात्रों स अपनी अपनी आत्मकथाए लिखवा सकते हैं। इन आत्मकथाओ के अध्ययन एव विश्लेषण स व्यक्ति के जीवन स सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं। आत्मकथा लिखने का कार्य अनौपचारिक ढ ग स किया जाना चाहिए ताकि छात्रो म परीक्षण चेतना न जाग्रत हो जाए और वे अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओ को अधिक स्वतन्त्र भाव स लिख सके।

(ख) घटना विवरण—कभी-कभी छात्र स सम्पूर्ण आत्मकथा लिखवाने की बजाय अपने जीवन से सम्बन्धित केवल एक या दो अत्यन्त सुखद एव अत्यन्त दुखद घटनाओ का वर्णन करने को कहा जाता है। इन घटनाओ स छात्र के जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं।

(ग) प्रश्नावलियाँ—प्रश्नावली के माध्यम स भी छात्रो के जीवन स सम्बन्धित सूचनाए उन्हीं से प्राप्त की जा सकती हैं। प्रश्नावली म ऐसी सूचनाओ का सकलन करने का प्रयास करना चाहिए जिन्हे छात्र द्वारा छिपाने की सम्भावना न हो। छात्र की अध्ययन सम्बन्धी समञ्जन सम्बन्धी स्वास्थ्य एव परिवार सम्बन्धी सूचनाए प्रश्नावलियो द्वारा स्वय छात्र स प्राप्त की जा सकती हैं।

(४) वैयक्तिक सूचना-सकलन हेतु प्रयुक्त साधनो के उपयोग के प्रमुख सिद्धान्त

पाठको के सम्मुख विभिन्न प्रकार के सूचना-सकलन के साधनो का एक विहगम चित्र प्रस्तुत करने के पश्चात अब हम इन साधनो के उपयोग के कुछ मूलभूत सिद्धान्तो की चर्चा करना चाहेगे। सर्वप्रथम मानवीकृत साधनो के प्रयोग के सिद्धान्तो की चर्चा की जाएगी तत्पश्चात अन्य साधनो के प्रयोग सम्बन्धी सिद्धान्तो का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

(क) मानकीकृत साधनो के उपयोग के सिद्धात

(अ) मानकीकरण सम्बन्धी सूचनाए—किसी भी मानकीकृत साधन के प्रयोग से पूर्व हम उसके मानकीकरण सम्बन्धी सूचनाओ से अवगत हो जाना चाहिए अर्थात हम देख लेना चाहिए कि साधन की विश्वसनीयता एव वैधता स्तर सन्तोष जनक है कि नही। साथ ही इस बात से भी आश्वस्त हो जाना आवश्यक है कि जिस समष्टि पर साधन का मानकीकरण किया गया है उसम और जिस समुदाय के लिए साधन का प्रयोग किया गया है उसम साम्य है कि नही। अनेक बार यह देखा गया है कि अपरिपक्व कायकर्ता विदेशी परीक्षणा का बिना सोचे समझे प्रयोग कर लते हैं। इस प्रकार के परीक्षणो से प्राप्त सूचनाओ का व्यक्ति के अवबोध की दृष्टि से विशेष महत्व नही होता।

(आ) साधन की उपयुक्तता—अनेक बार बहुत उच्च कोटि का साधन होते हुए भी हम यह देख लेना चाहिए कि जिन परिस्थितियो मे हम साधन का प्रयोग करना है उन परिस्थितियो म उसका प्रयोग किया जा सकता है कि नही। साधन म प्रयुक्त भाषा साधन की कीमत साधन के प्रयोग मे लगने वाला समय साधन की जटिलता साधन के प्रयोग हेतु आवश्यक प्रशिक्षण आदि कुछ ऐसे बिंदु हैं जो हम यह निर्णय लेने म सहायक हो सकते हैं कि हम साधन का प्रयोग कर सकते है या नही।

(इ) साधन से प्राप्त दत्त—साधन से दत्त किस रूप म प्राप्त होता है यह भी साधन के चयन म एक महत्वपूर्ण निर्धारक कारक हो सकता है। आजकल किसी भी गुण का मापन एकात्मक प्राप्ताक के रूप म करने की बजाय विभेदक प्राप्ताकों के रूप मे करना अधिक उपयोगी समझा जाता है। अत जिन परीक्षणो म बुद्धि का मापन बुद्धिलब्धि के रूप म किया जाता है उसके स्थान पर उन परीक्षणो को अधिक प्रधानता दी जाती है जिनमे बुद्धि का मापन साख्यिक शाब्दिक यात्रिक आदि योग्यताओ के प्राप्ताको के रूप म किया जाता है। इसी प्रकार व्यक्तित्व का मापन भी व्यक्तित्व के विभिन्न शील गुणो के सदर्भ म किया जाय तो इन परिणामो की अधिक सार्थकता हो सकती है। डिफरेन्शियल एप्टिट्यूड बैटरी वेक्सलर एडल्ट इन्टेलिजेन्स स्केल ऐसे परीक्षण हैं जिनम एकात्मक प्राप्ताको के स्थान पर विभेदक प्राप्ताक प्राप्त होते हैं। जबकि बिने स्केल एव इसके आधार पर बनाए गए अन्य परीक्षण तथा जलोटा भाटिया मेहता आदि के बुद्धि परीक्षणो म हम बुद्धिलब्धि (I Q) के रूप म एकात्मक प्राप्ताक प्राप्त होते हैं।

(ई) साधन के उपयोग पक्ष उससे पूर्ण परिचित होना—किसी भी साधन का प्रयोग हम तबतक नही करना चाहिए जबतक हम उसकी सामग्री प्रशासन आदि विधि एव अकन विधि से पूर्णरूप से परिचित न हो। केवल परीक्षण के सम्बन्ध म परीक्षण नियम पुस्तिका म पढ लेना मात्र पर्याप्त नही होता। अनेक बार

परीक्षण के उपयोग के समय प्रयक्ष कठिनाइयाँ आ सकती है। अतः सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि परीक्षण के उपयोग से पूर्व उसका अच्छा अभ्यास कर लिया जाय।

(उ) प्रशासन के समय सावधानियाँ—मानकीकृत परीक्षण के मानकीकरण में उनके निश्चित प्रशासन विधि भी सम्मिलित होती है। अतः परीक्षण का प्रशासन ठीक उसी प्रकार से होना चाहिए जैसाकि नियम पुस्तिका में सुझाया गया है निर्देशन एवं उनकी भाषा में भी अन्तर करना वाञ्छनीय नहीं होगा। अपने मन से नए निर्देश जोड़ देना अथवा निर्धारित निर्देशों में परिवर्तन करना परिणामों को दूषित करना होगा। परीक्षण के प्रशासन से पूर्व परीक्षण सामग्री को पुनः जाँच कर लेनी चाहिए ताकि परीक्षण के समय अनावश्यक समय नष्ट न हो। परीक्षण के प्रशासन के समय भौतिक सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक होता है। ठीक बैठने व लिखने की व्यवस्था, हवा व प्रकाश की ठीक व्यवस्था, अनावश्यक व्यवधानों का न होना उचित परीक्षण के लिए आवश्यक पूर्वनिश्चितताएँ हैं। प्रशासन से पूर्व यह भी देख लेना चाहिए कि विषयी परीक्षण देने की मन स्थिति में है या नहीं। थकान, मानसिक तनाव, किसी अन्य कार्य की ओर आकर्षण, शारीरिक अस्वस्थता आदि ऐसे कारक हैं जो परीक्षण के परिणामों पर निश्चित रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में परीक्षण का प्रशासन निरर्थक होगा।

(ऊ) परीक्षणों के परिणाम—जैसाकि हमने प्रारम्भ में कहा है हम वैयक्तिक सूचना व्यक्ति या स्वयं के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करने हेतु एकत्रित करते हैं। अतः व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह इन साधनों से प्राप्त सूचनाओं का उपयोग कर सके। इसका अर्थ यह नहीं कि हम उसे परीक्षण के परिणाम जैसे के तैसे बता दें। ऐसा करने से व्यक्ति की सहायता करने के स्थान पर हम हानि पहुँचा देंगे। मनोवैज्ञानिक परीक्षण के परिणाम उसी रूप में बता देना न तो व्यक्ति के लिए किसी भी रूप में उपयोगी सिद्ध होगा न ही वाञ्छनीय भी। हम तो परीक्षण परिणामों के विवेचन इस रूप में व्यक्ति के सम्मुख रखने होंगे जिनको कि वह समझ सके और उनका उपयोग कर सके। उदाहरणार्थ यदि हम किसी बालक को कह दें कि तुम्हारी बुद्धिलब्धि ७० है तो यह सूचना उस बालक के लिए किस तरह उपादेय सिद्ध होगी? इस निम्न बुद्धि स्तर के क्या अभिप्राय अर्थ हैं उसकी भविष्य योजनाओं में इसका किस तरह ध्यान रखा जा सकता है। ये सूचनाएँ यदि हम उस बालक को दें तो यह कदाचित् उसके लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

(ए) मानकीकृत साधन ही एकमेव साधन नहीं—नवीन उत्साही निर्देशन कार्यकर्ताओं को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग का अत्यधिक शौक होता है एवं कुछ भ्रामक धारणा भी मन में बन जाती है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर ही निर्देशन कार्य हो सकता है। अतः निर्देशन सेवाएँ परीक्षण सेवाओं में बदल जाती हैं। एक समय था जब निर्देशन पर प्रायोगिक मनोविज्ञान का इतना प्रभाव हो

गया था कि नीग निर्देशन एव मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को एक दूसरे का पर्यायवाची ही समझने न। किसी पाठशाला म कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर लिए जात थे और प्रधानाध्यापक बन गव स कहत थे कि हमारे यहा निर्देशन काय बड़ा उत्तम चल रहा है। यह धारणा धीरे धीरे लुप्त हुई। आज हम यह मानत है कि निर्देशन के अनेक साधना म स मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक साधन है—एक मात्र साधन नहीं। अत सूचनाओं को सम्पन्न बनाने हेतु हम अन्य साधनों एव प्रविधियों स भी सूचनाए प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

(ि) भारत मे परीक्षणों के प्रयोग की विशेष सावधानियां—मानकीकृत साधनों के प्रयोग के सामान्य सिद्धांतों की चर्चा तो उपरोक्त अनुच्छेदों म कर दी गई है किन्तु भारत म जब हम इन परीक्षणों का प्रयोग करते है तो हमें कुछ विशेष सावधानियां बरतनी पड़ती है। भारतीय बच्चों के मन म परीक्षणों के प्रति भय रहता है। व इन परीक्षणों को भी सामान्य शालीय परीक्षा जसा ही समझते हैं और अपने निष्पादन का उत्तम दर्शन हेतु *अनुचित विधियां अपनाते हैं। लेखक को यह अनुभव है कि वाक्यपूर्ति परीक्षण जैसे सामान्य परीक्षण म भी बालक दूसरे बालक द्वारा* बनाए गए वाक्यों की नकल करने का प्रयास करते हैं। अत परीक्षण के प्रशासन के समय बालकों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह कोई परीक्षा नहीं है। इसके अक उनकी परीक्षा के अकों म नहीं जुड़ेंगे। सूचियों चिह्नांकन सूचियां प्रक्षेपी अथवा अर्ध प्रक्षेपी विधियों म तो हम यह भी कह सकते हैं कि इन परीक्षणों म कोई एक उत्तर ठीक अथवा गलत नहीं है। अत दूसरे के उत्तरों को देखने की आवश्यकता नहीं। भारतीय बालकों को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अभ्यास नहीं होता। अत निर्देशों को स्पष्ट करने हेतु कई बार दोहराना पड़ सकता है। और परीक्षण प्रारम्भ करने स पूर्व आश्वस्त हो जाना आवश्यक होता है कि बच्चे निर्देश समझ गए है अथवा नहीं।

(ख) अमानकीकृत साधनों के उपयोग के सिद्धान्त—अमानकीकृत साधनों की विश्वसनीयता वस्तुनिष्ठता एव वैधता यद्यपि सांख्यिकीय विधियों स सिद्ध नहीं *की जाती फिर भी इन साधनों मे उपयुक्त गुणों का होना आवश्यक है* और यह गुण तभी आ सकते हैं जब हम इन साधनों के निर्माण एव उपयोग म कुछ सावधानियां रखें। अमानकीकृत साधनों से प्राप्त दत्त की उपयोगिता बढाने हेतु कुछ बिन्दु ध्यान मे रखे जा सकते है।

(अ) निर्माण के प्रमुख सोपान—यदि किसी शिक्षक निर्मित साधन की उपादेयता को हम बढ़ाना चाहते हैं तो उसका निर्माण वैज्ञानिक ढग से किया जाना चाहिये। किसी साधन के निर्माण का सर्वप्रथम सोपान है—सम्बन्धित साहित्य एव क्षेत्र के विशेषज्ञों की राय के आधार पर साधन म सम्मिलित की जाने वाली सामग्री का चयन। यदि हम गणित का उपलब्धि परीक्षण बना रहे हैं तो कुछ अच्छे गणित शिक्षकों की राय इस बारे म जानी जा सकती है कि इस परीक्षण म

कौन-कौन से बिन्दुओं का समावेश किया जाय। फिर निर्माता इन साधनों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर साधन का एक प्रारूप तैयार करे। इस प्रारूप को अन्तिम न माना जाए। कुछ व्यक्तियों पर इस प्रारम्भिक प्रारूप का पूर्व परीक्षण किया जाय। पूर्व परीक्षण के परिणामों के आधार पर प्रारम्भिक प्रारूप में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए और फिर साधन का अन्तिम रूप निर्धारित करना चाहिए। अनेक बार प्रश्नावलियों का जब पूर्व परीक्षण किया जाता है तो हमें यह देखने को मिलता है कि कुछ प्रश्नों के उत्तर कोई भी व्यक्ति नहीं देता अथवा कुछ प्रश्न स्पष्ट नहीं होते अथवा कुछ प्रश्नों का सब व्यक्ति एक जैसा ही उत्तर देते हैं। अतः प्रश्नावली का अन्तिम प्रारूप निर्धारित करते समय हम ऐसे प्रश्नों को या तो हटा देते हैं या उनको परिष्कृत कर देते हैं।

(आ) उपयोग से सम्बन्धित सावधानियाँ—अ-मानकीकृत परीक्षणों में व्यक्ति निष्ठता की मात्रा अधिक होती है। अतः जो व्यक्ति इन साधनों को काम में लें उसे इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिए कि वह तटस्थ होकर व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाएं दे। सूचनाएं प्रस्तुत करते समय अपने पूर्वाग्रहों, रुचियों, अरुचियों आदि का प्रभाव न पड़ने दे। व्यक्तिनिष्ठता के तत्व को कम करने हेतु अनेक बार हम एक ही साधन द्वारा एक से अधिक व्यक्तियों से विषयी सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करते हैं। जिन सूचनाओं में तालमेल न हो उन्हें हम काम में नहीं लेते अथवा उनके सम्बन्ध में और अधिक छानबीन करते हैं।

भारत में उपलब्ध परीक्षणों के कुछ उदाहरण

वैसे तो यथा स्थान विदेशी परीक्षणों के साथ साथ भारतीय परीक्षणों के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। फिर भी पाठकों की सुविधा हेतु कुछ भारतीय परीक्षणों की सूची भी यहां प्रस्तुत की जा रही है।

बुद्धि परीक्षण—

बुद्धि परीक्षणों के क्षेत्र में भारत में सबसे अधिक काम हुआ है। हमारे देश में इस क्षेत्र में अग्रगामी कार्य सर्वप्रथम डा. राइस (1922) तथा डा. कामथ (1935) ने किया इन्होंने सर्वप्रथम बिने स्केल से भारतीय अनुकूलनों का निर्माण किया। तत्पश्चात इसी प्रकार के और अन्य परीक्षण भी हमारे सामने आये इनमें (I E Individual scale of Intelligence) प्रमुख है जिसका कि निर्माण डा. उदयशंकर के मार्गदर्शन में किया गया। सामूहिक लिखित बुद्धि परीक्षणों में डा. एस जलोटा, डा. प्रयाग मेहता इलाहाबाद ब्यूरो आफ साइकोलोजी द्वारा निर्मित परीक्षण प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त डा. जोशी, डा. भाटिया, डा. सोहनलाल आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी बुद्धि परीक्षण बनाकर इस क्षेत्र को सम्पन्न किया है। शिशुओं के बुद्धिमापन हेतु बड़ौदा की डा. प्रमिला फाटक द्वारा गुड इनफ ड्रा ए मैन टैस्ट का भारतीय अनुकूलन किया गया है। इसी प्रकार निष्पादन बुद्धिपरीक्षणों में डा.

सी एम भाटिया द्वारा निर्मित भाटिया बैटरी प्रसिद्ध है।

व्यक्तित्व परीक्षण—भारत में भी अनेक व्यक्तित्व सूचियों का निर्माण हुआ है जिनमें टा अस्थाना की समायोजन सूची डा सक्सेना की व्यक्तित्व परख प्रश्नावली बिहार के शैक्षिक व्यावसायिक ब्यूरो द्वारा निर्मित बेल एडजस्टमेंट इन्वेन्ट्री का भारतीय अनुकूलन जोशी एवं पाण्डे द्वारा निर्मित मूनी प्राबलम चेक लिस्ट का हिन्दी अनुकूलन प्रमुख है। इनके अतिरिक्त लगभग २५ व्यक्तित्व सूचियां अथवा मापनियां और उपलब्ध हैं।

प्रक्षेपी विधियों में डा उदय पारीक द्वारा किया गया रोजनवेग (Rosenzweig) पिक्चर फ्रस्टेशन स्टडी का भारतीय अनुकूलन उल्लेखनीय है। इसी प्रकार इलाहाबाद ब्यूरो ने टी ए टी (T A T) का भारतीय अनुकूलन तैयार किया है।

अभिरुचि परीक्षण—डा किशोरन ने स्ट्रांग के वोकेशनल इंटरेस्ट ब्लैंक का तथा बिहार ब्यूरो आफ एजूकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स ने कूडर प्रिफरेंस रेकार्ड के भारतीय अनुकूलनों का निर्माण किया है। डा चेटर्जी डा आर पी सिंह डा पाण्डे डा कुलश्रेष्ठ आदि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अभिरुचि परीक्षणों का निर्माण किया है। इसी प्रकार डा एच पी महता ने अंग्रेजी में एक व्यावसायिक अभिरुचि चिह्नांकन सूची (Vocational Interest check list) का निर्माण किया है।

अभिक्षमता परीक्षण—अभिक्षमता परीक्षणों में डा गोहरीन का विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण डा श्यामानन्द शर्मा द्वारा निर्मित यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण यात्रा उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त बिहार ब्यूरो बम्बई गाइडेंस ब्यूरो उत्तर प्रदेश मनोविज्ञान शाला आदि संस्थाओं ने भी अनेक अभिक्षमता परीक्षणों का निर्माण किया है।

भारत में प्रकाशित एवं अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षण सामान्यतया निम्न प्रकाशकों अथवा कम्पनियों के पास उपलब्ध हो सकते हैं।

(१ पुरोहित एण्ड पुरोहित पूना
(२) मानसायन ३२ नेताजी सुभाष मार्ग देहली—६
( ) रूपा साइकालोजिकल कारपोरेशन वाराणसी
(४) साइको सेन्टर ग्रीन पार्क न्यू देहली
(५) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस (डा सक्सेना की व्यक्तित्व सूची के लिए)
(६) मनोविज्ञान केन्द्र २४६ बनिया स्ट्रीट मेरठ कैंट।
(७) इण्डियन साइकोलाजिकल कारपोरेशन लखनऊ—३
(८) साइकोलोजिकल टेस्टिंग सेन्टर आगरा—२

उपसंहारात्मक कथन—इस अध्याय में वैयक्तिक सूचनाओं को एकत्रित करने हेतु प्रयुक्त विभिन्न प्रविधियों एवं साधनों की चर्चा की गई है। वैयक्तिक सूचना एक

त्रित करने का कार्य निर्देशन कार्य के सफल संचालन हेतु अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं जितनी सम्पन्न होंगी उतनी ही व्यक्ति को आत्मज्ञान एवं आत्मनिर्णय लेने में सुविधा होगी। व्यक्ति की क्षमताओं, अभिरुचियों के ज्ञान के अभाव में लिए गए निर्णय निराशाओं को जन्म दे सकते हैं। व्यक्तिगत सूचनाएं तभी सम्पन्न हो सकती हैं जब हम विविध स्रोतों से व्यक्ति के बहुआयामी व्यक्तित्व सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करें। इन विभिन्न स्रोतों में स्वयं व्यक्ति भी सूचनाओं का एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत है। व्यक्ति से सूचनाएं प्राप्त करने के विविध साधन हैं एवं अनेक प्रविधियाँ हैं जिनका इस अध्याय में विस्तृत वर्णन किया गया है। कुछ साधन मनोवैज्ञानिकों के अथक परिश्रमों की देन हैं जिनके द्वारा वस्तुगत विश्वसनीय एवं सामग्री प्राप्त हो सकती है। जबकि कुछ ऐसे भी साधन हैं जिनका निर्माण शिक्षक स्वयं कर सकता है। इन शिक्षक निर्मित साधनों की वस्तुनिष्ठता वैधता एवं विश्वसनीयता बढ़ाने हेतु उनके निर्माण एवं उपयोग के समय कुछ सावधानियाँ रखनी चाहिए। इनका भी वर्णन इस अध्याय में किया गया है। मनोवैज्ञानिक मानकीकृत परीक्षण यद्यपि अत्यन्त वैध एवं विश्वसनीय सूचनाएं प्रदान करते हैं तथापि इनके दुरुपयोग की अधिक आशंकाएं हैं। इनसे वास्तविक रूप से उचित सूचनाएं प्राप्त करने हेतु इनका उपयोग अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए। इस खतरे से बचने के लिए इन मानकीकृत साधनों के उपयोग के कुछ आधारभूत सिद्धान्त भी इस अध्याय में दिए गए हैं। फिर भारत में तो इन परीक्षणों को और भी अधिक सावधानी से काम में लेने की आवश्यकता है। हमारे यहां परीक्षणों के आदी नहीं होने परीक्षा के प्रति उनके मन में भय रहता है और परिणामों के प्रति अनावश्यक चिंता उनके मन में बनी रहती है। इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारतीय बालकों के परीक्षण में अधिक सतर्कता रखना आवश्यक है। अन्त में इस अध्याय में भारत में उपलब्ध कुछ मानकीकृत साधनों के भी उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। अब अगले अध्याय में पर्यावरणीय सूचनाओं को एकत्रित करने की विधियों के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी।

सूचना सम्मलन का मूल्यांकन (ग) कक्षागत कार्य (घ) पाठ्येतर क्रियाओं के माध्यम से (ङ) अभिभावक दिवस (च) निर्देशन दिवस (छ) नाना में उत्तम पर्यावर्णीय सूचना सामग्री का प्रचार (ज) उच्चस्तरीय विद्यालयों से मत उप सहायात्मक कथन)

निर्देशन कार्य की सफलता दो प्रकार की सूचनाओं पर निर्भर करती है एक तो व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं एवं दूसरी जिस पर्यावरण में सम्बन्धित समस्या उद्भूत हुई है उस पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाएं। जैसे जैसे विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति हुई है हमारा जीवन अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है। पहले तो परिवार अपने आप में एक आत्मनिर्भर इकाई था और परिवार के वरिष्ठ सदस्य ही सब की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देते थे। अध्ययन एवं जीविकोपार्जन का कार्य भी इतना जटिल न था जहां विविध विषयों अथवा व्यवसायों में से चयन करने की समस्या हो। किन्तु आज के युग में विषयों तथा व्यवसायों का इतना बाहुल्य हो गया है कि परिवार के सदस्यों की सूचनाओं के आधार पर काम नहीं चलता। आज जीवन में इतनी गतिशीलता आ गई है कि हम अध्ययन जीविकोपार्जन अथवा अन्य कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। अनेक बार तो परिवार के सदस्यों के लिए नए वातावरण सम्बन्धी ऐसी सूचनाएं दे सकना कठिन हो जाता है। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप ऐसी सेवाओं की आवश्यकता अधिकाधिक अनुभव की जाने लगी है जिससे हम शैक्षिक व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त हो सकें। इन्हीं सूचनाओं को हम पर्यावर्णीय सूचनाएं कहते हैं।

व्यक्ति को अपनी क्षमताओं सीमितताओं का पूर्ण आभास हो किन्तु यदि उसे पर्यावर्णीय सूचनाएं उपलब्ध न हों तो वह अपनी क्षमताओं का समुचित विकास नहीं कर सकता। एक उच्च कोटि के विज्ञान के विद्यार्थी को यदि साइन्स टेलेन्ट सर्च (Science Talent Search) सम्बन्धी सूचना न हो तो वह इस योजना का लाभ उठाकर अपनी विज्ञान की प्रतिभाओं को पूर्णरूप से प्रस्फुरित नहीं कर सकता। पर्यावर्णीय सूचनाओं के ही अभाव में एक ओर तो तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति बेकार बैठे हैं तो दूसरी ओर अनेक प्रतिष्ठानों में उपयुक्त तकनीशियनों की कमी अनुभव की जा रही है। अतः निर्देशन सेवाओं में पर्यावर्णीय सूचना का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस सेवा के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं का संकलन वर्गीकरण विश्लेषण मिसीलीकरण निवचन एवं उपयोग विधिवत रूप से किया जाता है। इन सूचनाओं में उन सब सूचनाओं का समावेश किया जाता है जिनकी आवश्यकता व्यक्ति को जीवन के अनेक महत्वपूर्ण निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण करने हेतु पड़ सकती है। जैसा कि अध्याय ४ में कहा गया है इस सेवा का कार्य विस्तार भी निर्देशन के आधुनिक व्यापक सम्प्रत्यय के अनुरूप केवल शैक्षिक व्यावसायिक सूचनाओं के संकलन तक सीमित नहीं है। फिर भी व्यावहारिक रूप

में अधिकतम शालाओं में छात्रों की तात्कालिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक "यावसायिक सूचनाओं के सकलन एवं सचरण पर ही अधिक बल दिया जाता है। पर्यावर्णीय सूचनाओं की सकलन विधियों एवं स्रोतों आदि सम्बन्धित चर्चा से पूर्व इन सूचनाओं को अत्यधिक उपयोगी बनाने हेतु कुछ आधारभूत सिद्धान्तों की चर्चा करना कदाचित उपादेय सिद्ध हो सकता है। चूंकि इन सिद्धांतों में से कुछ की चर्चा *अध्याय ४ में पर्यावर्णीय सूचना सेवा के अन्तर्गत की गई है अत यहां इन सिद्धान्तों की सक्षिप्त चर्चा ही की जावेगी।*

पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन के सिद्धान्त

(१) सूचनाओं का सकलन छात्रों की आवश्यकताओं के आधार पर हो

शाला में उपलब्ध आर्थिक एवं मानवीय साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि सूचनाएं एकत्रित करने से पूर्व हम इस बात का पता लगा लें कि हमारी शाला के लिए किन सूचनाओं की सर्वाधिक आवश्यकता है। इस बात का बोध छात्रों की आवश्यकताओं के सर्वेक्षण से लग सकता है। बिना इस सर्वेक्षण के सूचनाओं का सकलन करने से हो सकता है कि छात्रों के लिए अत्यन्त आवश्यक सूचनाओं का सकलन होने के स्थान पर बहुत सी अनावश्यक सूचनाओं का सकलन हो जाय। एक छोटा सा उदाहरण लेकर इस बिन्दु को स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसे विद्यालय में जहां केवल वाणिज्य सकाय ही है यदि हम इन्जीनियरिंग एवं चिकित्सा शास्त्र के महाविद्यालयों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित कर लें तो इन सूचनाओं का कोई लाभ नहीं होगा। दूसरा सिद्धान्त यह भी है कि उपलब्ध धनराशि में कौनसी सूचनाओं के सकलन को प्राथमिकता दी जाय यह भी सोच विचार कर निर्धारित करना चाहिए। ऐसी सूचनाओं को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जोकि अधिक से अधिक छात्रों के लिए उपयोगी हो।

(२) अद्यतनता

सूचनाओं के सकलन के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सूचनाएं अद्यतन हैं कि नहीं। सूचनाओं की उपयोगिता ही इस बात पर निर्भर करती है। चार वर्ष पूर्व किसी महाविद्यालय में जो विषय हो शायद उनमें आज परिवर्तन हो गया हो इसी प्रकार कुछ समय पूर्व किसी व्यवसाय में प्रवेश हेतु जो आवश्यक योग्यताएं निर्धारित हों उनमें परिवर्तन हो गया हो। अत पुरानी सूचनाओं के आधार पर कोई विश्वासपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता। सूचनाओं को अद्यतन बनाए रखने के लिए केवल सकलन के समय ही ध्यान देना पर्याप्त नहीं है समय समय पर सकलित सूचनाओं की भी छानबीन करके हमें आश्वस्त हो जाना चाहिए कि सूचनाएं अद्यतन हैं या नहीं। पुरानी एवं अनुपयुक्त सूचनाओं को हटा देना चाहिए जिससे उपयोगी सूचनाओं का स्थान उनमें गौण न रह जाय।

( ) परिशुद्धता

सूचनाए यदि परिशुद्ध नहीं होगी तो ऐसी सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति के अपनिर्देशित हो जाने की सम्भावना हो सकती है। इस सम्बन्ध में अध्याय ४ में विषद चर्चा की गई है अत उसे पुन दोहराना आवश्यक नहीं।

(४) व्यापकता

छात्रो के लिए जितना अधिक से अधिक शक्षिक एव व्यावसायिक अवसरो की सूचनाए छात्रो के सम्मुख होगी छात्र उतने ही युक्तियुक्त ढग से अपनी भविष्य योजनाओ सम्बन्धित निर्णय लेने में समर्थ होगे। अत छात्रो की आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुए सूचनाओ को हम जितना अधिक से अधिक सम्पन्न बना सके बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(५) पूर्णता

सूचनाए सकलन करते समय हम सूचनाओ की पूर्णता की ओर ध्यान देना चाहिए। अपूर्ण एव अपर्याप्त सूचनाओ के आधार पर कोई सार्थक निर्देशन कार्य नहीं किया जा सकता। किसी व्यवसाय में प्रवेश हेतु क्या पूर्वापेक्षाए हैं? प्रवेश की रीति क्या है? साक्षात्कार लिखित परीक्षा अथवा किस प्रकार प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है? व्यवसाय में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है या नहीं? वेतन तथा अन्य सुविधाए क्या हैं? आदि अनेक ऐसी बाते हैं जिनका कि पूर्ण ज्ञान न हो तो कोई युक्तियुक्त निर्णय नहीं लिया जा सकता।

(६) सूचनाओ की उपयोगिता

सूचनाओ की उपयोगिता से हमारा तात्पर्य यह है कि छात्र सूचनाओ का उपयोग कर सकते हैं या नहीं। सूचनाए यदि अग्रेजी में हो और छात्र उन्हे पढ न सके तो ऐसी सूचनाओ का छात्र प्रत्यक्ष उपयोग नहीं कर सकते। हम यह देखना चाहिए कि सूचनाओ का प्रस्तुतिकरण छात्रो के स्तरानकूल है या नहीं। अन्यथा सूचनाओ का उपयोग होने के स्थान पर वे पुस्तकालय की ही शोभा बढाती रहेगी।

पर्यावरणीय सूचनाओ के क्षेत्र

व्यक्ति जब जीवन में कोई नया कदम उठाता है तो उसे कुछ सूचनाओ की आवश्यकता होती है। चाहे वह नया कदम किसी व्यवसाय के चयन का हो नए शिक्षण कार्यक्रम के चयन का हो विदेश यात्रा का हो मकान बनाने का हो अथवा विवाह हेतु जीवनसाथी चयन का हो। प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय को ठीक ढग से लेने के लिए नई परिस्थिति से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचनाओ का होना आवश्यक है। अब हम देखे कि सामान्यतया शाला में पढने वाले छात्रो को किन किन प्रकार की सूचनाओ की आवश्यकता होती है।

(१) शिक्षा सम्बन्धी सूचनाए

जसे ही बालक किसी नयी शाला में प्रवेश पाता है तो उसे शाला से सम्ब

धित अनेक प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता की अनुभूति होती है। अक्सर हम यह मानकर चलते हैं कि छात्र इन सब सूचनाओं से अवगत है किन्तु वस्तु स्थिति यह नहीं होती। इन सूचनाओं के अभाव में बालक को व्यवस्थापन की कठिनाइयाँ अनुभव करनी पड़ती हैं। शाला सत्र के प्रारम्भिक काल में शाला जीवन सम्बन्धी सूचनाएं यदि छात्रों को दे दी जाए तो उन्हें अनावश्यक कठिनाई अनुभव नहीं करनी पड़ेगी। सामान्यतया शाला सम्बन्धी सूचनाओं में निम्न सूचनाएं प्रमुख है।

(क) शाला भवन—नए बालकों को शाला भवन की जानकारी करवाना आवश्यक होता है। शाला में वाचनालय प्रयोगशालाएं कार्यालय प्रधानाध्यापक का कक्ष अध्यापक कक्ष आदि प्रमुख स्थान कहां कहां पर स्थित है खेल के मैदान कहां हैं आदि सब भौतिक साधन सुविधाओं सम्बन्धी सूचनाएं छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

(ख) शाला नियम एवं परम्पराएं—प्रत्येक शाला की कुछ विशेषताएं एवं परम्पराएं होती हैं। छात्रों को इन विशेषताओं नियम परम्पराओं एवं अपेक्षाओं से शीघ्रातिशीघ्र अवगत करा देना चाहिये ताकि नये छात्र शाला की मूल धारा के साथ तुरन्त समरस हो जाए।

(ग) शाला में उपलब्ध विषय—आठवीं कक्षा के पश्चात छात्रों को वैकल्पिक विषयों का चयन करना पड़ता है। अतः इस कक्षा के बालकों को यह ज्ञान हो जाना आवश्यक है कि शाला में किन किन विषयों अथवा विषयों के समूहों का प्रावधान है।

(घ) शाला में उपलब्ध सुविधाएं एवं सेवाएं—शाला के बालकों को शाला की समस्त सेवाओं एवं सुविधाओं का ज्ञान होना चाहिए। जैसे निर्देशन सेवाएं प्रतिभावान बालकों के विशेष शिक्षण की सुविधा कमजोर बालकों की शिक्षा की व्यवस्था गरीब छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था आदि ऐसी सेवाएं एवं सुविधाएं हैं जिनका पता बालकों को ठीक समय पर लगने से वे इनका पूरा लाभ उठा सकते हैं।

(ङ) पुस्तकालय—छात्रों को पुस्तकालय में उपलब्ध सुविधाओं पुस्तकालय के नियमों पुस्तकों को प्राप्त करने की विधियों आदि की जानकारी दे देने से वे इस सुविधा का पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं।

(च) पाठ्यसहगामी क्रियाएं—शाला में कौन-कौन सी पाठ्यसहगामी क्रियाओं का प्रावधान है कौन कौन से खेलों एवं व्यायामों के प्रशिक्षण की सुविधा है इनका आयोजन एवं संचालन किस प्रकार होता है आदि सब बातों से छात्रों को अवगत कराना चाहिए।

(२) विषयो के चयन सम्बन्धी सूचनाए

आठवी कक्षा के बालको को अपनी शाला म कौन कौन से विषय नवमी कक्षा म चुने जा सकते है इसकी तो सूचना मिलनी ही चाहिए किन्तु इसके अतिरिक्त इन विषयो के चयन से कौन-कौन से उच्च शिक्षण क्षमा म अथवा व्यवसायो म प्रवेश प्राप्त करने मे सुविधा रहती है इन विषयों के अध्ययन हेतु क्या विशेष योग्यताए होनी चाहिए आदि बिन्दुओ से सम्बन्धित छात्रो का अनुस्थापन यदि किया जाए तो विषयो के युक्तियुक्त चयन मे उन्हे सहायता मिल सकती है।

(३) उच्च शिक्षरा सम्बन्धी सुविधाए

कक्षा दस एव ग्यारह के विद्यार्थियो के मन म यह प्रश्न बना रहता है कि अब आगे उन्हे कहा शिक्षण लेना है तथा उच्च शिक्षण हेतु अपने राज्य देश अथवा विदेशो म क्या सुविधाए प्राप्त है। अत इन छात्रो की सहायता हेतु महाविद्यालयो तथा अन्य उच्च शिक्षण सस्थाओ सम्बन्धी सूचनाए एकत्रित करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(४) व्यवसायो सम्बन्धी सूचनाए

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओ तक अध्ययन कर लेने के पश्चात अनेक छात्र जीविकोपार्जन की सम्भावनाए खोजने लगते हैं। उनकी सहायता हेतु उनके उपयुक्त व्यवसायो की सूचनाए एकत्रित की जा सकती हैं। अन्य व्यवसायो सम्बन्धी सूचनाए भी विषयो के चयन निर्धारण म सहायक हो सकता हैं।

(५) आर्थिक सहायता सम्बन्धी सूचनाए

देश मे अनेक ऐसी योजनाए हैं जिनम निर्धन किन्तु प्रतिभाशाली छात्रो की आर्थिक सहायता का प्रावधान है। इन योजनाओ का लाभ किन छात्रो को कैसे मिल सकता है यह सूचनाए यदि हम छात्रो को दे सकें तो यह एक बडी महत्त्वपूर्ण सेवा होगी। इन सूचनाओ के अभाव म अनेक प्रतिभाशाली छात्रो को अर्थाभाव के कारण अपनी प्रतिभाओ को पूर्णतया विकसित करने का अवसर नहीं प्राप्त होता।

(६) अध्ययन आदतो एव कुशलताओ सम्बन्धी सूचनाए

कक्षा मे नोट्स कैसे लिए जाए पुस्तकालय का सदुपयोग स्वाध्याय के लिए कैसे किया जाय तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अध्ययन आदतों सम्बन्धी सूचनाए छात्रो के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

पर्यावरणीय सूचनाओ के स्रोत

(१) शिक्षरा सस्थाए

सामान्यतया उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो को आगे उच्च शिक्षण सम्बन्धी सुविधाओ की सूचनाओ की आवश्यकता होती है। उनसे सम्बन्धित उच्च शिक्षण की सुविधाए किन महाविद्यालयो म प्राप्त हो सकती है उनम प्रवेश प्राप्त

करने हेतु क्या विधि अपनानी पड़ती है ? आदि अनेक सूचनाए प्राप्त करने के लिए ये छात्र आतुर रहते है। अत विद्यालय मे निर्देशन कार्यकर्त्ता को विभिन्न शिक्षण सस्थाओ के विवरण पत्र (Prospectus) मगवा लेने चाहिए। जो विषय शाला म हो उनसे सम्बन्धित उच्च शिक्षण सस्थाओ के विवरण पत्र अधिक से अधिक मग वाने चाहिए।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण

उच्च शिक्षा की विदेशों म क्या सम्भावनाए हो सकती हैं तथा विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु कौन कौन सी सुविधाए प्राप्त हो सकता हैं इस सम्बन्ध म हम विदेशी दूतावासो से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाए प्राप्त कर सकते हैं। यू एस इ एफ आई (U S E F I) तथा ब्रिटिश कौंसिल से भी अमरीका तथा इग्लण्ड म कौन कौन से शैक्षिक अवसर छात्रो को प्राप्त हो सकते हैं इस सम्बन्ध म सूचनाए मिल सकता है।

(३) राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण

(क) शैक्षिक सूचनाए -- सूचनाओं के दूसरे प्रमुख स्रोत हो सकते हैं राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण। उदाहरणार्थ शिक्षा मन्त्रालय से हम राष्ट्रीय स्तर पर जो छात्र वृत्तियो की योजनाए हैं उनके सम्बन्ध म सूचनाए प्राप्त कर सकते है जैसे शिक्षा मन्त्रालय द्वारा परीक्षा के आधार पर कुछ छात्रो का चयन किया जाता है व उन्ह सरकार के खर्च पर पब्लिक स्कूलो म पढने की सुविधा दी जाती है। इसी प्रकार पिछडी जाति के छात्रो को अच्छा शिक्षण देने हेतु समाज कल्याण विभाग की भी कुछ योजनाए हैं इनसे सम्बन्धित सूचनाए समाज कल्याण विभाग से प्राप्त की जा सकती हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय विज्ञान परिषद शिक्षा मन्त्रालय से हम साइस टेलेट सर्च (Science Talent Search) सम्बन्धी सूचनाए प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा मन्त्रालय ने राष्ट्रीय स्तर पर एक सूची तैयार की है जिससे कहा कहा किस प्रकार के उच्च शिक्षण की व्यवस्था है उसकी सूचना प्राप्त हो सकता है।

(ख) व्यावसायिक सूचनाए — व्यावसायिक सूचनाओ के लिए भी राष्ट्रीय स्तर के कुछ अभिकरण उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। केन्द्रीय श्रम पुनर्वास एव नियो जन मन्त्रालय ने हमारे देश म जो विभिन्न व्यवसाय उपलब्ध हैं उनम से कुछ व्यव सायो से सम्बन्धित सूचनाए व्यवसाय पुस्तिकाओ (Career Pamphlets) के रूप मे प्रकाशित की हैं। प्रत्येक पुस्तिका म एक व्यवसाय से सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाओ का समावेश होता है। इन पुस्तिकाओ को मामूली दरो पर गावे मन्त्रालय से अथवा स्थानीय नियोजन कार्यालय (Employment exchange) से प्राप्त किया जा सकता है। श्रम पुनर्वास एव नियोजन मन्त्रालय से प्रत्येक राज्य मे तकनीकी प्रशिक्षण की क्या सुविधाए हैं इस सम्बन्ध म सूचनाए प्राप्त की जा सकती हैं। प्रत्येक राज्य के लिये एक पुस्तिका हैण्ड बुक आफ ट्रेनिंग फसिलिटीज (Handbook of Training facilities) तयार की गई है जिसमे उपरोक्त सूचनाए प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार

एन सी ई आर टी (NCIRT) के डिपार्टमेन्ट आफ एजूकेशन साइकोलोजी एण्ड फाउण्डेशन आफ एजूकेशन गाइडेंस के विभाग से हम कुछ अन्य ऐसी सामग्री प्राप्त हो सकती है जिसस हम व्यावसायिक सूचनाए छात्रा तक पहुँचा सकते हैं। इसी संस्थान के डिपार्टमेन्ट आफ टीचिंग एडस (D partment of Teachin, aids) से हम व्यवसायों सम्बन्धी फिल्म मँगवा सकते है।

(४) राज्य स्तरीय अभिकरण

प्रत्येक राज्य के प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा निदेशालय म उस राज्य के गाइडेन्स ब्यूरो का पता मगवाया जा सकता है तथा व हाँ म शैक्षिक एव व्यावसायिक सूचनाए प्राप्त की जा सकता हैं। राजस्थान का निर्देशन ब्यूरो बीकानेर म स्थित है। राजस्थान के निदेशन कार्यकर्त्ता इस ब्यूरो से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाए प्राप्त कर सकते है। राज्य शिक्षा मन्त्रालयो से तथा समाज कल्याण मन्त्रालयो म छात्रो की शिक्षा हेतु आर्थिक योजनाओ की सूचनाए प्राप्त का जा सकती हैं।

राज्य म स्थित सनिक स्कूलो के प्राचार्यों से सम्बन्ध स्थापित कर सनिक स्कूलो के सम्बन्ध म सूचनाए प्राप्त की जा सकती हैं। इनम प्रवश प्राप्त करने हेतु एव छात्रवृत्तियाँ प्राप्त करन हेतु क्या करना होता है इसकी सूचनाए पाँचवी कक्षा के छात्रो के लिए अत्यन्त उपयोगी हो सकती हैं।

राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान राष्ट्रीय स्तर पर जो साइन्स टेलेन्ट सच परीक्षा लेती है उसम जो विद्यार्थी भाग लेना चाहता है उसकी सहायता उचित मार्ग दर्शन द्वारा करता है। इस सम्बन्ध म जिले के राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान से पत्र व्यवहार किया जा सकता है।

(५) औद्योगिक प्रतिष्ठान एव व्यापारिक संस्थाए

विभिन्न औद्योगिक संस्थानो स हम हायर सकण्ड्री अथवा सकण्ड्री पास छात्रो के लिए कौन कौनसी नौकरियाँ हो सकती हैं इस सम्बन्ध म सूचनाए प्राप्त कर सकते है। प्रत्यक औद्योगिक प्रतिष्ठान म एक कार्मिक अधिकारी (Personnel officer) होता है उसस यह सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं। इसी प्रकार बक आदि व्यापारिक संस्थाओ से भी नियोजन सम्भावनाओ की सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं। अनक औद्योगिक प्रतिष्ठान अथवा व्यापारिक संस्थाए तो उचित प्रत्याशियो का चयन कर उन्हे प्रशिक्षण भी देते हैं और फिर उन्ह उचित स्थान दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण सुविधाओ का पता भी इन अभिकरणो से लग सकता है।

(६) स्थानीय अभिकरण

एक सजग निदेशन कार्यकर्त्ता को स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करने की सब सम्भावनाओ की खोज करनी चाहिए। अनेक बार हमारे आस पास जो शैक्षिक एव व्यावसायिक सुविधाए होती हैं उनकी भी पूरी सूचनाएँ हमारे पास नहीं होती। उदाहरण के तौर पर उदयपुर मे जिंक स्मेल्टर सीमेन्ट

फक्टरी डिस्टलरी आयुर्वेद सेवा सग रलवे जोनल ट्रेनिंग स्कूल फिशरीज रिसर्च ट्रेनिंग सेन्टर इन्स्टिट्यूट ट्रेनिंग स्कूल एग्रीकल्चर कालेज मेडिकल कालेज कालेज ग्राफ एग्रीकल्चरल इन्जीनियरिंग एण्ड टेक्नोलाजी एस टी सी स्कूल आदि ऐसे अनेक सूचनाओं के स्रोत हैं जिनसे प्राप्त सूचनाएं छात्रों के लिए उपयोगी हो सकती हैं। उपरोक्त वर्णित स्थानीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों में क्या व्यावसायिक सम्भावनाएं हैं इसकी भी जानकारी अनेक बार हमारे छात्रों को नहीं होती। इसी प्रकार स्थानीय शक्षणिक संस्थाओं के सम्बन्ध में सूचनाएं भी छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। अनेक बार हम यह मानकर चलते हैं कि स्थानीय शक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं से तो छात्र परिचित है ही किन्तु आवश्यक नहीं कि हमारी यह धारणा ठीक हो। अतः इन स्थानीय स्रोतों के प्रति हमें उदासीन नहीं होना चाहिए।

जिला स्तरीय स्थानों पर नियोजन कार्यालयों (Employment exchanges) से यदि सम्पर्क रखा जाए तो छात्रों को रोजगार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएं समय समय पर उपलब्ध की जा सकती हैं।

पर्यावरणीय सूचनाओं के सकलन की विधियां

(1) व्यावसायिक सर्वेक्षण

स्थानीय पर्यावरण से पूर्णतया परिचित हो जाना एक निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। स्थानीय व्यावसायिक जगत में जो रोजगार सम्बन्धी सम्भावनाएं हों उनकी निर्देशन कार्यकर्त्ता को यदि पूरी सूचनाएं हों तो वह अपने छात्रों का व्यावसायिक निर्देशन अधिक कुशलता से कर सकता है। स्थानीय व्यावसायिक पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करने की एक महत्त्वपूर्ण विधि हो सकती है व्यावसायिक सर्वेक्षण। व्यावसायिक सर्वेक्षण से हम अनेकों महत्त्वपूर्ण तथ्यों का पता लगा सकते हैं। व्यावसायिक सर्वेक्षणों से जिन महत्त्वपूर्ण तथ्यों की सूचनाएं मिल सकती हैं वह निम्नलिखित है—

(क) व्यावसायिक सर्वेक्षण से प्राप्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएं

(अ) **व्यावसायिक झुकाव प्रवृत्ति** — व्यावसायिक सर्वेक्षण से हमें किसी भी समय की व्यावसायिक झुकाव प्रवृत्तियां क्या हैं इसका पता लग सकता है। अर्थात् किन व्यवसायों की अधिक मांग है अथवा किन व्यवसायों में रोजगार सम्भावनाओं का बाहुल्य है किन व्यवसायों में संतृप्तता आ गई है और रोजगार सम्भावनाएं बहुत कम हैं आदि तथ्य निर्देशन कार्यकर्त्ता के सामने आ सकते हैं जो कि व्यावसायिक निर्देशन के लिए और कुछ सीमा तक शक्षिक निर्देशन के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(आ) **नए व्यवसायों से परिचय** — व्यावसायिक सर्वेक्षणों के फलस्वरूप स्थानीय पर्यावरण की अनेक नई व्यावसायिक सम्भावनाएं एवं निर्देशन कार्यकर्त्ता के सम्मुख आ सकती हैं। अनेक बार स्थानीय व्यावसायिक सम्भावनाओं से हम पूर्ण

रूपण परिचित नहीं होते अतः हमारे छात्रों को इनका पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल पाता। उपरोक्त अनुच्छेदों में एक शहर का उदाहरण लेकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि स्थानीय पर्यावरण में ही कितनी अधिक व्यावसायिक सम्भावनाएं हो सकती हैं।

(इ) व्यवसायों के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय — स्थानीय व्यवसायों के सम्बन्ध में व्यावसायिक सर्वेक्षणों के माध्यम से हम विस्तृत परिचय प्राप्त कर सकते हैं। व्यवसाय में प्रवेश हेतु अनिवार्य योग्यताएं, व्यवसाय में उपलब्ध वेतन, व्यवसाय में उन्नति की सम्भावनाएं, व्यवसाय में कार्य की प्रकृति आदि महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक पक्षों से सम्बन्धित विस्तृत सूचनाएं हम व्यावसायिक सर्वेक्षण से प्राप्त कर सकते हैं।

(ख) व्यावसायिक सर्वेक्षणों में छात्रों को संयुक्त करना — व्यावसायिक सर्वेक्षण व्यावसायिक सूचनाएं एकत्रित करने की विधि ही नहीं अपितु व्यावसायिक शिक्षा की भी एक प्रमुख विधि हो सकती है। अतः इन सर्वेक्षणों में यथासम्भव छात्रों को संयुक्त करना सदैव उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सामाजिक ज्ञान अथवा अर्थशास्त्र के शिक्षक यदि छात्रों से व्यावसायिक सर्वेक्षण करवाएं तो उन्हें अनेक व्यवसायों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। छात्रों को इस प्रकार से व्यावसायिक जगत के सम्पर्क में लाने से उनकी अच्छी व्यावसायिक शिक्षा हो सकती है।

(ग) व्यावसायिक सर्वेक्षण के संचालन से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्त

(अ) योजना — व्यावसायिक सर्वेक्षण को सफल बनाने हेतु एवं इसके माध्यम से योजनाबद्ध रीति से सूचनाएं एकत्रित करने हेतु यह आवश्यक है कि स्थानीय व्यावसायिक जगत का सर्वेक्षण करने की एक सुसंगठित एवं समन्वयित योजना बनाई जाय अन्यथा एक ही प्रकार की सूचनाएं कई सर्वेक्षणों में एकत्रित हो जाने की और कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों के छूट जाने की आशंका हो सकती है।

योजना बनाते समय इन सब शिक्षकों को साथ लेना उपादेय होगा जो व्यावसायिक सर्वेक्षण के संचालन में भाग ले रहे हैं। कौन कौन से शिक्षक सर्वेक्षण का संचालन करेंगे, सर्वेक्षण की विधि क्या होगी, सर्वेक्षण से किस प्रकार की सूचनाएं एकत्रित करने का प्रयास किया जाएगा आदि प्रमुख बिन्दु इस समिति में स्पष्ट हो जाने चाहिए।

(आ) व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों से सम्पर्क — सफल व्यावसायिक सर्वेक्षणों के लिए सर्वेक्षण विषय अर्थात् व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है अतः सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व इन संस्थानों के प्रमुख अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित कर सर्वेक्षण के लिए उनकी अनुमति ले लेना अत्यन्त आवश्यक है। अनुमति लेते समय सर्वेक्षण की उपादेयता से उन्हें अवगत करा देना चाहिए।

(इ) आवश्यक सर्वेक्षण साधनों का निर्माण — सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रश्नावलियां साक्षात्कार सूचियां अथवा प्रपत्र सूचियों का निर्माण यथार्थ सर्वेक्षण प्रारम्भ से करने से पूर्व हो जानी चाहिए। साथ ही यह भी निश्चित हो जाना चाहिए कि कौन सी सूचनाएं साक्षात्कार से प्राप्त होंगी कौनसी प्रश्नावलियों से प्राप्त हो सकती हैं तथा किन व्यक्तियों से साक्षात्कार करना होगा।

(ई) सकलित सूचनाओं का समेकित प्रतिवेदन — सकलित सूचनाओं को जबतक समन्वित रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता तबतक उनकी उपयोगिता सीमित हो रहती है। अत व्यावसायिक सर्वेक्षणों से प्राप्त दत्त को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समन्वित करना चाहिए।

- व्यवसाय जो शाला के छात्रों के लिए उपयोगी हैं।
—व्यवसाय जिनमें रोजगार की सम्भावनाएं अत्यधिक हैं।
—व्यवसाय जिनमें रोजगार की दृष्टि से संतृप्तता आ गई है।
—व्यवसाय जिनमें प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।
—व्यवसाय जिनमें प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
—प्रत्येक व्यवसाय से सम्बन्धित निम्न सूचनाएं एकत्रित करनी चाहिए—

व्यावसाय व्यवसाय में प्रवेश हेतु शैक्षिक योग्यता पूर्व प्रशिक्षण वेतन व्यवसाय में प्रतिवर्ष होने वाले रिक्त स्थान व्यवसाय में प्रगति की सम्भावनाएं व्यवसाय की कार्य अवस्थाएं व्यवसाय में प्राप्त सुविधाएं व्यावसायिक आपद (Occupational Hazard)

पर्यावर्णीय सूचनाओं का मिसीलीकरण एवं सग्रह

(१) सिद्धांत —

पर्यावर्णीय सूचनाओं का सग्रह मात्र कर लेना पर्याप्त नहीं। जबतक उनका ठीक ढंग से मिसीलीकरण एवं सग्रह न किया जायगा वे अधिक उपयोगी सिद्ध न होंगी। सग्रह एवं मिसालीकरण के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं एक तो सूचनाओं की सुरक्षा एवं दूसरा उपयोग में सुविधा। अर्थात् पर्यावर्णीय सूचनाएं प्राप्त होते ही उनको इस प्रकार रखना चाहिए कि उनके खोने अथवा खराब होने का सम्भावना न हो। बार-बार उपयोग में आने वाली सूचनाओं की सुरक्षा का तो विशेष ध्यान रखना होगा। ऐसी सूचनाएं जो बालकों द्वारा काम में ली जाती हैं उन्हें समय-समय पर जांच कर यह देखते रहना चाहिए कि वे उपयुक्त स्थिति में सुरक्षित हैं। सूचनाओं के सग्रह से हमारा अर्थ उन्हें किसी पेटी या अलमारी में बन्द करने से नहीं है। सूचनाओं का किसी योजना के आधार पर सूचीकरण करना चाहिए ताकि आवश्यक सूचनाएं कम से कम समय में उपलब्ध हो सकें। सूचनाओं का सग्रह भी ऐसे स्थान पर एवं इस ढंग से होना चाहिए कि उन्हें प्राप्त करने में कठिनाई न हो। सूचनाओं को जबतक छात्रों के सम्मुख अभिदर्शित नहीं किया जायगा वे इसका पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकेंगे।

अत सूचनाओं को किसी ऐसे स्थान पर एव इस ढग से रखना चाहिए जहाँ उन पर छात्रों की दृष्टि पडने की अधिक से अधिक सम्भावना हो।

(2) कार्मिक

सूचनाओं के सग्रह एव मिसीलीकरण म यदि पुस्तकाध्यक्ष का सहयोग प्राप्त किया जा सके तो यह काय अधिक व्यवस्थित एव प्रभावोत्पादक ढग से किया जा सकता है। अच्छा तो यह होगा कि यह काय पुस्तकाध्यक्ष को ही सौंपा जाए। इसके दो कारण हैं प्रथम तो पुस्तकाध्यक्ष को पुस्तको एव अन्य दस्तावेजो के सग्रह मिसीलीकरण एव सचीकरण का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है अत वह इस काय को अधिक अच्छे ढग से सचालित कर सकता है। दूसरा कारण यह है कि हमारे देश म सामान्य शालाओं म पूर्णकालिक निर्देशन कायकर्त्ता नियुक्त नहीं किए जाते अत जबतक शाला के अन्य कायकर्त्ता निर्देशन काय के उत्तरदायित्व म हाथ न बटावेंगे इस काय का सफल सचालन असम्भव होगा। इस काय को यदि पुस्तकाध्यक्ष ने ले तो वह इस अधिक प्रभावोत्पादक ढग से कर सकेगा। साथ ही निदेशन कायकर्त्ता अपनी शक्ति एव समय अन्य महत्वपूर्ण निर्देशन क्रियाकलापों म लगा सकेगा।

(3) स्थान

चूकि पर्यावर्णीय सूचनाओं के सग्रह की जिम्मेदारी पुस्तकाध्यक्ष को देना वाछनीय कहा गया है अत इसकी स्वाभाविक अनुमिति यह होगी कि इन सूचनाओं का सग्रह भी पुस्तकालय म ही। इन सूचनाओं को हम पुस्तकालय म ही किसी एक अलग निर्धारित स्थान पर रख सकते हैं और उस स्थान को निर्देशन कोण (Guidance Corner) कह सकते हैं। पुस्तकालय म सामान्यत छात्रो का आवागमन अधिक रहता है अत इस सामग्री के छात्रो के सम्मुख प्रदर्शन की अधिक सम्भावना हो सकती है।

पर्यावर्णीय सूचनाओं का सचरण

किसी वस्तु का अधिक से अधिक उपयोग लोग करें इस हेतु व्यापारी उसका अधिक से अधिक प्रचार करते हैं। अच्छी से अच्छी वस्तु प्रचार के अभाव म लोगो तक नहीं पहुँच पाती है। यह सिद्धान्त पर्यावर्णीय सचनाओं पर भी लागू होता है। जब तक हम इन सचनाओं को छात्र के सम्मुख अभिदर्शित नहीं करेंगे तब तक अधिकाधिक उपयोग के माग नहीं खोजेंगे इन सूचनाओं का पूरा-पूरा लाभ छात्रो को नहीं पहुँचेगा। अत निदेशन कायकर्त्ता को इन सूचनाओं के विभिन्न सचरण विधियों से अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है।

इन सचरण विधियों एव अवसरो की चर्चा करने से पूर्व पर्यावर्णीय सूचनाओं के सचरण के कुछ मूलसिद्धान्तो का उल्लेख उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(१) सचरण के सिद्धात

(क) प्रदर्शन— जितने प्रभावोत्पादक ढग से सूचनाओ का प्रदर्शन किया जायगा उनके उपयोग की उतनी ही अधिक सम्भावना होगा ।

(ख) सूचनाओ को प्राप्त करने की सुलभ व्यवस्था— सूचनाओ को प्राप्त करने की व्यवस्था जितनी सुलभ होगी उतनी ही सूचनाओ के उपयोग की सभावनाए बढ जाएगी । यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि जिस पुस्तकालय में खुली अलमारी व्यवस्था होती है वहा ऐसे पुस्तकालय से अधिक पुस्तके काम मे ली जाती हैं जहाँ पुस्तके ताले में बन्द रहती है ।

(ग) समस्त अवसरों का उपयोग-- निर्देशक यदि यह सोचे कि किसी विशेष समय पर छात्रो को बुलाकर उनको इन सूचनाओ से अवगत किया जायगा तो वह सूचनाओ का पूरा पूरा लाभ छात्रो को नही पहुँचा सकता । उसे तो कक्षा एव कक्षा के बाहर ऐसे सब अवसरो को ढूढना चाहिए जहा पर्यावर्णीय सूचनाओ को सचारित किया जा सके और फिर ऐसे प्रत्येक अवसर का उसे लाभ उठाना चाहिए । किसी एक समय पर समस्त सूचनाओं को बालकों तक पहुँचाना न तो सम्भव है न ही इस प्रकार से प्रभावोत्पादक ढग से सूचनाए छात्रो तक पहुँचाइ जा सकती है ।

(घ) विभिन्न व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक — हमने उपरोक्त सिद्धान्त मे कहा है कि सूचनाओ का सचरण हर सभावित परिस्थिति मे किया जाना चाहिए । अत इस बिंदु से एक और सिद्धान्त निकलता है और वह यह कि सूचनाओ के सचरण मे जबतक शिक्षक पुस्तकाध्यक्ष आदि विभिन्न व्यक्तियो का पूर्ण सहयोग नही होगा सचरण प्रभावोत्पादक ढग से नही किया जा सकता है । विज्ञान सामाजिक ज्ञान अर्थशास्त्र वाणिज्य एव अन्य विषयो के शिक्षक कक्षाध्यापन के माध्यम से भी इस सूचनाओ के सचरण मे सहयोग प्रदान कर सकते हैं ।

(२) सचरण विधिया

निर्देशन कार्यकर्त्ता को पर्यावर्णीय सूचनाओ को छात्रो तक पहुँचाने के अधिक से अधिक अवसरो का पता लगाना चाहिए । इस कार्य मे उसे अन्य व्यक्तियो के सहयोग की भी आवश्यकता पड सकती है । निम्नलिखित अनुच्छेदो मे पर्यावर्णीय सूचनाओ की विभिन्न सचरण विधियो की चर्चा की जाएगी ।

(क) अनुस्थापन वार्ताए— अनुस्थापन वार्ताए विभिन्न पर्यावर्णीय सूचनाओ को छात्र तक पहुँचाने की एक उत्तम विधि है । अनुस्थापन का तात्पर्य किसी नई परिस्थिति से व्यक्ति को अवगत कराना अथवा किसी नवीन पर्यावरण मे समञ्जन हेतु उस पर्यावरण से व्यक्ति को अवगत कराना । अत अनुस्थापन वार्ताओ मे हम छात्रो को किसी नए वातावरण पाठ्यक्रम कार्य एव प्रवृत्ति से अवगत कराते हैं ताकि वह उस नई परिस्थिति मे कम से कम कठिनाइया अनुभव करे । अनुस्थापन वार्ताएँ निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यो से आयोजित की जा सकती हैं ।

(अ) शाला के वातावरण से परिचय— शाला में जो छात्र नए आते हैं उनको शाला के भवन सुविधाओं सभाओं नियम परम्पराओं आदि से अवगत कराना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा वे शाला में समञ्जन की कठिनाई अनुभव कर सकते हैं। शाला सम्बन्धी इन सूचनाओं को नए छात्रों को शीघ्रातिशीघ्र देना चाहिए। इस कार्य के लिए सत्र के प्रारम्भ में कुछ अनुस्थापन वार्ताओं का आयोजन उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(आ) अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं का ज्ञान— जब छात्र एक स्तर से दूसरे स्तर पर जाता है तो उसे कुछ नई अध्ययन आदतें विकसित करना होती हैं। प्राथमिक स्तर पर शायद नोटस लेना अथवा पुस्तकालय के उपयोग सम्बन्धी अध्ययन आदतें विकसित न की होती किन्तु माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में ये आदतें विकसित होना आवश्यक है। इसी प्रकार जब छात्र नए विषय लेता है तो उन विषयों से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं की आवश्यकता हो सकती है। अतः इन नई अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं से छात्रों को अवगत कराने के लिए भी अनुस्थापन वार्ताएँ आयोजित की जा सकती हैं। इन वार्ताओं में विषय अध्यापकों पुस्तकाध्यक्ष आदि का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(इ) नवीन विषयों का परिचय — कक्षा आठ के छात्रों के सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण समस्या होती है अगली कक्षा में विषयों के चयन की। इन विषयों के चयन को अधिक से अधिक सफल बनाने हेतु यह आवश्यक है चयन से पूर्व छात्रों को नवीन विषयों से परिचित करवाया जाय। विषयों के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान के अभाव में लिए गए निर्णय निराशा को जन्म दे सकते हैं। अतः आठवीं कक्षा के छात्रों के लिए नवीं कक्षा में उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक विषयों से सम्बन्धित अनुस्थापन वार्ताओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इसमें भी विषय विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(ई) व्यावसायिक अनुस्थापन—विषयों के उचित चयन के लिए एवं व्यवसाय में प्रवेश हेतु दोनों कार्यों के लिए व्यावसायिक अनुस्थापन आवश्यक है क्योंकि विषयों का चयन भी अन्ततोगत्वा किसी न किसी व्यवसाय में प्रवेश हेतु ही किया जाता है। यदि छात्रों को यह ज्ञात न हो कि अमुक विषयों के चयन से किस प्रकार के व्यवसायों में प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है तो आगे चलकर उन्हें निराशा का मुख देखना पड़ सकता है। अतः आठवीं कक्षाओं के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम अनुस्थापन के साथ साथ व्यावसायिक अनुस्थापन भी आवश्यक है। साथ ही दसवीं एवं ग्यारवीं कक्षा के छात्रों के लिए भी इस अनुस्थापन की अत्यन्त आवश्यकता है इस स्तर पर अनेक छात्र ऐसे होंगे जोकि आगे अध्ययन चालू न रख कर जीविकोपार्जन का साधन ढूंढना चाहेंगे। इन छात्रों के लिए उचित व्यावसायिक अनुस्थापन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। व्यावसायिक अनुस्थापन वार्ताओं के लिए

व्यवसाय में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति को बुलाया जा सकता है। ताकि व्यवसाय के सभी महत्वपूर्ण पक्षों से सम्बन्धित विश्वसनीय सूचनाएं दे सकता है। अनुच्छेद (द) एवं (ई) में वर्णित अनुस्थापन वार्ताएं छात्रों के लिए तो महत्वपूर्ण हैं ही साथ ही अभिभावकों के लिए भी इनका बहुत महत्त्व है। क्योंकि विषयों एवं व्यवसायों के चयन में अभिभावक भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अभिभावकों की अनभिज्ञता से भी अनेक बार छात्रों को अनुपयुक्त विषय दिलवा दिये जाते हैं जिससे आगे चलकर उन्हें निराशा का सामना करना पड़ता है। अतः अभिभावकों को भी इन दो प्रकार की अनुस्थापन वार्ताओं में आमंत्रित किया जा सकता है।

(ख) व्यावसायिक सूचना सम्मेलन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलन का आयोजन छात्रों को उनकी रुचि के व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं प्रदान करने हेतु किया जाता है। अभिस्थापन वार्ताओं में तो अधिकतर वार्ताकार व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं प्रस्तुत करते हैं जबकि व्यावसायिक सूचना-सम्मेलनों की विशेषता यह होती है कि इनमें छात्र भी वार्ताकार से अपनी शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का निवारण करते हैं।

व्यावसायिक सूचना सम्मेलन आयोजित करने की दो प्रमुख विधियां हैं। एक विधि में अलग अलग व्यवसायों के विशेषज्ञों को सत्र में अलग अलग समय पर बुला कर विभिन्न व्यवसायों सम्बन्धित चर्चा आयोजित की जा सकती है। इस विधि का लाभ यह है कि प्रत्येक बालक को प्रत्येक व्यवसाय सम्बन्धी चर्चा में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो सकता है और इसके फलस्वरूप उसे कई व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। परन्तु इस रीति से वार्ताएं आयोजित करने में एक तो अधिक समय लगता है और दूसरा विद्यार्थी जिन व्यवसायों में रुचि नहीं रखते उन व्यवसायों के सम्मेलनों में उन्हें सम्मिलित होने में कोई रुचि नहीं होती। इस प्रकार उनका भी अधिक समय नष्ट होता है। इसकी अपेक्षा व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन आयोजित करने की दूसरी विधि अधिक उपादेय सिद्ध हो सकती है। इस विधि के अन्तर्गत हम वर्ष में किन्हीं दो या तीन दिनों को व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों के लिए निर्धारित कर देते हैं। छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का पता लगा कर उन्हें व्यावसायिक रुचि समूहों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक व्यावसायिक रुचि समूह के लिए उनसे सम्बन्धित व्यवसायों के विशेषज्ञों की वार्ताओं एवं चर्चाओं का आयोजन किया जाता है ताकि छात्रों की वार्ताओं में रुचि बनी रहे। इस सम्मेलन का यदि उचित समन्वित समय चक्र बनाया जाए तो एक छात्र एक से अधिक चर्चाओं में भाग ले सकता है।

(अ) व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन के आयोजन सम्बन्धी कुछ सुझाव—व्यावसायिक सूचना-सम्मेलनों को सफल बनाने हेतु उनको सुनियोजित रूप से आयोजित करना आवश्यक है। अतः इसके आयोजन सम्बन्धी कुछ प्रमुख सुझाव प्र

किय जा रहे हैं।

—तिथि निर्धारण—इन सम्मेलनो के तिथि निर्धारण से पूर्व अनेक बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। सम्मेलनो की तिथि छात्र शाला तथा विशषज्ञ तीनो की सुविधा का ध्यान म रखकर रखना सम्मेलन की सफलता के लिए आवश्यक है। शाला म कोई अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति चल रही हो ऐसे समय यदि व्यावसायिक सूचना सम्मेलना का आयोजन किया जाए तो उसम हम न तो शाला का सहयोग मिलेगा न ही विद्यार्थियो का। इसी प्रकार यदि विद्यार्थी परीक्षाओं या किसी अन्य महत्वपूर्ण काय म व्यस्त हो या छुट्टियो म घर जाने के लिए आतुर हो ऐसे समय यदि हम इन सम्मेलनों का आयोजन करें तो इसकी उपादेयता कम हो जाएगी। अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण बात तिथि निर्धारण क समय जो हम ध्यान म रखनी चाहिए वह है विशेषज्ञ की सुविधा। बिना विशेषज्ञ के तो सम्मेलन का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता।

—छात्रों के रुचि समूहों का गठन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों के आयोजन से पूर्व हम प्रत्येक छात्र की व्यावसायिक रुचियो का पता लगाकर उन्हें व्यावसायिक समूहो म बांट देना चाहिए। समान रुचि वाले छात्रो को एक समूह म रख कर प्रत्येक समूह के लिए उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक चर्चाओ का आयोजन किया जा सकता है।

—विशेषज्ञों से सम्पर्क—व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन म भाग लेने वाले विशेषज्ञो से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर उन्ह इन सम्मेलनो के उद्देश्य म अवगत करा देना चाहिए वक्ताओं को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि एक घण्टे के समय म आधा घण्टा तो वार्ता के लिए रखा गया है और शेष समय छात्रो की जिज्ञासाओ एव शकाओं के निवारण हेतु रखा गया है। व्यवसाय विशेषज्ञ को छात्रो के स्तर से भी अवगत करा देना चाहिए ताकि व उसी अनुसार अपनी वार्ता तयार करें। विशेषज्ञो से अनुरोध किया जा सकता है कि व अपनी वार्ता म अपने व्यवसाय से सम्बन्धित निम्न परिचय देने का प्रयास कर। व्यवसाय की पृष्ठभूमि आवश्यक योग्यताए प्रशिक्षण कार्यपरिस्थितियाँ भविष्य मे प्रगति की सम्भावनाए वेतन एव अन्य सुविधाए व्यवसाय म प्रवेश की विधि आदि।

—सम्मेलन का सचालन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलन की सफलता कुशल सचालन पर निर्भर करेगी। अत इससे सम्बन्धित सब सावधानियाँ ध्यान म रखनी चाहिए। कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। सम्मेलन की सफलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है समय की पाबन्दी का। निर्धारित समय पर यदि एक विशेषज्ञ की वार्ता प्रारम्भ एव समाप्त न हुई तो अगली वार्ताओं का समय चक्र अव्यवस्थित हो जाएगा।

प्रत्येक समूह की चर्चाओं का निर्धारित कक्ष एव उसमे आवश्यक भौतिक

सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए। निर्देशन कार्यकर्ता एक साथ सब समूहों में उपस्थित रह कर चर्चाओं का संचालन नहीं कर सकता। अतः कुछ वरिष्ठ एवं अनुभवी अध्यापकों का सहयोग इसमें उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(आ) व्यावसायिक सूचना सम्मेलन का मूल्यांकन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों के स्तर को सुधारने हेतु इनका मूल्यांकन वांछनीय है। मूल्यांकन छात्रों के मत जानकर किया जा सकता है। मूल्यांकन हेतु छात्रों को एक प्रश्नावली दी जा सकती है जिसमें निम्न बिन्दुओं का समावेश किया जा सकता है।

—व्यावसायिक सूचना सम्मेलन का समय उपयुक्त था अथवा नहीं?

—इसमें प्राप्त सूचनाएं उपादेय प्रतीत हुईं या नहीं?

—सम्मेलन में सब आवश्यक सूचनाएं प्राप्त हो सकीं या नहीं।

—अपनी रुचि के सब व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त हो सकीं या नहीं?

—क्या वार्ताकार की वार्ता समझने में कठिनाई हुई?

—किन किन वार्ताओं को समझने में कठिनाई हुई?

—कौन-कौनसी वार्ताएं अच्छी लगीं?

—सम्मेलन को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने हेतु अन्य सुझाव छात्रों से प्राप्त सुझावों के आधार पर भविष्य में आयोजित व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है।

(इ) कक्षागत कार्य—कक्षागत कार्यों के माध्यम से भी व्यावसायिक सूचनाओं का सचरण सम्भव है। विभिन्न विषयों के शिक्षक समय-समय पर उनके विषयों का किन किन व्यवसायों से सम्बन्ध है यह स्पष्ट कर सकते हैं तथा उन व्यवसायों से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी भी दे सकते हैं। इसी प्रकार अपने विषयों से सम्बन्धित उच्च शिक्षा की क्या सम्भावनाएं हो सकती हैं इन उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों से छात्रों को अवगत कराया जा सकता है। विज्ञान के शिक्षक कृषि विज्ञान पशु विज्ञान चिकित्सा शास्त्र इन्जीनियरिंग टक्नालोजी आदि पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में चर्चा कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्य विषयों के शिक्षक भी आगे चल कर उनका विषय किन पाठ्यक्रमों एवं व्यवसायों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है इसके सम्बन्ध में चर्चा कर सकते हैं।

(ई) पाठ्येत्तर क्रियाओं के माध्यम से—पाठ्येत्तर क्रियाओं के माध्यम से भी छात्रों को व्यावसायिक एवं शैक्षिक सूचनाएं प्रदान की जा सकती हैं। छात्रों को विषयानुसार समूहों में बांटकर कुछ औद्योगिक अथवा व्यापारिक प्रतिष्ठानों में ले जाया जा सकता है। इस प्रकार की भेंटों से छात्रों को व्यावसायिक जगत की जानकारी प्रत्यक्ष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। इन भेंटों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इनका आयोजन व्यवस्थित रूप से किया जाना चाहिए।

प्रयेक भ्रमण से पूर्व छात्रों को कुछ बिंदु स्पष्ट हो जाने चाहिए तभी वे भ्रमण का पूरा लाभ उठा सकते हैं। भ्रमण से पूर्व छात्रों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भ्रमण का क्या उद्देश्य है। भ्रमण के दौरान किन किन पक्षों का अध्ययन करना है। भ्रमण के दौरान किन किन व्यक्तियों से किस प्रकार की सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं आदि बिंदु पूर्णतया स्पष्ट हो जाने चाहिए।

भ्रमण के दौरान शिक्षकों को आवश्यक निर्देश देने चाहिए एवं महत्त्वपूर्ण सूचनाओं की ओर छात्रों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

भ्रमण के पश्चात् भ्रमण का अनुवर्तन कार्य भी आवश्यक है। प्रत्येक छात्र को भ्रमण के पश्चात् उसने जो सूचनाएं प्राप्त की हैं उन्हें लिखने को कहा जाए तथा उन सूचनाओं में कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु छूट गए हों तो उन्हें पूरा किया जाना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है छात्रों को व्यावसायिक सर्वेक्षणों में भी सम्मिलित किया जा सकता है। इन सर्वेक्षणों के माध्यम से भी उन्हें महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं।

(ङ) अभिभावक दिवस—शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं का छात्रों के लिए तो महत्त्व है ही साथ ही अभिभावकों के लिए भी ये सूचनाएं उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। यदि अभिभावकों के पास पर्याप्त शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाएँ हों तो वे अपने बच्चों को विषय अथवा व्यवसायों के चयन में अधिक अच्छी तरह से मार्गदर्शन कर सकते हैं। भारत में तो अभिभावकों तक इन सूचनाओं का पहुँचाना और भी आवश्यक है क्योंकि हमारे यहां अधिकतम परिस्थितियों में माता पिता अथवा अभिभावक ही छात्र के विषय अथवा व्यवसाय के चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः निर्देशन कार्यकर्ता को अभिभावक दिवस के अवसर पर पर्यावरणीय सूचनाएं अभिभावकों तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए। इन अवसरों पर वार्ताएं, प्रश्नोत्तर सत्र, प्रदर्शनियाँ आदि का आयोजन किया जा सकता है जिनके द्वारा अभिभावकों तक पर्यावर्णीय सूचनाएं पहुँचाई जा सकें।

(च) निर्देशन दिवस—निर्देशन दिवसों का आयोजन केवल पर्यावर्णीय सूचनाओं के सचरण के लिए ही नहीं अपितु समस्त निर्देशन कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। निर्देशन दिवस के आयोजन से हम अभिभावकों, समाज के सदस्यों एवं छात्रों को इस बात से परिचित करवा सकते हैं कि निर्देशन सेवाओं के अन्तर्गत हम किन किन सेवाओं को छात्रों के लाभ हेतु उपलब्ध कर रहे हैं। निर्देशन दिवस के अवसर पर पर्यावर्णीय सूचनाओं की प्रदर्शनी, फिल्म शो, व्यावसायिक एवं शैक्षिक वार्ताएं, निर्देशन सेवाओं सम्बन्धी वार्ताएं, निर्देशन सेवाओं सम्बन्धी चार्ट्स एवं चित्र आदि अनेक प्रवृत्तियों का आयोजन कर सकते हैं। इस अवसर पर अभिभावकों एवं समाज के सदस्यों को भी आमंत्रित किया जा सकता है।

(छ) शाला में उपलब्ध पर्यावर्णीय सूचना सामग्री का प्रचार—जैसाकि

पहले कहा जा चुका है छात्र पर्यावर्णीय सूचनाओं का अधिक से अधिक उपयोग करें इसके लिए यह आवश्यक है कि वे जान सकें कि शाला में कौन-कौन सी पर्यावर्णीय सूचना सामग्री उपलब्ध है। यह तभी सम्भव है जब पुस्तकाध्यक्ष एवं निर्देशन कार्यकर्ता इस सामग्री के प्रदर्शन एवं प्रचार के सब साधनों एवं अवसरों का पूरा पूरा लाभ उठाएं। पुस्तकालय में इस सामग्री के प्रदर्शन हेतु डिसप्ले रेक्स (Display racks) का प्रयोग किया जा सकता है। शाला के विभिन्न उत्सवों के अवसर पर निर्देशन प्रदर्शिनी का आयोजन, शाला पत्रिका में पर्यावर्णीय सूचनाओं सम्बन्धी जानकारी प्रकाशित करना तथा अन्य अनेक ऐसे माध्यम खोज जा सकते हैं जिनके द्वारा पर्यावर्णीय सूचना सामग्री का अधिक से अधिक प्रचार एवं प्रदर्शन हो सके।

(ज) उच्चस्तरीय विद्यालयों से भेंट—पर्यावर्णीय सूचनाओं के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण सूचना उच्चस्तरीय विद्यालयों के जीवन सम्बन्धी हो सकती है। छात्रों को वे आगे चलकर जिन विद्यालयों में पढ़ने जा रहे हैं उनसे अवगत कराया जाय तो उन्हें वहां जाने पर व्यवस्थापन सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। इसका सर्वोत्तम तरीका हो सकता है इन उच्चस्तरीय विद्यालयों से भेंट करना। छात्रों को छोटे छोटे समूहों में ले जाकर इन विद्यालयों के जीवन से अवगत कराया जा सकता है। अनुच्छेद छ में व्यापारिक प्रतिष्ठानों में भेंट के जो सिद्धान्तों की चर्चा की गई है उन्हीं सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए हम विद्यालय भेंटों का आयोजन करना चाहिए।

उपसंहारात्मक कथन

निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य है कि व्यक्ति में बुद्धिमत्तापूर्ण आत्मनिर्णय ले सकने की क्षमता विकसित करना। यह क्षमता व्यक्ति में तभी विकसित हो सकती है जब व्यक्ति दो प्रकार की सूचनाओं के समुच्चयों का अध्ययन कर दोनों के बीच ताल मेल बठा सके। इन दो सूचना समुच्चयों में एक समुच्चय तो है व्यक्ति के स्वयं की विशिष्टताओं-सीमितताओं सम्बन्धी सूचनाओं का और दूसरा समुच्चय है व्यक्ति जिस पर्यावरण से सम्बन्धित निर्णय ले रहा है अथवा समस्या सुलझाने का प्रयास कर रहा है उससे सम्बन्धित सूचनाओं का। निर्देशन के अन्तर्गत हम जो विभिन्न सेवाएं व्यक्ति को प्रदान करते हैं उनमें से दो प्रमुख सेवाएं इन सूचनाओं के संकलन संग्रह मिसीलीकरण निर्वचन एवं संचरण से सम्बन्धित हैं। वैयक्तिक सूचना सेवा तो व्यक्ति को उसके स्वयं की क्षमताओं सीमितताओं से सम्बन्धित वैध एवं विश्वसनीय सूचनाएं प्रदान करती है और पर्यावर्णीय सूचना सेवा व्यक्ति के शैक्षिक व्यावसायिक एवं आर्थिक-सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित सूचनाएं प्रदान करती है। इस अध्याय में पर्यावर्णीय सूचनाओं के स्रोतों संकलन एवं संचरण विधियों से सम्बन्धित तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। संकलन एवं संचरण दोनों को प्रभावोत्पादक बनाने हेतु जो प्रमुख सिद्धान्त ध्यान में रखे जा सकते हैं इसका भी यथास्थान वर्णन किया गया है। निर्देशन कार्यकर्ताओं की सामान्य कठिनाई यह होती है कि हमारे देश में

व कौनसे अभिकरण हैं जिनसे पर्यावरण म सम्बन्धित विश्वसनीय सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं। अत इस कठिनाई को ध्यान म रखते हुए भारत म पर्यावर्णीय सूच नाए प्राप्त करन के जो अभिकरण हो सकते है उनक सम्बन्ध म भी इस अध्याय म चर्चा की गई है।

पर्यावर्णीय सूचना सेवा हमारे देश क बालको के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा सिद्ध हो सकती है क्योंकि हमारे बालको म क्षमताए होते हुए भी अनेक बार साधन सुविधाओ की जानकारी के अभाव म व इन क्षमताओ को पूर्णतया विकसित न ी कर पाते। सरकार द्वारा अनेक एसी योजनाए प्रारम्भ की गई हैं जिनके अन गत निधन किन्तु मेधावी छात्रो की उत्तम शिक्षा की व्यवस्था है। किन्तु जबतक इन योजनाओ की जानकारी उन जरूरतमन्द बालको को नहीं होगी तबतक सरकार की इच्छा होते हुए भी व इन योजनाओ का लाभ नहीं उठा पाव ग। हमारे अनेक *मेधावी बालको की प्रतिभा इन अवसरो स अनभिज्ञता क का ण कु ठित हो जाती* है अत हर निर्देशन कार्यकर्ता को पर्यावर्णीय सूचनाओ को संकलित कर बालको तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।

उपरोक्त उदाहरण स हम य न समझें कि केवल गरीब छात्रो को ही पर्याप्त पर्यावर्णीय सूचनाओ का ज्ञान नहीं होता। आजकल हम जिस पर्यावरण म रहते हैं वह उत्तरोत्तर रूप से सजटिल होता जा रहा है। इतने अधिक प्रकार के पाठ्यक्रम प्रशिक्षण व्यवसाय आदि उत्पन्न एव विकसित हो रहे हैं कि एक अच्छे पढ लिखे अभिभावक के लिए भी सब प्रकार की पर्यावरणीय सूचनाओ का ज्ञान हो होना आवश्यक नहीं। अत उनके लिए भी इस प्रकार की विशेष सेवा उपादेय सिद्ध हो सकती है। इस अध्याय म इसी सेवा के प्रमुख पक्षो पर प्रकाश डाला गया है।

निदेशन कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण

(निदेशन प्रशिक्षण के विभिन्न स्तर — (१) प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए (२) सामान्य शिक्षकों के लिए (३) करियर मास्टरों के लिए (४) शिक्षक उपबोधकों के लिए निर्देशन प्रशिक्षण के अभिकरण —(१) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (५) स्टेट ब्यूरो आफ गाइडेंस (६) शिक्षक महाविद्यालय प्रशिक्षण कार्यक्रम (१) प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए प्रशासन कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां – (२) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां (३) करियर मास्टरों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम – (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां (४) शिक्षक उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां (अ) प्रथम – उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां उपसंहारात्मक कथन)

निर्देशन कार्यक्रम की सफलता एक बहुत बड़ी सीमा तक इस कार्यक्रम का संचालित करने वाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। निर्देशन जैसे अत्यन्त तकनीकी कार्य को यदि अप्रशिक्षित एवं अपरिपक्व व्यक्तियों को सौंप दिया जाए तो इससे छात्रों को अपेक्षित लाभ नहीं पहुँच सकता। इस समस्त अध्याय में निर्देशन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के विभिन्न स्तरों एवं प्रशिक्षण की रूपरेखाओं का विवेचन किया गया है। भारत में तो निर्देशन कार्यकर्ताओं के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षणों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके दो कारण हैं। प्रथम–हमारे देश में निर्देशन अभी भी एक नई विचारधारा है अतः इस क्षेत्र में प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी है। दूसरा—यदि हम भारतवर्ष की प्रत्येक शाला में निर्देशन कार्यक्रम प्रारम्भ करना चाहें तो हमें इतने अधिक निर्देशन कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी कि जबतक हम प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रावधान नहीं करेंगे तबतक इस माँग की पूर्ति नहीं की जा सकती। इन कार्यक्रमों को हम सेवारत कार्यक्रमों एवं ग्रीष्म

कालीन कायक्रमा के रूप म भी चलाना होगा ताकि इनका लाभ अधिक अध्यापक उठा सक ।

निर्देशन प्रशिक्षण क विभिन स्तर

निर्देशन प्रशिक्षण केवल अशकालिक अथवा पूर्णकालिक निर्देशन कायकर्ताओं के लिए ही आवश्यक नही अपितु इस कायक्रम म भाग लन वाल समस्त कायकर्ताओं क लिए आवश्यक होता है। इस प्रशिक्षण का स्तर एव इसकी विधि अवश्य भिन भिन स्तर के कायकर्ताओं क लिए भिन्न होगी। निर्देशन कायक्रम के विभिन स्तरा का एक दूसरा भी कारण है। प्रत्येक शाला मे हम पूर्णकालिक निर्देशन कायकर्त्ता की अथवा शाला उपबोधक की कल्पना नही कर सकते। अत भारतीय परिस्थितियों का ध्यान म रखते हुए हम अशकालिक निर्देशन कायकर्ताओ अथवा करियर मास्टर्स क प्रशिक्षण का भी प्रावधान रखना होगा। उपरोक्त कारणो स निर्देशन प्रशिक्षण विभिन स्तरो पर विविध कार्मिकों के लिए आयोजित किया जा सकता है। निर्देशन कायक्रम के विभिन स्तरों को निम्नलिखित अनुच्छेदो म प्रस्तुत करन का प्रयास किया गया है।

(१) प्रधानाध्यापको एव शाला प्रशासको के लिए

जसा कि पहले भी कई बार कहा जा चुका है कि जबतक प्रधानाध्यापक तथा अय प्रशासक निर्देशन कायक्रम क महत्व को नही समझते और इसे शाला की एक आवश्यक एव महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप म स्वीकार नही करते तबतक निर्देशन कायक्रम सफल नहीं हो सकता। अत सवप्रथम हम कुछ अल्पकालीन कायक्रमों का आयोजन करना होगा जिनके द्वारा प्रधानाध्यापको एव शाला प्रशासको म इस कायक्रम क प्रति आशसन (Appreciation) विकसित किया जा सके। इन कायक्रमो को आशसन पाठ्यक्रम (Appreciation Courses) का रूप दिया जा सकता है। इस स्तर के व्यक्तियो के लिए जो आशसन पाठ्यक्रम आयोजित किए जाए उनका स्वरूप अय स्तरीय कायक्रमो से बिलकुल भिन होगा तथा इनक सचालन की विधि भी भिन होगी। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ तो हम केवल इस बात पर बल देना चाहते है कि निर्देशन कायक्रम के प्रति प्रशासको एव प्रधानाध्यापको के मन म उचित दृष्टिकोण एव आशसन विकसित करने हेतु हम कुछ अल्पकालीन कायक्रम आयोजित करने होंगे।

(२) सामाय शिक्षको के लिए

शाला म किसी भी नई प्रवृत्ति को प्रारम्भ करन से पूव शाला क शिक्षक समुदाय को उस प्रवृत्ति स अवगत कराना आवश्यक होता है। फिर निर्देशन कायक्रम तो एक बिलकुल नई प्रवृत्ति है अत इसके विषय म शिक्षको को अनुस्थापित करने की आवश्यकता तो और भी अधिक है। इस प्रवृत्ति की एक और विशेषता यह है कि इसके सफल सचालन क लिए पद पद पर सभी शिक्षको का सहयोग आवश्यक

होता है। कुछ शिक्षकों को तो इस प्रवृत्ति से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्वों का भी भार वहन करना पड सकता है। अत शाला के समस्त शिक्षकों के लिए भी एक सामान्य अनुस्थापन पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। यह कार्यक्रम कई स्वरूपों में आयोजित किया जा सकता है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

(३) करियर मास्टरों के लिए

अधिकतर भारतीय शालाओं में निर्देशन कार्यकर्ता करियर मास्टर के रूप में ही होते हैं। इनका कार्य मूलत व्यावसायिक सूचनाओं का सकलन विश्लेषण गिरोनीकरण एव सचरण होता है। इस कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। किसी भी ऐसे शिक्षक को इस प्रशिक्षण हेतु भेजा जा सकता है जिसकी निर्देशन में रुचि एव आस्था हो। करियर मास्टर को निर्देशन की समस्त सेवाओं का भार नहीं सौपा जाता अत इनका प्रशिक्षण भी अल्पकालीन ही हो सकता है। प्रत्येक उच्चस्तर माध्यमिक विद्यालय में जिसमें लग भग ५०० छात्र पढते हो उसमें एक करियर मास्टर का होना आवश्यक है जाकि छात्रों को व्यावसायिक सूचनाए उपलब्ध कराई जा सके।

(४) शिक्षक उपबोधकों के लिए

शिक्षक उपबोधक भी एक अशकालिक निर्देशन कार्यकर्ता होता है। जिस प्रकार करियर मास्टर का कार्य व्यावसायिक सूचनाओं का सग्रह एव सचरण है उसी प्रकार शिक्षक-उपबोधक अन्य पर्यावरणीय सूचनाओं तथा वैयक्तिक सूचनाओं के सक लन का कार्यभार सम्भाल सकता है तथा कुछ सीमा तक छात्रों की समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर सकता है। किन्तु इस अशकालिक निर्दे शन कार्यकर्ता से हम वैयक्तिक उपबोधन की अपेक्षा नहीं कर सकते। शिक्षक उप बोधक मूलत सामूहिक निर्देशन विधियों द्वारा ही छात्रों की सामूहिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान कर सकता है। अत इस कार्यकर्ता के प्रशिक्षण में इसी पक्ष पर अधिक बल होना चाहिए।

(५) शाला उपबोधकों के लिए

पूर्णकालिक शाला उपबोधक भारतीय शालाओं में सामान्यतया नहीं पाए जाते—यद्यपि एक अच्छे उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के लिए एक पूर्णकालिक उप बोधक होना आवश्यक है। साधारणत लगभग १ छात्र सख्या वाले विद्यालयों में यदि एक पूर्णकालिक उपबोधक रखा जाए तो वाछनीय होगा। अभी राजस्थान के कुछ प्रमुख नगरों में कई उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए सम्मिलित रूप से एक पूर्णकालिक उपबोधक का प्रावधान किया गया है। यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है फिर भी इस प्रान्त में निर्देशन के महत्त्व को समझ कर यह प्रावधान किया गया यह एक सन्तोष का विषय है। इन पूर्णकालिक उपबोधकों के लिए काफी विस्तृत प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इन उपबोधकों से लगभग सभी निर्देशन

सेवाओं के आयोजन की अपेक्षा की जा सकती है। इन उपबोधकों व व्यक्तिगत उपबोधन की भी अपेक्षा की जा सकती है अतः उनके प्रशिक्षण में उद्गम कला में दक्ष करने का प्रावधान होना चाहिए।

निर्देशन प्रशिक्षण के अभिकरण

भारत में यद्यपि निर्देशन अभी भी एक नई विचारधारा है फिर भी हमारे देश में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न अभिकरण क्रियाशील हैं। इनमें से कुछ प्रमुख अभिकरणों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

(१) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (N C E R T)

इस केन्द्रीय संस्था के डिपार्टमेंट आफ एजुकेशनल साइकोलोजी एण्ड फाउण्डेशन आफ एजुकेशन (D E P F E) के निर्देशन विभाग द्वारा एक पाठ्यक्रम चलाया जाता है जिसमें निर्देशन का उच्चस्तरीय प्रशिक्षण दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम एक वर्षीय पाठ्यक्रम है तथा इसे एसोसिएटशिप आफ नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एजुकेशन का नाम दिया गया है।

(२) स्टेट ब्यूरो आफ गाइडेन्स

लगभग प्रत्येक राज्य में निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए गए हैं जिनमें विभिन्न स्तरीय प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रमुख ध्येय करियर मास्टर तथा शाला उपबोधक तैयार करना है। राज्य निर्देशन ब्यूरो प्रवक्ताओं में प्रशिक्षण शिविर सगोष्ठियाँ आदि आयोजित करके भी प्रशिक्षण कार्य संचालित करते हैं।

( ) शिक्षक महाविद्यालय

शिक्षक महाविद्यालय भी निर्देशन के प्रशिक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। आजकल स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रमों में निर्देशन का समावेश किया जाता है। बी० एड० के पाठ्यक्रम में लगभग सभी विषयों में निर्देशन के किसी न किसी पक्ष का समावेश किया जाता है जिससे सामान्य शिक्षकों को इस विचारधारा से अवगत होने का अवसर प्राप्त होता है। शिक्षक प्रशिक्षण के बी० एड० कार्यक्रम में निर्देशन के विशेषज्ञता पाठ्यक्रमों का भी प्रावधान होता है। इसी प्रकार एम० एड० स्तर पर भी शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में विशेषज्ञता पाठ्यक्रम रखे जाते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय अपने सेवा प्रसार विभागों के माध्यम से भी कुछ प्रशिक्षणों का आयोजन कर सकते हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम

उपर्युक्त अभिकरण विभिन्न स्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इन कार्यक्रमों की अवधि अन्तर्वस्तु एवं विधियों की चर्चा निम्नांकित अनुच्छेदों में की जायगी —

(१) प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आशसन पाठ्यक्रम

जैसाकि पहले कहा जा चुका है निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिए प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों को इस कार्यक्रम की उपयोगिता से अवगत कराना आवश्यक है। इस अनुस्थापन कार्यक्रम को प्रशिक्षण की अपेक्षा आशसन पाठ्यक्रम कहना तो अधिक उचित होगा। क्योंकि इसके फलस्वरूप हम कोई नए निर्देशन कार्यकर्ताओं का निर्माण करने की अपेक्षा नहीं रखते। प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आयोजित आशसन पाठ्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं।

(क) उद्देश्य— इस कार्यक्रम के द्वारा हम कोई कुशल निर्देशन कार्यकर्ताओं का निर्माण नहीं करना चाहते। अतः इस पाठ्यक्रम में ज्ञान पक्ष पर एवं कुशलताओं पर कम बल रहना चाहिए तथा उचित दृष्टिकोण विकसित करने पर तथा आशसन पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। ज्ञान पक्ष का प्रस्तुतिकरण भी इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रशासकों एवं प्रधानाध्यापकों के मन से निर्देशन के विषय की भ्रामक धारणाएं निकल जाएं और वे इसे उचित परिप्रेक्ष्य में देख सकें। इन उद्देश्यों को व्यवस्थित रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है —

—निर्देशन की विकासात्मक पृष्ठभूमि से अवगत कराना।
—निर्देशन के स्वरूप एवं महत्त्व से अवगत कराना।
—निर्देशन की विविध सेवाओं से अवगत कराना।
—निर्देशन से सम्बन्धित कुछ भ्रामक धारणाओं को दूर करना।
—एक शाला के लिए न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करना।
—निर्देशन कार्यक्रम के संगठन के सिद्धान्तों की चर्चा करना।
—इस कार्यक्रम के आर्थिक पक्ष की चर्चा करना।

इन सब उद्देश्यों के पीछे एक प्रमुख उद्देश्य निरन्तर क्रियाशील रहना चाहिए वह यह कि प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के मन में इस कार्यक्रम के प्रति आस्था विकसित करना एवं उनको इसके बढ़ते हुए महत्त्व से परिचित करवाना।

(ख) अवधि— प्रशासकों एवं प्रधानाध्यापकों की व्यस्तता को देखते हुए हम उनसे किसी दीर्घकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित होने की अपेक्षा नहीं कर सकते। फिर इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य भी कोई विशेषज्ञ कार्यकर्ता निर्माण करना नहीं है। अतः इस कार्यक्रम की अवधि अत्यन्त अल्प होनी चाहिए। तीन दिन की किसी संगोष्ठि में उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है। अवधि के साथ साथ इन आशसन पाठ्यक्रमों का समय भी ऐसा होना चाहिए जब ये अधिकारी कुछ कम व्यस्त हों।

(ग) अभिकरण— प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आशसन पाठ्यक्रम के संचालन का उत्तरदायित्व राज्य निर्देशन ब्यूरो ही सबसे उत्तम रीति से निभा सकता है। इस राज्य स्तरीय अभिकरण के पास उपयुक्त विशेषज्ञ भी होते हैं और

आवश्यक सत्ता भी । जिन शिक्षक महाविद्यालयों में निर्देशन के विशेषज्ञ हों एवं सेवारत प्रशिक्षण के लिए साधन हों वे महाविद्यालय भी अपने सेवा प्रसार विभागों के माध्यम से प्रधानाध्यापकों एवं अन्य प्रशासकों के अनुस्थापन हेतु अल्पकालीन संगोष्ठियों का आयोजन कर सकते हैं।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु— प्रधानाध्यापकों एवं अन्य प्रशासकों को निर्देशन की विचारधारा एवं इसकी गतिविधियों से अवगत कराने हेतु जो पाठ्यक्रम चलाया जाय उसकी अन्तर्वस्तु क्या हो यह इस पाठ्यक्रम के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो सकता है। हमने अनुच्छेद ... में इन उद्देश्यों की चर्चा की है। इन उद्देश्यों के सन्दर्भ में यदि हम पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु की व्याख्या करने का प्रयत्न करें तो कदाचित् उसका स्वरूप निम्न प्रकार से उभरेगा—

- निर्देशन का विकासात्मक स्वरूप।
- आधुनिक जटिल समाज में निर्देशन की आवश्यकता।
- विभिन्न निर्देशन सेवाएं।
- निर्देशन सम्बन्धी कुछ भ्रामक सम्प्रत्यय – निर्देशन का संकुचित अनुमापन पर आवश्यकता से अधिक बल।
- निर्देशन में शिक्षकों का उत्तरदायित्व।
- निर्देशन सेवाओं का प्रशासनिक एवं वित्तीय पक्ष।
- निर्देशन कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्व एवं उनके लिए पर्याप्त सुविधाएं।

उपर्युक्त बिन्दुओं पर यदि संक्षिप्त में किन्तु प्रभावोत्पादक ढंग से प्रकाश डाला जाय तो शाला प्रशासकों को निर्देशन कार्यक्रम को उचित परिप्रेक्ष्य में देखने तथा इसके आत्मसात में सहायता प्रदान की जा सकती है।

(ङ) प्रशिक्षण विधियाँ— इस स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रम में लम्बे भाषणों का कम से कम प्रावधान हो तथा चर्चाओं श्रव्य दृश्य सामग्री के उपयोग एवं साहित्य अध्ययन आदि विधियों पर अधिक बल दिया जाय। पाठ्यक्रम के भाग साहित्यों के साथ विद्यार्थियों की तरह व्यवहार करने की अपेक्षा उन्हें यह आभास कराया जाय कि उनके साथ चर्चा के माध्यम से शाला की प्रगति एवं छात्रों के विकास हेतु शिक्षा के एक नए आयाम की सम्भावनाओं को खोजा जा रहा है। इस नयी विचारधारा के व्यावहारिक पक्षों की उपादेयता को उभारते हुए इन प्रशासकों को इसे अपनाने के लिए प्रवृत्त किया जाना चाहिए ताकि वे अपनी शालाओं में इस नई प्रवृत्ति को प्रारम्भ कर उसका सफल संचालन कर सकें।

(२) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

शाला में कोई नया प्रयोग प्रारम्भ करने में पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि शाला के समस्त अध्यापक उससे पूर्णतया अवगत हों। यह सिद्धान्त निर्देशन के साथ भी लागू होता है। हमारी शालाओं के लिए निर्देशन एक नूतन प्रयोग है अतः इसकी

सफलता हेतु शाला के प्रत्येक अध्यापक को इसके उद्देश्यों प्रवृत्तियों उपादेयता आदि से अवगत कराना आवश्यक हो जाता है। शिक्षकों के लिए आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम से उद्देश्यों विधियों प्रतवस्तु तथा अवधि में भिन्न होगा। प्रधानाध्यापक को तो निर्देशन के प्रशासकीय पक्ष से अधिक सम्बन्ध रहता है जबकि शिक्षकों का इस कार्यक्रम में कई रूप से सहयोग अपेक्षित होता है। छात्रों के सम्बन्ध में सूचनाएं शिक्षकों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। वैयक्तिक सूचना सेवा एवं पर्यावर्णीय सूचना सेवाओं के संगठन में पर्यावर्णीय सूचनाओं के संचरण में व्यावसायिक एवं शैक्षिक समस्याओं को हल करने में तथा अन्य अनेक परिस्थितियों में शिक्षकों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। यह सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शिक्षकों की इस कार्यक्रम में आस्था हो वे इससे पूर्णरूप से परिचित हो एवं वे इस कार्यक्रम को महत्वपूर्ण समझते हों। यह तभी सम्भव हो सकता है जब इन अध्यापकों का निर्देशन कार्यक्रम के प्रति उचित अनुस्थापन किया जाए। इस कार्यक्रम के उद्देश्य प्रतवस्तु विधियां आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुच्छेदों में चर्चा की जायगी।

(क) उद्देश्य — शिक्षकों के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाए उसमें निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। इसमें प्रशासकीय एवं वित्तीय पक्ष पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं होगी। इस कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं —

—निर्देशन के इतिहास एवं तात्कालिक स्वरूप से अवगत करना।

—आधुनिक जटिल समाज में निर्देशन के महत्व को स्पष्ट करना।

—निर्देशन की विभिन्न सेवाओं का परिचय देना।

—भारतीय शालाओं के लिए न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करना।

—निर्देशन कार्यक्रम में शिक्षकों की अपेक्षित भूमिकाओं से अवगत करना।

—निर्देशन सेवाओं के फलस्वरूप अध्यापन कार्य के उन्नयन में क्या सहायता मिल सकती है इससे शिक्षकों को अवगत करना।

(ख) अवधि — शिक्षकों के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाए उसकी अवधि कम से कम एक सप्ताह की हो सकती है। हम लगातार एक सप्ताह का कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं अथवा तीन दिनों के दो-तीन कार्यक्रम आयोजित कर उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं।

(ग) अभिकरण — शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का कार्य कई अभिकरणों द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। निर्देशन कार्यकर्त्ता स्वयं शाला में इस कार्यक्रम का संचालन कर सकता है। राजकीय ब्यूरो के किसी विशेषज्ञ से इस कार्य में सहायता ली जा सकती है अथवा शिक्षक महाविद्यालयों के सेवा प्रसार विभागों के द्वारा

भी इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है। आजकल तो शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में भी निर्देशन के मूल तत्वों का समावेश सामान्यतः किया जाता है जिससे प्रत्येक प्रशिक्षित अध्यापक को निर्देशन के मूल तत्वों से परिचित होने का अवसर मिलता है।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु — शिक्षकों के लिए निर्देशन का जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाय उसमें निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं का समावेश किया जाना चाहिए। इस पाठ्यक्रम में निर्देशन में शिक्षक के स्थान पर अधिक विस्तार से चर्चा होनी चाहिए। साथ ही निर्देशन के महत्व की चर्चा करते समय इस कार्यक्रम की छात्रों के लिए क्या उपयोगिता है तथा शिक्षकों के लिए यह कार्यक्रम किस प्रकार महत्वपूर्ण है इन बिन्दुओं पर भी प्रकाश डालना चाहिए। इस पाठ्यक्रम की रूपरेखा का प्रस्तावित स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

—निर्देशन का इतिहास एवं इसका विकासात्मक स्वरूप।
—निर्देशन दर्शन।
—निर्देशन का आधुनिक गतिशील समाज में महत्व।
—निर्देशन की प्रमुख सेवाएं।
—निर्देशन सेवाओं में शिक्षकों का स्थान।
—वैयक्तिक सूचना संग्रह के प्रमापीकृत साधन एवं शिक्षकों द्वारा इनका उपयोग।
—पाठ्यक्रम एवं पाठ्येतर क्रियाओं द्वारा व्यावसायिक सूचनाओं का सचरण।
—छात्रों की सामान्य शैक्षिक समस्याएं।

(ङ) प्रशिक्षण विधियाँ — शिक्षकों के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएं उसमें वार्ताएं, चर्चाएं, श्रव्य दृश्य साधनों आदि का प्रयोग तो हो ही किन्तु कुछ व्यावहारिक कार्य का भी प्रावधान होना चाहिए। शिक्षकों को उपाख्यान वृत्तों को लिखने का अभ्यास दिया जाए। कुछ निर्धारण सूचियों का प्रयोग करने का अवसर दिया जाए अथवा संचित अभिलेख भरने का अभ्यास करवाया जाए।

( ) करियर मास्टरों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

छोटी अर्थात् ऐसी शालाओं में जिनमें ५ से कम छात्र हों करियर मास्टर का ही प्रावधान किया जा सकता है। कम साधन सुविधाएं यदि उपलब्ध हों तो शाला उपबोधक अथवा पूर्ण कालिक उपबोधक भी रखा जाए तो प्रसन्नता का ही विषय होगा। किन्तु सामान्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तो हम छोटी शालाओं में प्रारम्भ में करियर मास्टर की ही कल्पना कर सकते हैं। करियर मास्टर का प्रमुख कार्य व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में होता है। वह व्यावसायिक सूचनाओं का संकलन एवं संचरण करता है और जहाँ सम्भव हो

व्यावसायिक निर्देशन देने का प्रयास करता है। किन्तु इस कार्यकर्ता से हम वैयक्तिक उपबोधन की अपेक्षा नहीं कर सकते। इसका प्रमुख कार्य पर्यावर्णीय सूचनाएं एकत्रित करना उनका वर्गीकरण मिसीलीकरण आदि करना एवं सचरण करना है। इन सूचनाओं को छात्रों तक पहुँचाने के लिये व्यावसायिक वार्ताओं का आयोजन व्यावसायिक प्रदर्शनियों का आयोजन शिक्षक अभिभावक सम्मेलनों आदि का आयोजन भी इसी कार्यकर्ता को करना होता है इन प्रमुख उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए हम इनके लिये आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य का प्रतिपादन करना चाहिये। यहाँ इस कार्यक्रम के कुछ प्रस्तावित उद्देश्य दिये गये हैं।

(क) उद्देश्य

—निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत करना।

—निर्देशन की आधुनिक धारणा से अवगत करना।

—निर्देशन की प्रमुख सेवाओं का सामान्य परिचय।

—पर्यावर्णीय सूचना सेवा का विस्तृत परिचय देना।

—करियर मास्टर के उत्तरदायित्वों से अवगत कराना।

—विभिन्न सूचना स्रोतों से अवगत करना।

—सूचनाओं की सकलन संगठन एवं संचरण विधियों से अवगत करना।

—सूचना सेवा से सम्बद्ध प्रमुख प्रवृत्तियों से अवगत करना एवं उनके आयोजन की क्षमता विकसित करना।

(ख) अवधि — करियर मास्टरों के प्रशिक्षण की अवधि कम से कम दो मास की होनी चाहिये। इस प्रशिक्षण के लिये ग्रीष्मावकाश का उपयोग किया जा सकता है।

(ग) अभिकरण — इस प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व सामान्यतया राज्य निर्देशन ब्यूरो को लेना चाहिये क्योंकि ब्यूरो के पास आवश्यक विशेषज्ञ उपलब्ध होते हैं तथा यह एक राजकीय एवं राज्यस्तरीय अभिकरण होने के कारण इसके द्वारा दिये गये प्रमाणपत्रों को सुलभता से मान्यता प्राप्त हो सकती है। फिर ब्यूरो की विभिन्न गतिविधियों में निर्देशन कार्मिकों का प्रशिक्षण भी एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु — करियर मास्टरों के उत्तरदायित्वों को देखते हुए उनके प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में पर्याप्त व्यावहारिक कार्य होना चाहिए। या यों कहें कि यह समस्त कार्यक्रम ही पूर्णतया व्यावहारिक होना चाहिये। पर्यावर्णीय सेवा के विविध आयामों में सम्बन्धित अनेक प्रवृत्तियों के संगठन संचालन की वास्तविक कुशलता निर्माण करना इस पाठ्यक्रम का ध्येय है। पुस्तकालय में निर्देशन कोण की स्थापना से लेकर सूचनाओं के संचरण की विविध विधियों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी इन कार्मिकों को दी जानी चाहिए तथा इन उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निभाने की इनमें क्षमता उत्पन्न की जानी चाहिए। इन निर्देशन

सिद्धान्तों को ध्यान म रखते हुए हमने करियर मास्टरों के प्रशिक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

—निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।
—निदशन का आधुनिक सप्रत्यय।
—निर्देशन का महत्व।
—निदशन की प्रमुख सवाओं का परिचय।
—पर्यावर्णीय सूचनाओं के स्रोत।
—पर्यावर्णीय सेवा का विस्तृत ज्ञान।
—निर्देशन कार्य का आयोजन।
—पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन के सिद्धान्त एव विधियाँ।
—पर्यावर्णीय सूचनाओं के सचरण की विधियाँ।
—व्यावसायिक वार्ताओं तथा व्यावसायिक दिवसों का आयोजन।
—निर्देशन दिवस तथा अभिभावक दिवसों का आयोजन।
—व्यावसायिक सर्वेक्षण।

व्यावसायिक कार्य

(१) निर्देशन कोण का सगठन।
(२) पर्यावर्णीय सचनाओं की समीक्षा।
(३) व्यावसायिक सूचना पत्रों का निर्माण।
(४) व्यावसायिक वार्ता की रूपरेखा बनाना।
(५) व्यावसायिक सर्वेक्षण।

(इ) **प्रशिक्षण की विधियाँ** — इस प्रशिक्षण म भी सद्धान्तिक कार्य के अतिरिक्त पर्याप्त मात्रा म व्यावहारिक कार्य होना चाहिए। जो कार्य करियर मास्टर को करने हैं उनका पूरा अभ्यास उसे प्रशिक्षण काल के दौरान दिया जाना चाहिए। विविध पर्यावर्णीय सचनाओं से उसे अवगत किया जाना चाहिए। श्रव्य-दृश्य विधियों का भी उसे प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए क्योंकि पर्यावर्णीय सचनाओं के सचरण हेतु उसे इन विधियों का उपयोग करना पड़ता है।

(४) शिक्षक उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

प्राय शिक्षक उपबोधक भी एक अशकालिक निर्देशन कार्यकर्ता होता है किन्तु उसका कार्यक्षेत्र करियर मास्टर से अधिक विस्तृत होता है। अत इसके प्रशिक्षण का भी स्तर अधिक ऊचा होना चाहिए। इसका कार्य केवल व्यावसायिक सच नाओं का सकलन – सचरण तक ही सीमित नहीं करना। यह शैक्षिक निर्देशन तथा कुछ सीमा तक व्यक्तिगत निर्देशन का भी कार्य करता है। इसम हम फिर भी व्यक्तिगत उपबोधक की अपेक्षा नहीं कर सकते। यह सामान्यतया सामूहिक निर्देशन विधियों को अपनाकर छात्रों की सामूहिक समस्याओं का सुलझान का प्रयत्न करता

है। इस पृष्ठभूमि में यदि हम इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य प्रतिपादित करने का प्रयास करें तो अधिक उपयुक्त होगा।

(क) उद्देश्य —

—निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत करना।

—निर्देशन के आधुनिक सम्प्रत्यय से अवगत करना।

—निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्तों से अवगत करना।

—निर्देशन सेवाओं के सगठन के सिद्धान्तों एवं विधियों से अवगत करना।

—शिक्षक उपबोधक के उत्तरदायित्वों एवं गुणों से अवगत करना।

—भारतीय शालाओं के लिए न्यूनतम आवश्यक निर्देशन कार्यक्रम से अवगत करना।

—वैयक्तिक सूचनाओं को सकलित करने के प्रमापीकृत साधनों से परिचित कराना।

—पर्यावरणीय सूचनाओं के स्रोतों सकलन एवं सचरण विधियों से अवगत कराना।

—सामूहिक निर्देशन की विधियों से अवगत कराना।

(ख) अवधि— शाला उपबोधकों का कार्यक्षेत्र करियर मास्टरों की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है अतः इनके प्रशिक्षण की अवधि भी अधिक होना स्वाभाविक है। कुछ ब्यूरो के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की अवधि कम से कम ६ मास की होनी चाहिए। इसमें लगभग आधा समय व्यावहारिक कार्य (On the job Training) के लिए तथा प्रत्यक्ष व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए दिया जाना चाहिए।

(ग) अभिकरण— इस कार्यक्रम को भी चलाने का उत्तरदायित्व राज्य निर्देशन ब्यूरो को ही सम्भालना चाहिए। वैसे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बी एड पाठ्यक्रम में भी निर्देशन में विशेषज्ञता प्राप्त करने हेतु कुछ पाठ्यक्रम रखे जाते हैं किन्तु इनमें व्यावहारिक कार्य नहीं के बराबर होता है और न ही बी एड के व्यस्त कार्यक्रम में हम इससे अधिक अपेक्षा ही कर सकते हैं। अतः इन पाठ्यक्रमों के आधार पर हम एक सफल शिक्षक उपबोधक के निर्माण की अपेक्षा नहीं कर सकते।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु

(अ) सैद्धान्तिक —

(१) निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

(२) निर्देशन का आधुनिक सम्प्रत्यय।

(३) निर्देशन का आधुनिक जटिल समाज में महत्त्व।

(४) निर्देशन सेवाओं का परिचय।

(५) निर्देशन सेवाओं के सगठन के सिद्धान्त ।

(६) सामान्य भारतीय शालाओं की निर्देशन आवश्यकताए ।

(७) न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम ।

(८) वैयक्तिक सूचना सकलन के अमानकीकृत साधन एव प्रविधियो तथा मानकीकृत सामूहिक परीक्षण ।

(९) मानकीकृत एव अमानकीकृत साधनो के उपयोग के सिद्धात ।

(१०) पर्यावर्णीय सूचनाओ के ज्ञान सकलन एव वितरण विधियाँ ।

(११) सामूहिक निर्देशन की विधियाँ ।

(आ) *व्यावहारिक काम* —

(१) मनोवैज्ञानिक सामूहिक परीक्षणो का उपयोग ।

(२) अमानकीकृत साधनो का निर्माण ।

(३) पर्यावर्णीय सूचनाओ का अध्ययन एव समीक्षा ।

(४) पर्यावर्णीय सूचनाओ के प्रदर्शन हेतु श्रव्य दृश्य सामग्री का निर्माण ।

(५) व्यावसायिक वार्ताओ की रूपरेखा का निर्माण ।

(६) व्यावसायिक सर्वेक्षण ।

(७) सामूहिक निर्देशन का अभ्यास ।

(इ) **प्रशिक्षण विधियाँ**— सैद्धान्तिक काम के लिए वार्ताओं चर्चाओ तथा श्रव्य दृश्य विधियो का प्रयोग किया जाना चाहिए । इस समस्त कार्यक्रम को तीन सोपानों म बाँटा जा सकता है ।

(अ) **प्रथम सोपान**— इस सोपान म प्रशिक्षार्थी को निर्देशन के सैद्धान्तिक पक्ष से पूर्णतया अवगत कराना चाहिए तथा व्यावहारिक पक्ष स सबधित ज्ञान प्रदान करना चाहिए । इसी सोपान म जिन विधियों साधनो अथवा उपकरणो की हम चर्चा कर उनका प्रत्यक्ष उपयोग भी करवाया जाना चाहिए ताकि प्रशिक्षार्थी में उनके सम्बन्ध का ज्ञान ही विकसित न हो किन्तु क्षमता भी विकसित हो । इस सोपान म लगभग तीन मास का समय लगाया जाना चाहिए ।

(आ) **द्वितीय सोपान** — प्रथम तीन मास के प्रशिक्षण के पश्चात् प्रशिक्षार्थी को किसी शाला म पूर्णकालिक निर्देशन का काय करने के लिये रखा जाना चाहिए एव उसस विशेषज्ञ के निर्देशन मे निर्देशन कार्यक्रम सचालित करने का अवसर दिया जाना चाहिये । इस अवधि मे प्रशिक्षार्थी को छात्रो की निर्देशन आवश्यकताओ के अध्ययन सामूहिक निर्देशन पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन सग ठन सचरण अमानकीकृत साधनो के प्रयोग व्यावसायिक वार्ताओ के आयोजन शिक्षक अभिभावक सम्मेलन आयोजन आदि महत्त्वपूर्ण निर्देशन प्रवृत्तियो का अनुभव प्राप्त होना चाहिये । इस महत्त्वपूर्ण सोपान के लिये लगभग दो या ढाई मास की अवधि रखी जा सकती है ।

(इ) तृतीय सोपान — उपयुक्त सोपान के पश्चात् प्रशिक्षार्थी पुनः एकत्रित होकर अपने अनुभवों की चर्चा कर सकते हैं तथा अपनी अपनी शालाओं के लिये एक न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बना सकते हैं। इस अन्तिम सोपान में प्रशिक्षार्थियों से कुछ क्षेत्र कार्य (Field work) करवाया जा सकता है जैसे व्यावसायिक सर्वेक्षण स्थानीय व्यावसायिक जगत का अध्ययन कुछ शिक्षक निर्मित साधनों का निर्माण आदि।

इसी सोपान के अन्त में प्रशिक्षार्थियों का मूल्यांकन भी हो जाना चाहिये।

(५) शाला उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

इस श्रेणी में वे निर्देशन कार्यकर्त्ता आते हैं जिनका एकमेव कार्य निर्देशन एवं उपबोधन है। अतः इन कार्यकर्त्ताओं का प्रशिक्षण अत्यन्त गहन एवं व्यावहारिक होना चाहिये। इन से हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि वे निर्देशन की हर सेवा को कुशलतापूर्वक सचालित कर सकें। इनसे वैयक्तिक उपबोधन की भी अपेक्षा की जा सकती है। इन सब अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए हमें इनके प्रशिक्षण के उद्देश्यों को प्रतिपादित करना चाहिये।

(अ) ज्ञानात्मक

- —निर्देशन के इतिहास विकासात्मक स्वरूप महत्त्व एवं सिद्धान्तों से प्रशिक्षार्थी को अवगत करना।
- —निर्देशन की प्रमुख सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी देना।
- —वैयक्तिक सूचनाओं के सकलन की मानवीकृत एवं अमानकीकृत विधियों से अवगत करना।
- —पर्यावरणीय सूचनाओं के स्रोतों सकलन एवं संचरण विधियों से अवगत करना।
- —उपबोधन की प्रक्रिया से अवगत करना।
- —व्यक्तित्व एवं समजन के मनोविज्ञान से अवगत करना।

(आ) क्रियात्मक

निर्देशन सेवाओं के सचालन का अनुभव प्रदान करना।

उपबोधन साक्षात्कार सचालित करने की क्षमता उत्पन्न करना।

मानकीकृत एवं अमानकीकृत साधनों का उपयोग कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

पर्यावरणीय सूचनाओं की समीक्षा कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

निर्देशन कोण निर्देशन प्रदर्शनियाँ निर्देशन दिवस अभिभावक दिवस आदि आयोजित कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

पर्यावरणीय सूचनाओं के सचरण हेतु श्रव्य-दृश्य सामग्री का निर्माण कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

व्यावसायिक वार्ताएं द सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

सामूहिक तथा वैयक्तिक निर्देशन विधियों को काम में ला सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

(ए) अवधि— इस विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि कम से कम एक वर्ष की होनी चाहिए तभी इतने विस्तृत सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति की हम अपेक्षा कर सकते हैं। एक वर्ष की अवधि में से लगभग आधा समय व्यावहारिक कार्य *(On the job training)* तथा प्रत्यक्ष व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए रखा जाना चाहिए।

(ग) अभिकरण—यह प्रशिक्षण राज्य निर्देशन ब्यूरो अथवा राष्ट्रीय अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद के निदेशन एवं उपबोधन विभाग द्वारा ही उत्तम रीति से किया जा सकता है। वैसे शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी एम० एड० स्तर पर निर्देशन एवं उपबोधन के विशेषज्ञता पाठ्यक्रमों का प्रावधान होता है। किन्तु इन पाठ्यक्रमों में एक तो पर्याप्त व्यावहारिक प्रशिक्षण नहीं मिल पाता और दूसरा इस विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है। अतः एक कुशल उपबोधक के प्रशिक्षण में जितनी गहराई आनी चाहिए वह नहीं आ पाती। फिर शिक्षक महाविद्यालयों के पास समुचित व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु आवश्यक साधन सुविधाएं भी नहीं होतीं। अतः प्रारम्भ में उल्लिखित राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय अभिकरण ही इस प्रशिक्षण को ठीक ढंग से संचालित कर सकते हैं।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु—इस पाठ्यक्रम की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक होना ही अन्तर्वस्तु पर्याप्त विस्तृत होनी चाहिए। उपबोधक को निर्देशन के दार्शनिक सिद्धान्तों एवं आधारों से तो पर्याप्त परिचित होना ही चाहिए साथ ही उसमें निर्देशन की विविध प्रवृत्तियों का सफल संचालन कर सकने की भी क्षमता होनी चाहिए। शाला उपबोधकों के लिए आयोजित विभिन्न प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के विश्लेषण के फलस्वरूप हम निम्नलिखित पाठ्यक्रम प्रस्तावित करना चाहेंगे।

(अ) सैद्धान्तिक

निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

निर्देशन का विकासात्मक स्वरूप एवं आधुनिक सम्प्रत्यय।

निर्देशन के दार्शनिक आर्थिक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार।

शिक्षा एवं निर्देशन।

मूलभूत निर्देशन सेवाएं एवं इनके संगठन के सिद्धान्त।

सामूहिक निर्देशन की विधियाँ।

वैयक्तिक उपबोधन एवं उपबोधन साक्षात्कार।

वैयक्तिक सूचना संकलन के साधन एवं प्रविधियाँ।

(अ) मानवीकृत (आ) अमानवीकृत।

मानकीकृत एवं अमानकीकृत साधनों के प्रयोग के सिद्धान्त।
पर्यावर्णीय सूचनाओं के स्रोत।
पर्यावर्णीय सूचनाओं के संकलन संगठन एवं संचरण के सिद्धान्त एवं विधियां।
भारतीय शालाओं के लिए न्यूनतम आवश्यक निर्देशन कार्यक्रम।

(आ) व्यावहारिक

सामूहिक निर्देशन का अनुभव।
वैयक्तिक उपबोधन तीन या अधिक बालकों को उपबोधन देना।
मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग का पर्याप्त अनुभव।
अ-मानकीकृत साधनों का निर्माण।
पर्यावर्णीय सूचनाओं की समीक्षा।
पर्यावर्णीय सूचनाओं के संचरण हेतु श्रव्य दृश्य सामग्री का निर्माण।
व्यावसायिक वार्त्ताओं का आयोजन।
निर्देशन दिवस निर्देशन प्रदर्शिनियों अभिभावक दिवस आदि प्रवृत्तियों का आयोजन।
व्यावसायिक सर्वेक्षण।
स्थानीय व्यावसायिक जगत का अध्ययन।
कुछ समय तक किसी शाला में उपबोधक के रूप में प्रत्यक्ष कार्य करने का अनुभव।

(इ) प्रशिक्षण विधियां—शाला उपबोधक के प्रशिक्षण को भी तीन सोपानों में बाँटा जा सकता है।

(अ) प्रथम सोपान—इसमें प्रशिक्षार्थियों को पर्याप्त सैद्धान्तिक जानकारी वार्ताओं चर्चाओं श्रव्य दृश्य सामग्री द्वारा साहित्य के अध्ययन के माध्यम से दी जानी चाहिए। इसी सोपान में यथास्थान व्यावहारिक कार्य भी करवाया जाना चाहिए। जैसे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की चर्चा के साथ प्रशिक्षार्थियों को उनके प्रयोग का व्यावहारिक अनुभव भी दिया जाना चाहिए।

(आ) द्वितीय सोपान—इस सोपान में प्रशिक्षार्थियों को कुछ शालाओं के साथ संयुक्त कर उपबोधक के रूप में कार्य करने का अनुभव प्रदान किया जाना चाहिए। तब मार्गदर्शन हेतु आवश्यक विशेषज्ञों का भी प्रावधान होना आवश्यक है। यह अनुभव एक सफल उपबोधक बनने के लिए आवश्यक है।

(इ) तृतीय सोपान—इस अन्तिम सोपान में प्रशिक्षार्थियों के अनुभव के आधार पर कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा की जा सकती है तथा उनकी कठिनाइयों के निराकरण पर चर्चा हो सकती है। इसी सोपान में प्रशिक्षार्थियों से व्यावसायिक सर्वेक्षण व्यावसायिक जगत का अध्ययन आदि कार्य भी करवाये जा सकते हैं। इस

सोपान के अन्त में प्रशिक्षार्थियों की क्षमताओं के मूल्यांकन का भी प्रावधान होना चाहिए।

उपसंहारात्मक कथन

निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इस कार्यक्रम का संचालन उपयुक्त प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किया जाए। निर्देशन कार्यक्रम के संचालन में अनेक व्यक्तियों द्वारा सहयोग लिया जाता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का प्रशिक्षण एक समान हो यह आवश्यक नहीं। इस अध्याय में इन्हीं विभिन्न स्तरीय निर्देशन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की चर्चा की गई है। प्रत्येक कार्यक्रम के उद्देश्य उसका स्वरूप एवं उसके संचालन की विधियों में अन्तर होना स्वाभाविक है। अतः इन विविध स्तरीय कार्यक्रमों की चर्चा निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत की गई है—उद्देश्य, अवधि, अभिकरण, पाठ्यक्रम की विषयवस्तु एवं प्रशिक्षण विधियाँ। इस अध्याय में चर्चित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय विभिन्न राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित पाठ्यक्रमों तथा शिक्षक महाविद्यालय में प्रचलित निर्देशन पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखा गया है।

९

भारत मे निदेशन अभिकरण

(अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण) (१) केन्द्रीय शैक्षिक एव व्यावसायिक ब्यूरो (२ डाइरेक्टरेट जनरल आफ रीसेटलमन्ट एण्ड एम्प्लायमन्ट (३) अभिकरण जिनसे फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप प्राप्त की जा सकती हैं। (४) प्रकाशन विभाग (भारत सरकार) (५) विभिन्न केन्द्रीय मत्रालय (६) अखिल भारतीय शैक्षिक एव व्यावसायिक निदेशन सघ

राज्य स्तरीय अभिकरण—(१) राज्य शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो (२) राज्य मनोवैज्ञानिक ब्यूरो (३) शिक्षक महाविद्यालय (४) विश्व विद्यालय (५) नियोजन कार्यालय (६) रेडियो प्रसारण

अन्य अभिकरण—(उपसहारात्मक कथन)

निर्देशन की विचारधारा को आगे बढ़ाने के लिए हमारे देश मे विभिन्न अभिकरण क्रियाशील हैं। अनेक सरकारी अभिकरण तो निर्देशन के क्षेत्र में कार्यरत हैं ही किन्तु कुछ गैर सरकारी अभिकरण भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे है। इस अध्याय में इन निर्देशन अभिकरणों के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी। निर्देशन अभिकरण निर्देशन के क्षेत्र में अनेक कार्य कर सकते हैं। इन कार्यों में प्रशिक्षण प्रकाशन अनुस्थापन परीक्षण निर्माण अनुसधान एव प्रत्यक्ष निर्देशन सम्मिलित है। आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अभिकरण इन सब कार्यों को हाथ में ले। हम इन अभिकरणों को चार स्तरों में बाँट सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण राज्य स्तरीय अभिकरण एव अन्य अभिकरण। अब हम इन अभिकरणों की चर्चा निम्नलिखित अनुच्छेदों में करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण

यद्यपि इस अध्याय का शीर्षक भारत में निर्देशन अभिकरण है फिर भी भारतीय निर्देशन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण किस प्रकार सहायक हो सकते हैं इसकी यहां चर्चा करना अनुपयुक्त नहीं होगा। U S E F I U N E S C O British Council U S I S आदि ऐसी संस्थाएं हैं जिनके सहयोग से भारतीय निर्देशन कार्यकर्ताओं को निर्देशन की नवीनतम विचार धाराओं एव कार्यपद्धतियों से अवगत करने हेतु कुछ कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत भारतीय निर्देशन कार्यकर्ताओं को विदेशों में

भेजकर प्रशिक्षित करने का प्रावधान रखा जा सकता है साथ ही विदेशी निर्देशन विशेषज्ञों को भारत में बुलाकर यहाँ के कार्यकर्ताओं को अनुस्थापित करने की योजना बनाई जा सकती है। इस प्रकार निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना कार्यान्वित करने से निर्देशन कार्यक्रम पुरानी विचारधाराओं पर चलने की आशंका कम हो सकती है।

प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान के अतिरिक्त भारत में अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों से हम निर्देशन सम्बन्धी सूचनाएं तथा अन्य दृश्य सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण

निर्देशन के क्षेत्र में प्रमुख राष्ट्रीय स्तर का अभिकरण केन्द्रीय शैक्षिक एवं निर्देशन ब्यूरो है। इस केन्द्रीय अभिकरण से राज्य स्तरीय अभिकरणों को निर्देशन एवं प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न मन्त्रालय भी प्रत्यक्ष अथवा *परोक्ष रूप से निर्देशन कार्यक्रम को सबल बनाने हेतु किसी न किसी रूप में सहायता* प्रदान कर सकते हैं।

निम्नलिखित अनुच्छेदों में इन अभिकरणों के कार्यों का संक्षिप्त परिचय *दिया जाएगा।*

(१) केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो—Central Bureau of Educational and Vocation Guidance (C. B. E. V. G.)

इस केन्द्रीय ब्यूरो की स्थापना १९५४ ई० में हुई थी और इसका प्रमुख कार्य है भारत में निर्देशन की विचारधारा को प्रक्रियात्मक रूप देकर इसके संचालन में सहायता प्रदान करना। प्रारम्भ में यह ब्यूरो सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट आफ एजूकेशन देहली की एक अंग के रूप में कार्य करता रहा फिर नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एजूकेशन (एन० सी० ई० आर० टी०) के एक स्वतन्त्र विभाग के रूप में इस संस्था ने कार्य किया और अब एन० सी० ई० आर० टी० के डिपार्टमेंट आफ एजूकेशनल साइकालोजी एण्ड फाउंडेशन आफ एजूकेशन के एक विभाग के रूप में यह ब्यूरो कार्य कर रहा है। इस ब्यूरो ने निर्देशन की विचारधारा को सफल बनाने हेतु अनेक प्रकार की गतिविधियों को हाथ में लिया है। इस ब्यूरो की लगभग सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण देन रही है।

(क) प्रकाशन—केन्द्रीय ब्यूरो के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं जिनमें गाइडेंस न्यूज नामक एक पत्रिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह त्रैमासिक पत्रिका निःशुल्क प्रकाशित की जाती है एवं प्रत्येक निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसमें निर्देशन सम्बन्धी उपयोगी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। इसी प्रकार इस ब्यूरो द्वारा प्रकाशित गाइडेंस रिव्यू भी एक उपयोगी त्रैमा*सिक प्रकाशन है। इसमें निर्देशन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण लेख* अनुसन्धान समीक्षाएं एवं समाचार प्रकाशित किए जाते हैं। इन त्रैमासिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त ब्यूरो

निर्देशन सम्बन्धी अन्य सूचनाएं भी प्रकाशित करता है जैसे You and your future Know your air force Know your Navy आदि। केन्द्रीय ब्यूरो ने भारत सरकार के फिल्म डिवीजन को कुछ फिल्म बनाने में भी सहयोग दिया है। इस अभिकरण से हम निर्देशन से सम्बन्धित अनेक फिल्म भी प्राप्त हो सकती हैं।

(ख) प्रशिक्षण—केन्द्रीय ब्यूरो का दूसरा प्रमुख प्रवृत्ति है निर्देशन कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण। ब्यूरा पूर्णकालिक उपबोधकों के लिए एक वर्षीय गाइडेन्स डिप्लोमा पाठक्रम संचालित करता है जिसमे एम एड की उपाधि प्राप्त किय हुए व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। इस एक वर्षीय कार्यक्रम के अतिरिक्त भी ब्यूरो ने सेवारत शिक्षकों के अनुस्थापन के लिय अनेक अल्पकालीन पाठ्यक्रमो का संचालन किया है।

(ग) अनुसंधान—केन्द्रीय ब्यूरो एक राष्ट्रीय संस्था होने के कारण भारत म निर्देशन का क्या स्वरूप हो इस कार्यक्रम के संचालन म आने वाली कठिनाइयों का कैसे हल निकाला जाय आदि विषयो पर अनुसंधान करने का भी उत्तरदायित्व इस संस्था पर आता है।

(2) डाइरेक्टरट जनरल आफ रीसटलमेंट एण्ड एम्प्लायमट (D G R & E)

डी जी आर एण्ड ई केन्द्रीय एव श्रम पुनर्वास एव नियोजन मन्त्रालय का एक अंग है। यह भी निर्देशन का महत्वपूर्ण अभिकरण है। डी जी आर एण्ड ई ने निर्देशन के क्षेत्र म महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्र म जितने नियोजन कार्यालय (Employment exchanges) हैं वे इसी विभाग के अन्तर्गत आते हैं। इन नियोजन कार्यालयो की स्थापना के समय इनका प्रमुख कार्य पाकिस्तान से आये हुए विस्थापितो को पुनर्वासित करना था। इन विस्थापितों के अतिरिक्त सेना से सेवानिवृत्त कार्मिको को असामान्य जीवन म पुनर्वासित करने का काय भी इन कार्यालयो ने किया। तत्पश्चात इन नियोजन कार्यालयो ने विभिन्न राज्य सरकारो की पिछड़े जाति तथा अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की भर्ती में सहायता प्रदान की। आज सब राज्यों के प्रत्येक जिले म एक नियोजन कार्यालय स्थापित किया गया है जिसका कार्य नौकरी चाहने वाले व्यक्तियों को नौकरी प्राप्त करने म सहायता प्रदान करना तथा नियोक्ताओं को उचित कर्मचारियों के चयन म सहायता प्रदान करना है। यह भी निर्देशन की एक महत्वपूर्ण सेवा है। इस प्रक्रिया म नियोजन कार्यालय यदि प्रार्थियों को व्यावसायिक उपबोधन भी दे सकें तो और उपादेय होगा।

डी जी आर एण्ड ई का निर्देशन के क्षेत्र म एक और महत्वपूर्ण योगदान इस विभाग के प्रकाशन हैं। इस विभाग ने लगभग ८५ भारतीय व्यवसायों के सम्बन्ध म सम्पन्न सूचना प्रदान करने वाले व्यवसाय सूचनापत्र (Career Pamphlets) प्रकाशित किए हैं। इन्हें सीधे इस विभाग से अथवा स्थानीय नियोजन

कार्यालया म प्राप्त किया जा सकता है। इस विभाग ने देश म जो प्रशिक्षण सुविधाए है उनकी सूचनाओ को एक हैण्डबुक आफ ट्रेनिंग फसिलिटीज नामक पुस्तिका म प्रकाशित किया है। इस विभाग न व्यावसायिक सर्वेक्षण भी प्रकाशित किए हैं जिनम व्यवसायो स सम्बन्धित अधिक विस्तृत सूचनाए सम्मिलित हैं। ये सवक्षण प्रतिवेदन प्रत्येक निर्देशन ब्यूरो तथा निर्देशन केन्द्रो के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

डी जी ई एण्ड टी ने निर्देशन के क्षेत्र म कई महत्वपूर्ण अनुसधान काय भी किए है जिनम राष्ट्रीय व्यवसायो का वर्गीकरण (National Classification of occupation) एक महत्वपूर्ण देन है।

डी जी ई एण्ड टी न नियोजन कार्यालयो के कायक्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने हेतु द्वितीय पचवर्षीय योजना म युवक नियोजन सेवाओ (Youth Employment Service) की स्थापना की। विभिन्न नियोजन कार्यालयो म व्यावसायिक निर्देशन केन्द्र स्थापित किए गए। इन केन्द्रो के प्रमुख काय निम्नलिखित हैं (i) युवको को सम्भावित व्यावसायिक सम्भावनाओ से अवगत करना (ii) व्यवसायो से सम्बन्धित उच्च शिक्षण की सम्भावनाओं स अवगत करना (iii) युवको को उचित व्यवसाय म प्रवेश प्राप्त करन म सहायता प्रदान करना तथा (iv) नियोजन एव प्रशिक्षण स सबधित विविध समस्याओ के हल म सहायता प्रदान करना। इन व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रो म व्यक्तिगत एव सामूहिक दोनो ही विधियो से युवको को उपबोधन सेवा प्रदान की जाती है।

डी जी ई एण्ड टी नि शन के क्षेत्र म प्रकाशन अनुसधान प्रत्यक्ष निर्देशन के अतिरिक्त प्रशिक्षण का भी काय किया गया है। इस विभाग ने कई निर्देशन कायकर्त्ताओ को प्रशिक्षण दिया है जो नियोजन कार्यालयो अथवा व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रो को सचालित कर रहे हैं।

( ) अभिकरण जिनसे फिल्मे तथा फिल्मस्टिप्स प्राप्त की जा सकती हैं

करियर मास्टर तथा शाला उपबोधको को पर्याप्त सूचनाओ को प्रसारित करने हेतु फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप्स का प्रयोग करना चाहिए। श्रव्य दृश्य सामग्री के उपयोग से सूचनाए प्रभावोत्पादक ढग से प्रस्तुत की जा सकती हैं। फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप्स केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय के फिल्म डिवीजन राज्य शिक्षा विभागो के श्रव्य-दृश्य विभागो केन्द्रीय शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो डिपाटमण्ट आफ टीचिंग ऐड्स (एन सी ई आर टी) आदि अभिकरणो स प्राप्त की जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त एल मारविन इ डिया ७९ गोथा स्ट्रीट फोर्ट बम्बई-१ आमा लिमिटेड दादाभाई नौरोजी रोड बम्बई १ तथा नेशनल एजूकेशनल एण्ड इनफारमेशन फिल्म लिमिटेड नेशनल हाउस अपोलो बन्दर बम्बई १ व्यापारिक सस्थाओं स निर्देशन सम्बन्धी फिल्म खरीदी जा सकती हैं। निर्देशन

स सम्बन्धित उपयोगी फिल्म तथा फिल्मस्टिप की सूची हैण्डबुक फार वरियर मास्टस (एन सी इ आर टी) नामक पुस्तिका म स प्राप्त की जा सकती है।

(४) प्रकाशन विभाग (भारत सरकार)

निर्देशन क लिए उपयोगी सूचना सामग्री प्रकाशन विभाग भारत सरकार ओल्ड सक्रेटिएट देहली-६ द्वारा भी प्रकाशित की जाती है। निर्देशन कार्यकर्ताओं को इस अभिकरण से भी सम्पक बनाए रखना चाहिये। इस विभाग क प्रकाशनो मे प्रमुख प्रकाशन निम्नलिखित हैं —

1 Government of India Scholarships for Students in India

2 Scholarships for Study Abroad

3 Directory of Institutions for Higher Education in India

उपयुक्त प्रकाशन को प्रत्यक निर्देशन कायकर्ताओं को अपनी शालाओं के लिये अवश्य मगवा लेने चाहिए।

(५) विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालय

छात्रो को व्यावसायिक एव शक्षिक सूचनाए प्रदान करने हेतु विभिन्न मत्रालयो स सम्पक स्थापित किया जा सकता है। शिक्षा मन्त्रालय प्रतिरक्षा मन्त्रालय रेल मन्त्रालय आदि इस दिशा म योगदान द सकते हैं। हमारे छात्रो के लिए इन क्षेत्रो में क्या शक्षिक अथवा व्यावसायिक सम्भावनाए हैं यह सूचनाए इन मन्त्रालयो स प्राप्त की जा सकती हैं।

(६) अखिल भारतीय शक्षिक एव व्यावसायिक निदशन सघ

(All India Educational and Vocational Guidance Association)

इस सस्था का भी निर्देशन की विचारधारा को आगे बढाने म योगदान रहा है। इस सघ क प्रमुख कायनिम्नलिखित हैं —

(क) समस्त भारत म हो रह निर्देशन कार्यों का समन्वय करना।

(ख) निर्देशन की गतिविधियो का स्तर निर्धारण करना।

(ग) निर्देशन की विचारधारा को लोकप्रिय बनाना।

(घ) निर्देशन क क्षेत्र म कायरत कायकर्त्ताओ को एकत्रित कर विचारो का आदान प्रदान करना तथा क्षेत्र म हो रहे अनुसन्धान एव अन्य कार्यों का प्रसारित करना।

यह सघ जरनल आफ वोकेशनल एण्ड एज्युकेशनल गाइडेंस नामक पत्रिका भी प्रकाशित करता रहा है जिसम निर्देशन सम्बन्धी उपयोगी अनुसधान सामग्री एव अन्य सूचनाए प्रकाशित होती हैं।

प्रत्येक निर्देशन कायकर्त्ता को इस अखिल भारतीय सघ का सदस्य बन व्यावसायिक गतिविधियो स अवगत रहने का प्रयास करना चाहिए।

राज्य स्तरीय अभिकरण

(१) राज्य शक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१६५२) ने बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की और इस सिफारिश को कई राज्यों में कार्यान्वित भी किया गया। बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना के फल स्वरूप शक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन की अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। निर्देशन की इस आवश्यकता को अनुभव करने के फलस्वरूप कई राज्यों ने अपने राज्य में निर्देशन कार्यक्रम के सफल सचालन हेतु राज्य निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए। अब लगभग सभी राज्यों में निर्देशन ब्यूरो पाए जाते हैं। राजस्थान शिक्षा विभाग ने भी सन् १६५८ में राज्य निर्देशन ब्यूरो की स्थापना की जिसका कि कार्यालय बीकानेर में स्थित है।

इन राज्य स्तरीय निर्देशन ब्यूरो के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं —

(क) निर्देशन कार्यकर्त्ताओं का प्रशिक्षण— राज्य निर्देशन ब्यूरो करियर मास्टर तथा शाला उपबोधकों के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अतिरिक्त अनुस्थापन कार्यक्रम सगोष्ठियाँ सम्मेलन आदि आयोजित करना भी इन ब्यूरो की सामान्य गतिविधियाँ हैं।

(ख) प्रकाशन— राज्य निर्देशन ब्यूरो निर्देशन सम्बन्धी विविध सूचनाओं का भी प्रकाशन समय समय पर करते हैं। राजस्थान ब्यूरो 'राजस्थान गाइडेन्स न्यूज लेटर' नामक पत्रिका भी प्रकाशित करता है जिसमें निर्देशन सम्बन्धी तथा राज्य में इस क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों का वर्णन उपबोधकों के लिए आवश्यक सूचनाएं आदि महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की जाती है। प्रत्येक शाला में इस पत्रिका को मगवाना चाहिए।

(ग) अनुसन्धान— निर्देशन के क्षेत्र में अनुसन्धान करना भी इस अभिकरण का एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। यहाँ पूर्णकालिक निर्देशन कार्मिक होते हैं जो अनेक क्षेत्रों में अनुसन्धान काय हाथ में ले सकते हैं।

(घ) साधनों का निर्माण— भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त मानकीकृत एव अमानीकृत साधनों का भी निर्माण कई राज्य ब्यूरोज ने किया है। संचित अभिलेख पत्र व्यावसायिक अभिरुचि सूचियाँ अभिभावक व्याव सायिक सम्पत्ति पत्र आदि ऐसे अमानकीकृत साधन हैं जो लगभग सभी ब्यूरोज द्वारा निर्मित किए गए हैं। कुछ ब्यूरोज ने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का भी निर्माण अथवा अनुकूलन किया है। जैसे उड़ीसा ब्यूरो ने एक शाब्दिक मानसिक परीक्षण का निर्माण किया है इसी प्रकार बिहार ब्यूरो ने वेक्सलर इन्टेलीजेन्स स्केल बल एड जस्टमेन्ट इन्वेन्टरी बेल की स्टडी हैबिट इनवेन्टरी आदि परीक्षणों के भारतीय अनुकूलनों का निर्माण किया है तथा कुछ नये परीक्षण भी बनाए हैं। इसी प्रकार

न्य न्यूरोज की भी इस क्षेत्र म महत्वपूर्ण दन रही है ।

(न) राज्य मे निर्देशन कायक्रमों का समन्वय तथा मागदशन—शालाओं म जो निर्देशन कायकर्ता काय करते हैं व मागदशन की अपेक्षा न्यूरो मे ही करते हैं। अत ब्यूरो अपना विभिन्न सेवाओं क माध्यम से इन कायकर्ताओं का मागदशन करता है। राजस्थान म व नगरो म एक पूर्णकालिक उपबोधक का प्रावधान किया गया है। इसे प्रशासनिक दृष्टि से तो ये उपबोधक जिस शाला म इनका कायालय होता है वहा के प्रधानाध्यापक के अधीन होते हैं किन्तु इन मागदशन देने का काय एव अन्य गतिविधियों के समन्वय का काय ब्यूरो द्वारा ही किया जाता है।

(च) प्रत्यक्ष निर्देशन—कई राज्य न्यूरो भी बालकों को प्रत्यक्ष शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन देने का भी काय संचालित करते हैं। राजस्थान राज्य ब्यूरो छात्रों को विषय चयन मे निर्देशन का काय करता है।

(२) राज्य मनोविज्ञान न्यूरो

कुछ राज्यों म मनोविज्ञान न्यूरो भी हैं जो कुछ सीमा तक निर्देशन काय मे सहायता प्रदान करते हैं। उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद मनोवैज्ञानिक न्यूरो का मानकीकृत परीक्षण निर्माण के क्षेत्र म महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी प्रकार इन ब्यूरोज द्वारा किए गए शोध कार्यों का भी लाभ निर्देशन कायकर्ता उठा सकते हैं।

(३) शिक्षक महाविद्यालय

शिक्षक महाविद्यालय भी अपने सेवा प्रसार विभागों के माध्यम से प्रशासन एव प्रशिक्षण का काय करते हैं जिनका भी लाभ निर्देशन कायकर्ताओं को मिल सकता है। इन महाविद्यालय के पुस्तकालयों मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं तथा अनुसधान विभागों का लाभ भी निर्देशन कायकर्ताओं को मिल सकता है।

(४) विश्वविद्यालय

जिन विश्वविद्यालयों म मनोविज्ञान विभाग हैं वहा से भी निर्देशन काय कर्ताओं को सहायता मिल सकती है। मानकीकृत साधनों अथवा इन विभागों द्वारा किये गए शोध कार्यों के रूप मे हम इनका लाभ उठा सकते हैं।

(५) नियोजन कार्यालय

स्थानीय नियोजन कार्यालयों से सहयोग प्राप्त कर शाला के निर्देशन काय क्रम को सबल बनाया जा सकता है। इन कार्यालयों म सूचना सामग्री श्रव्य दृश्य सामग्री आदि प्राप्त की जा सकती है तथा छात्रों को नौकरी प्राप्त करने म सहायता प्रदान करने म इन कार्यालयों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(६) रेडियो प्रसारण

आजकल रेडियो लगभग सभी ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच गए हैं अत रेडियो प्रसारणों का उपयोग व्यावसायिक वार्ताओं को तथा अन्य छात्रोपयोगी सूचनाओं

को प्रसारित करने के लिए किया जा सकता है। इससे ग्रामीण छात्रों को भी निदशन सेवाओं का कुछ लाभ मिल सकेगा। अभी इस अभिकरण के उपयोग की समस्त सम्भावनाओं को हमारे देश में नहीं खोजा गया है।

अन्य अभिकरण

उपरोक्त अनुच्छेदों में हमने जिन राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय अभिकरणों का उल्लेख किया उनमें से अधिकतर राजकीय अभिकरण हैं। किन्तु इन अभिकरणों के अतिरिक्त कुछ अराजकीय अभिकरण भी निर्देशन के क्षेत्र में क्रियाशील हैं और इनका योगदान भी इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। यदि देखा जाए तो भारत में निदशन सेवाओं का प्रारम्भ पारसी पंचायत नामक एक अराजकीय अभिकरण द्वारा ही किया गया था। अराजकीय अभिकरणों द्वारा मुख्यतः निर्देशन सूचना सामग्री के प्रकाशन का कार्य किया जाता है। कुछ अराजकीय अभिकरण प्रत्यक्ष व्यावसायिक निर्देशन का भी कार्य करते हैं। भारत में प्रमुख अराजकीय निर्देशन अभिकरणों में वाई एम सी ए (Y M C A) मेटरो कैरियर ऐसे अभिकरण हैं जिनके निर्देशन सम्बन्धी प्रकाशन महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त गुजरात रिसर्च सोसायटी बम्बई वोकेशनल एण्ड एज्यूकेशनल गाइडेंस सर्विस जलन्धर पंजाब ये एसे अराजकीय अभिकरण हैं जो निर्देशन एवं उपबोधन का कार्य भी करते हैं।

उपसंहारात्मक कथन

एक कुशल निर्देशन कार्यकर्ता को अपने देश में जो भी निर्देशन अभिकरण हों उनसे परिचित होना चाहिए तथा उनसे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। इन अभिकरणों से उसे अनेक प्रकार की सम्बन्धित सामग्री प्राप्त हो सकती है तथा अपने कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु आवश्यक मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सकता है। उपयुक्त अभिकरणों में से अनेक अभिकरणों से नि शुल्क सूचना सामग्री तथा अन्य आवश्यक सहायता प्राप्त कर कम व्यय में निर्देशन कार्यक्रम के स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है। आल इण्डिया एज्यूकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस एसोसियेशन का सदस्य बन कर निर्देशन कार्यकर्ता अपने विकास के लिए क्रियाशील रह सकते हैं। इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय से लेकर राज्य स्तरीय एवं अराजकीय अभिकरणों का यथासम्भव परिचय देने का प्रयास किया गया है।

१०

एक भारतीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के लिए न्यूनतम आवश्यक निदेशन कार्यक्रम की रूपरेखा

निर्देशन कार्यक्रम प्रारम्भ करने की कुछ पूर्वावश्यकताए

(१) प्रशासकों को निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता का आभास करवाना ( ) अनुस्थापन कार्यक्रम (क) शिक्षकों का अनुस्थापन (ख) छात्रों का अनुस्थापन (ग) *माता पिताओं का अनुस्थापन* (३) *छात्रों की निर्देशन आवश्यकताओं* का अध्ययन (४) उपलब्ध साधनों का सर्वेक्षण (५) निर्देशन समिति का निर्माण (६) निर्देशन कार्यकर्ताओं को निर्देशन के लिए पर्याप्त समय का प्रावधान (७) कक्ष की स्थापना का प्रावधान (८) निर्देशन कार्यक्रम के लिए कुछ न्यूनतम भौतिक सुविधाओं का प्रावधान (च) निर्देशन कक्ष (ख) सूचनाओं के संकलन एवं संचरण हेतु साधन।

भारतीय विद्यालयों के लिए आवश्यक निर्देशन सेवाएँ

(१) वैयक्तिक सूचना सेवा का भारतीय परिस्थितियों में विशेष स्वरूप (क) संचित अभिलेख पद्धति का उपयोग (ख) संचित अभिलेखों का अनुरक्षण (ग) अध्यापकों का वैयक्तिक सूचना सेवा के संगठन में योगदान (घ) अमानकीकृत साधनों के उपयोग पर बल (ङ) वैयक्तिक सूचना सेवा का उपयोग– (अ) शिक्षकों के लिए उपयोगिता (आ) छात्रों के लिए उपयोगिता (इ) माता पिताओं के लिए उपयोगिता।

(२) पर्यावरणीय सूचना का भारतीय परिस्थितियों में विशेष स्वरूप (क) पुस्तकाध्यक्ष का सहयोग (ख) पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन का आर्थिक पक्ष (अ) ऐसे सूचना स्रोतों का पता लगाना जहाँ से निःशुल्क अथवा कम व्यय में सूचनाएं प्राप्त हो सकें (आ) राज्य रोजगार ब्यूरो एवं अभिकरणों से सम्पर्क (ई) व्यावसायिक सूचना पत्रों का निर्माण (ग) प्रत्येक शाला के लिए उपयोगी न्यूनतम पर्यावरणीय सूचनाएं (घ) पर्यावरणीय सूचनाओं के संचरण के अवसर।

शाला निर्देशन कार्यकर्ता के उत्तरदायित्व

(१) सत्र के कार्यक्रम की योजना (२) निर्देशन उपसमितियों के काम का समन्वयन (३) प्रनस्थापन कार्य (४) व्यावसायिक-वार्ताओं व्यावसायिक सम्मेलनों एवं निर्देशन दिवसों का आयोजन (५) नए छात्रों का अनुस्थापन (६) अध्ययन आदतों के विषय में मार्गदर्शन (७) विषयों के चयन में सहायता (८) व्यवसायों के चयन में सहायता (९) छात्रों को महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने में सहायता (१०) औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों महाविद्यालयों आदि में भेंट का आयोजन (११) स्थापन कार्य (१२) अभिभावक शिक्षक संगमों का संचालन

उपसंहारात्मक कथन

विगत नौ अध्यायों में हमने निर्देशन कार्यक्रम के आयाम तथा विविध प्रवृत्तियों का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन अध्यायों में निर्देशन के क्षेत्र में विश्व में जो आधुनिकतम विचारधाराएं एवं प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं उनसे सम्बन्धित विषय चर्चा की गई है। निर्देशन की प्रत्येक सम्भावित सेवाओं से पाठकों को अवगत कराने का आशय यह रहा है कि यदि किसी शाला में सुविधाएं हों और वहाँ के कार्यकर्ताओं की इस कार्यक्रम में निष्ठा हो तो वे इन सेवाओं को विधिवत वैज्ञानिक ढंग से आयोजित एवं संचालित कर सकें। जब हमने इन सेवाओं का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया तब हमारे सम्मुख सामान्य भारतीय शालाओं की सीमितताएं स्पष्ट न हों ऐसी बात नहीं। हमारा उद्देश्य सर्वप्रथम पाठकों को निर्देशन कार्यक्रम के एक आदर्श स्वरूप से अवगत कराना था ताकि उनके मन में निर्देशन का एक सही चित्र बन सके। इसके पश्चात् हम भारतीय परिस्थितियों में क्या हो सकता है इसकी भी चर्चा प्रस्तुत अध्याय में करेंगे। इस सम्पूर्ण अध्याय में इसी विषय की चर्चा की जाएगी। एक सामान्य भारतीय विद्यालय को सामने रखकर उसमें कौन-सी न्यूनतम एवं आवश्यक निर्देशन प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ की जा सकती हैं इसकी एक रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जाएगी। रूपरेखा प्रस्तुत करते समय हमारे विद्यालयों में साधन सुविधाओं की सीमितताओं को भी विशेषकर ध्यान में रखा गया है। यही कारण है कि इसे बहुत अधिक महत्वाकांक्षी न बनाते हुए भी यह ध्यान रखा गया है कि निर्देशन कार्यक्रम की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ठीक से चल सकें। जहाँ भी सम्भव हो शालाओं में सामान्यतया उपलब्ध सेवाओं-सुविधाओं का निर्देशन कार्यक्रम में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है इस प्रश्न पर चिन्तन किया गया है। ताकि निर्देशन कार्यक्रम का शाला पर कम से कम अतिरिक्त आर्थिक भार हो। जो सुझाव दिए गए हैं वे इस प्रकार के हैं कि निर्देशन कार्यक्रम शाला की प्रमुख धारा के साथ समरूप हो सके। इस कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय हमारे विद्यालयों के छात्रों की क्या विशेष आवश्यकताएं हो सकती हैं इसका विशेष ध्यान रखा गया है। इस रूपरेखा को प्रस्तुत करने से पूर्व यह कह देना आवश्यक होगा कि यह रूपरेखा कोई जड़ रूपरेखा

नही है । यह तो एक प्रस्तावित लचाली रूपरेखा है जिसम स्थानीय परिस्थितिया सुविधाओ एव आवश्यकताओ को ध्यान म रखते हुए आवश्यक परिवतन किए जा सकत है और किए जान चाहिए ।

निर्देशन कायक्रम प्रारम्भ करने को कुछ पूर्वावश्यक्ताए

भारतीय शालाओ क लिए एक निर्देशन कायक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करन से पूव इस कायक्रम की सफलता की कुछ पूर्वावश्यक्ताए हैं उनकी हम सवप्रथम चर्चा करना चाहेंग । इन पूर्वावश्यक्ताओ को ध्यान म रखकर एव इनकी पूर्ति होन पर ही निर्देशन कायक्रम शाला म प्रारम्भ करना चाहिए ।

(१) प्रशासको को निर्देशन कायक्रम की आवश्यकता का आभास करवाना

अच्छी से अच्छी शक्षिक योजना भी असफल हो सकती है यदि शाला प्रशासका की उसम आस्था न हो और व यदि उस महत्त्वपूर्ण न समझ । यह सिद्धात निर्देशन कायक्रम के लिए भी लागू होता है । जबतक शाला प्रशासक निर्देशन काय क्रम को आवश्यक एव महत्त्वपूर्ण न समझग और जबतक उनकी इस कायक्रम म पूर्ण आस्था न होगी तबतक इस कायक्रम की सफलता अनिश्चित ही रहेगी । यदि प्रधानाध्यापक ने आस्था न होते हुए केवल दिखावे के लिए इस कायक्रम को प्रारम्भ करना स्वीकार कर भी लिया तो न तो इस कायक्रम को शाला जीवन मे कोई मह त्वपूर्ण स्थान मिल पाएगा न ही इसके सफल सचालन हेतु आवश्यक साधन सुविधाए भी प्राप्त हो पावेंगी । जिस योजना को शाला प्रमुख का आशीर्वाद प्राप्त नही है उस योजना क सचालन म शाला के अन्य कार्मिको का भी सहयोग मिलना कठिन है जिसकी कि निर्देशन सवाओ जसे कायक्रम की सफलता हेतु अत्यन्त आवश्यकता रहती है । शाला प्रशासको क मन म अनेक शकाए उत्पन्न हो सकती है जसे शाला क सीमित आर्थिक एव अन्य साधनो म यह नया कायक्रम प्रारम्भ करना कहा तक वाछनीय है ? शाला के पहले ही व्यस्त जीवन म इस नयी प्रवत्ति का जोड़ना कहा तक उपादेय हो सकता है ? इस प्रकार की शकाओ का समाधान करते हुए निर्देशन कायक्रम की आवश्यकता से शाला प्रमुख को अवगत कराना आवश्यक है ।

(२) अनुस्थापन कायक्रम

निर्देशन कायक्रम को सफल बनाने हेतु इसके सचालन म सहायक व्यक्तियो अर्थात शिक्षक। पुस्तकाध्यक्ष आदि कायकर्ताओ छात्रो एव अभिभावको का समुचित अनुस्थापन आवश्यक है । निर्देशन हमारे विद्यालयो छात्रो एव अभिभावको के लिए एक नई सेवा है अत इसका लाभ छात्रो को तभी मिल सकता है जब सभी सम्बन्धित व्यक्ति इस कायक्रम के उद्देश्य एव प्रवत्तियो से पूर्णरूपेण परिचित हो ।

(क) शिक्षकों का अनुस्थापन—शाला म जब भी कोई नया कायक्रम प्रारम्भ किया जाय तो उसकी सफलता के लिए शिक्षको का समुचित अनुस्थापन

आवश्यक है। शिक्षकों को इस कार्यक्रम की दार्शनिक पृष्ठभूमि उद्देश्य महत्त्व एवं इससे सम्बन्धित अर्थों से पूर्णतया अवगत करा देना चाहिए। इस कार्यक्रम को शिक्षण कार्यक्रम का अधिक सबल बनाने में किस प्रकार सहायता मिल सकती है यह बात शिक्षकों को स्पष्ट करने से उनकी सम्पन्नता एवं सहयोग प्राप्त करने में सुविधा हो सकती है। शिक्षकों के अनुस्थापन में हमें निर्देशन कार्यक्रम में शिक्षकों का सामान्य उत्तरदायित्व क्या होगा यह स्पष्ट करना चाहिए। साथ ही प्रधानाध्यापक के माध्यम से किन किन शिक्षकों को कौन कौन सी विशिष्ट जिम्मेदारी देना होगी यह भी इस अनुस्थापन कार्यक्रम के दौरान स्पष्ट करना चाहिए।

(ख) छात्रों का अनुस्थापन—निर्देशन कार्यक्रम मनोवैज्ञानिक छात्रों को अपनी शैक्षिक व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं का हल करने में सहायता करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया जाता है। अतः छात्रों को इस कार्यक्रम से सम्बन्धित समुचित जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत छात्रों के लिए कौन कौन-सी सेवाएं प्रदान की जा रही हैं तथा इन सेवाओं का समुचित लाभ उठाने हेतु छात्रों से क्या अपेक्षाएं हैं यह इस अनुस्थापन कार्यक्रम में छात्रों को समझाना आवश्यक है। निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिए हमारे छात्रों की कुछ रूढ़िगत एवं परम्परागत मान्यताओं को बदलने की आवश्यकता होगी। सामान्यतया यह देखा जाता है कि हमारे बालक अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में मुक्त रूप से बात करने में संकोच का अनुभव करते हैं। कदाचित अपनी सीमाओं समस्याओं के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों से विचार विमर्श करने में संकोच करना हमारी संस्कृति में ही निहित है। इस सांस्कृतिक शीलगुण को जबतक हम परिवर्तित करने में सफल नहीं होंगे तबतक शायद छात्र निर्देशन सेवाओं का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकेंगे। दूसरी सांस्कृतिक विशेषता जो हमारे बालकों में पाई जाती है वह है आत्म निर्णय लेने की कमी। सामान्यतया हमारे बालक अधिकतर निर्णय लेने में अपने माता पिताओं पर निर्भर रहते हैं। या यों कहें कि अधिकतम परिस्थितियों में माता पिता बालकों के सम्बन्ध में निर्णय ले लेते हैं। बालक कौन-से विषय लेगा या कौन-सा व्यवसाय चुनेगा यह माता पिताओं की इच्छाओं पर निर्भर करता है। किसी तरह अनुस्थापन कार्यक्रम में हम बालकों को आत्मनिर्भर बनाने एवं आत्मनिर्णय लेने की ओर प्रवृत्त कर सकें तो शायद निर्देशन कार्यक्रम अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकेगा।

तीसरी विशेषता हमारे बालकों में जो पाई जाती है वह है विशेषज्ञों से अथवा विशेषज्ञ अभिकरणों से सूचनाएं प्राप्त करने की ओर उदासीनता। उदाहरण के रूप में यदि किसी छात्र को किसी इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश प्राप्त करने से सम्बन्धित सूचनाएं चाहिए हों तो वह कई मित्रों एवं सम्बन्धियों से इस सम्बन्ध में पूछता फिरेगा बजाय इसके कि वह सम्बन्धित कालेज से लिखकर सूचनाएं मंगाए। निर्देशन सेवाओं में पर्यावरणीय सूचना सेवा एक महत्त्वपूर्ण सेवा है अतः छात्रों को

इन सूचनाओं का लाभ उठाने के लिए प्रवृत्त करना चाहिए।

(ग) माता पिताओं का अनुस्थापन—जसाकि उपरोक्त अनुच्छेद म कहा गया है कि हमारे यहा अधिकतर माता पिता अपने बच्चो से सम्बन्धित निर्णय स्वत ले लेते हैं और उन निर्णयो को बच्चो पर थोप देते है। कभी कभी बच्चो पर माता पिता की ऐसी इच्छाए आकाक्षाए थोप दी जाती हैं कि जिनका उनकी क्षमताओ अभिरुचियो एव अभि क्षमताओ स कोई तालमेल नही बठता। फलत छात्रो को अनेक बार भग्नाशाओ का मुह देखना पडता है। अत यह आवश्यक है कि छात्रो के अभिभावको को अनुस्थापन म यह समझाया जाय कि हमारी इच्छाए बालको पर थोपने की बजाय यदि हम बालक को उसकी क्षमताओ अभिरुचियो एव अभिक्षमताओ के आधार पर निर्णय लेने म सहायता दें तो शायद यह उनके विकास की दृष्टि स अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। माता पिताओ को इस सन्दभ म निर्देशन सेवाओ का क्या योगदान हो सकता है यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए। फिर शाला म निर्देशन कायक्रम के अन्तगत छात्र की सहायता हेतु कौन कौन सी सेवाए प्रारम्भ की जा रही है इससे भी माता पिताओ को अवगत कराना आवश्यक होगा।

(३) छात्रो की निर्देशन आवश्यकताओ का अध्ययन

भारतीय शालाओ मे निर्देशन कायक्रम अभी भी एक नई प्रवृत्ति है अत प्रारम्भिक अवस्था म हम इस कायक्रम को एक छोटे पमाने पर प्रारम्भ करके इसकी उपयोगिता को सिद्ध करने का प्रयास करना चाहिए। इस कायक्रम म हम कौन सी गतिविधियो को प्रधानता दें यह हमे सवप्रथम निश्चित करना होगा। इन प्राथमिकताओ को निर्धारित करने म छात्रो की आवश्यकताओ को प्रधानता देनी चाहिए। कोई भी कायक्रम तभी सफल हो सकता है जब वह छात्रो की मूलभूत अनुभूत आवश्यकताओ की पूर्ति करता हो। यदि एक विद्यालय मे केवल वाणिज्य एव कला सकाय है तो उसम साइन्स टेलेन्ट सच स्कीम (Science Talent Search Scheme) इजीनियरिंग कालेज तथा मेडिकल कालेजो सम्बन्धी सूचनाए एकत्रित करने म धन राशि व्यय करना निरर्थक होगा। निर्देशन कायक्रम की हर सेवा की योजना बनाते समय छात्रो की आवश्यकताओ का ज्ञान उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अत इन आवश्यकताओ के अध्ययन को एक महत्त्वपूर्ण पूर्वावश्यकता माना गया है।

(४) उपलब्ध साधनो का सर्वेक्षण

हमारी शालाओ के लिए निर्देशन कायक्रम की रूपरेखा बनाते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इसे कम से कम खर्चीला किस प्रकार बनाया जाए। यदि हम अपनी भौतिक साधन सुविधाओ की सूची बहुत लम्बी बना दें तो सम्भवत इसके आर्थिक बोझ के कारण हमारे कायक्रम को स्वीकृति मिलने म कठिनाई होगी अत निर्देशन कायकर्ता को इस दिशा म अपनी सूझबूझ का प्रयोग करना चाहिए कि किस तरह स उपलब्ध साधन-सुविधाओ का अधिक से अधिक

उपयोग पर रम न बम अतिरिक्त सुविधाओं की माँग करते हुए निर्देशन कार्यक्रम को प्रारम्भ किया जाए। पुस्तकालय का उपयोग सूचना सेवा के लिए कम किया जा सकता है शाला म उपलब्ध किसी कमरे का ही निर्देशन कक्ष का रूप कम दिया जाता है इन बातों की ओर हमारा सतत ध्यान रहना चाहिए।

जब म शाला म उपलब्ध साधनों के आधार पर निर्देशन सेवाओं के सृजन की बात करते हैं तो हमारा आशय केवल भौतिक साधनों से ही नहीं है। हमें यह भी देखना चाहिए कि शाला की किन किन प्रवृत्तियों का निर्देशन कार्यक्रम में शामिल किया जा सकता है। जैसाकि पहले के अध्यायों म कहा जा चुका है कि शाला की सक्रिय अभिनव पद्धति दल पद्धति अनिवार्य समाज सेवा आदि को निर्देशन कार्यक्रम के साथ समन्वित किया जा सकता है। शिक्षक के तात्कालिक कार्यभार में कम से कम उत्तरदायित्व जोड़ते हुए तथा उसके तात्कालिक कार्यों का ही लाभ उठाते हुए यदि हम निर्देशन कार्यक्रम की योजना बनाएँगे तो उसमें अधिक सफलता मिलने की सम्भावना होगी।

अधिकतर शालाओं म हम अंशकालिक निर्देशन कार्यकर्त्ता की ही सेवाएं प्राप्त हो सकती हैं। प्रत्येक शाला के पूर्णकालिक शाला उपबोधक की न तो कल्पना की जा सकती है न ही इसकी स्वीकृति मिलना सम्भव है। अत शाला के अन्य शिक्षकों की सहायता किस प्रकार निर्देशन कार्यक्रम म ली जा सकती है इसके सम्बन्ध म भी चिन्तन करना आवश्यक है। हम इस सीमा को ध्यान म रखते यदि निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बनावेंगे तो हम निराशा का सामना नहीं करना पड़ेगा।

(५) निर्देशन समिति का निर्माण

जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन एव सफल संचालन के लिए एक निर्देशन समिति का गठन आवश्यक है। इस समिति की अध्यक्षता प्रधानाध्यापक को करनी चाहिए। इस समिति म निर्देशन कार्यकर्ता पुस्तकाध्यक्ष तथा ऐसे अन्य अध्यापकों को रखना चाहिए जिनकी इस कार्य म रुचि हो। निर्देशन समिति शाला की आवश्यकताओं साधन-सुविधाओं आदि को ध्यान म रखते हुए निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बना सकती है। निर्देशन समिति के प्रमुख उत्तरदायित्व निम्न हो सकते हैं—

शाला की निर्देशन आवश्यकताओं का अध्ययन।

शाला म उपलब्ध साधन-सुविधाओं का अध्ययन एव उनका निर्देशन कार्यक्रम म कस और कहाँ पर उपयोग किया जा सकता है इसकी आयोजना।

उपर्युक्त दो बिन्दुओं को ध्यान म रखते हुए निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा का निर्माण।

निर्देशन कायक्रम म अध्यापकों के उत्तरदायित्वों का निर्धारण।
निर्देशन कायक्रम से सम्बन्धित नीति निर्धारण।
निर्देशन तथा अन्य शाला कायक्रमों म समन्वयन स्थापन।
निर्देशन कायक्रम का अनुगमन (Follow up)

निर्देशन समिति निर्देशन कायक्रम के सफल सचालन के लिए कुछ उप समितियों का निर्माण कर सकती हैं जिनको कि निर्देशन कायक्रम के विभिन्न पक्षों का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। उदाहरणार्थ एक उपसमिति को वयक्तिक सूचना सेवा का काय सौंपा जा सकता है। दूसरी उपसमिति को व्यावसायिक सूचना सेवा का काय सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार आवश्यकतानुसार अन्य उपसमितियों का भी गठन किया जा सकता है। प्रत्येक उपसमिति का भी एक सयोजक होना चाहिए। समय समय पर निर्देशन समिति मिलकर इन उपसमितियों द्वारा किए गए कार्यों का सिंहावलोकन कर सकती है।

(६) निर्देशन कायकर्त्ता को निर्देशन काय के लिए पर्याप्त समय का प्रावधान

यद्यपि हमारे अधिकतर विद्यालयों म अंशकालिक निर्देशन कायकर्त्ता की ही कल्पना की जा सकती है फिर भी निर्देशन काय की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि जिस किसी भी अध्यापक को यह काय सौंपा जाय उसे अन्य कार्यों से यथा सम्भव मुक्त रखा जाय ताकि वह निर्देशन कायक्रम का सचालन प्रभावोत्पादक ढग से कर सके। अन्य शिक्षकों की अपेक्षा उसे अध्यापन काय भी कम मिलना चाहिए। उसे कितना अध्यापन काय दिया जाय यह तो विद्यालय विशेष की परिस्थितियों पर निभर करेगा इससे सम्बन्धित कोई सामान्य नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। जिस शाला म पर्याप्त अध्यापक हैं वहा निर्देशन कायकर्त्ता को अध्यापन काय से अधिक मुक्त रखा जा सकता है। जहा अध्यापकों की कमी है वहा निर्देशन कायकर्त्ता को उतनी सुविधाए नहीं दी जा सकती। हम यहा तो केवल इस सामान्य सिद्धान्त की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि जिस सीमा तक निर्देशन कायकर्त्ता को निर्देशन कायक्रम के लिए समय दिया जायगा उस सीमा तक निर्देशन कायक्रम की सफलता निभर करेगी।

निर्देशन कायकर्त्ता के काय को प्रभावशाली बनाने के लिए हम एक ओर खतरे से सावधान रहना चाहिए। सामान्यतया विद्यालयों मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जिस अध्यापक के अध्यापन कालाश कम होते हैं उसे या तो किसी अन्य क्लर्कीय काय सौंप दिया जाता है अथवा किसी अनुपस्थित शिक्षक के कालाशों म कक्षाओं म भेज दिया जाता है। यदि निर्देशन कायकर्त्ता को भी हमने इसी प्रवृत्ति का शिकार बना दिया तो शाला म निर्देशन कायक्रम सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। निर्देशन कायकर्ता को अन्य कार्यों से मुक्त रखने का आशय ही यह है कि वह अपने

कार्य का संचालन सफलतापूर्वक कर सके। वास्तव में देखें तो उसका कार्यभार अन्य शिक्षकों के समकक्ष ही नहीं उनसे अधिक है।

(७) क्लर्कीय सहायता का प्रावधान

किसी भी योजना के सफल संचालन हेतु न्यूनतम क्लर्कीय सहायता की आवश्यकता होती है। यदि विशेषज्ञ को क्लर्कीय कार्यों में समय देना पड़े तो यह उनकी क्षमताओं का दुरुपयोग है। यह सिद्धान्त निर्देशन कार्य के लिए भी लागू होता है। यदि निर्देशन कार्यकर्ता को अनेक क्लर्कीय कार्यों में अपना समय एवं शक्ति लगानी पड़े तो उस सीमा तक वह अपनी सेवाएं निर्देशन कार्य को नहीं दे सकेगा। अतः इस कार्यक्रम की सफलता के लिए कुछ न्यूनतम क्लर्कीय सहायता की आवश्यकता होगी जिसका कि यथासम्भव प्रावधान होना चाहिए। उदाहरणार्थ संचित अभिलेख फाइल फोल्डर्स बनाना, उन पर छात्रों के नाम आदि लिखना उन्हें सुव्यवस्थित ढंग से रखने की व्यवस्था करना, निर्देशन कार्यक्रम से सम्बन्धित पत्र व्यवहार का अभिलेख रखना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिनके लिए यदि उचित *क्लर्कीय सहायता मिल सके तो निर्देशन कार्यकर्ता के समय एवं शक्ति की बचत* हो सकती है जिसे वह अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में लगा सकता है। इस बिन्दु का विशेषकर यहां उल्लेख करने की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई है क्योंकि हमारे विद्यालयों *में क्लर्कीय कार्य अध्यापकों पर थोपने की एक सामान्य प्रवृत्ति* पाई जाती है।

(८) निर्देशन कार्यक्रम के लिए कुछ न्यूनतम भौतिक सुविधाओं का प्रावधान

हमने इस बात पर कई बार आग्रह रखा है कि निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में शाला में उपलब्ध साधन सुविधाओं का अधिक से अधिक उपयोग करने का प्रयास करना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि इस कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु कुछ भी *अतिरिक्त साधनों की आवश्यकता नहीं होगी। ऐसी प्रवृत्ति प्रारम्भ* करने हेतु कुछ न्यूनतम साधन-सुविधाओं को उपलब्ध करना तो स्वाभाविक ही है। अब हमें देखना यह चाहिए कि न्यूनतम अतिरिक्त साधन सुविधाओं की कम से कम मांग करते हुए हम निर्देशन कार्यक्रम का संचालन कैसे कर सकते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम के लिए कुछ आवश्यक भौतिक साधन सुविधाओं की सूची यहां प्रस्तुत की जा रही है इसमें विद्यालय विशेष की परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन किया जा सकता है।

(क) निर्देशन कक्ष—*निर्देशन कार्यक्रम का केन्द्र हो निर्देशन* कक्ष है। निर्देशन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने हेतु एक निर्देशन कक्ष का प्रावधान आवश्यक है। छात्रों *को ज्ञात होना चाहिए* कि इस कक्ष में आकर हम अपनी समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्राप्त कर सकते हैं। निर्देशन कक्ष के लिए

एक टेबल एक उपबोधक के लिए कुर्सी अतिथिया के लिए कुछ कुसिया सामान्य लेखन सामग्री दो अलमारियाँ एक सूचनापट्ट एक छात्रा के सुझावो एव समस्याओ के लिय पटी तथा एक उपास्याा वृत्त पेटी आदि कुछ अनिवाय भौतिक सुविधाए हैं। इनके अतिरिक्त कक्ष के वातावरण का सुदर बनाने हेतु जो भी कुछ किया जाय सराहनीय होगा।

(ख) सूचनाओं के सकलन एव सचरण हेतु साधन—पुस्तकालय म निर्देशन काय के निर्माण हेतु कुछ अलमारिया डिस्प्ले रेक बुलटीन बोड आदि का प्रावधान अनिवाय है। डिस्प्ले रेक एव बुलेटीन बाड सूचनाओ के सचरण को प्रभावोत्पादक बनाने हेतु आवश्यक है।

भारतीय विद्यालयो के लिए आवश्यक निर्देशन सेवाए

जसाकि हम पहल भी कई बार कह चुके हैं हमारे विद्यालयो मे निर्देशन कायक्रम एक नई प्रवति है तथा अधिकतर विद्यालयो मे साधन सुविधाए भी सीमित हैं अत प्रारम्भ मे *एक व्यापक निर्देशन कायक्रम की कल्पना करना निर थक होगा।* हमारे लिए तो वाछनीय यह होगा कि हम छोटे पमाने पर इस काय क्रम को प्रारम्भ करें और जो भी थोडा बहुत काय हम कर सकते है उसे अधिक *प्रभावोत्पादक ढग से करने का प्रयास करें। बहुत अधिक करने के उत्साह म हो* सकता है कि हम कुछ भी उपलब्ध न हो। निर्देशन की सब सेवाए इन सीमित साधना म न तो सम्भव है न अनिवाय भी। प्रारम्भ म तो हम दो प्रमुख निर्देशन सेवाओ को प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय म प्रारम्भ कर सकते हैं और ये दो सेवाए हैं (१) वयक्तिक सूचना सेवा एव (२) पर्यावर्णीय सूचना सेवा। इसका अथ यह नही कि जिन विद्यालयो मे सम्भव हो सके उनम अन्य सेवाए प्रारम्भ नही करनी चाहिए। उपरोक्त दो सेवाए तो प्रत्येक विद्यालय म प्रारम्भ की जा सकती हैं। *ध्यान रहे कि यहा हम न्यूनतम आवश्यक निर्देशन की चर्चा कर रहे हैं।* निर्देशन की समुचित सेवाओं का वणन तो हम पहले ही अध्याय चार म कर चुके हैं।

(१) वयक्तिक सूचना सेवा का भारतीय परिस्थितिया म विशेष स्वरूप

वसे तो *अध्याय ४ मे प्रत्येक निर्देशन सेवा के सगठन सम्बन्धी आधार* भूत सिद्धाता की विस्तृत चर्चा की गई है। वे सब सिद्धात तो भारतीय विद्यालया म प्रारम्भ की जाने वाली निर्देशन सेवाओ के सगठन के समय ध्यान म रखने ही चाहिए। किन्तु भारतीय परिस्थितिया को ध्यान में रखते हुए इन सेवाओ के सग ठन एव सचालन के समय जो बिन्दु विशेषकर ध्यान म रखने योग्य हैं उनकी यहा चर्चा करना आवश्यक होगा। उपयुक्त अनुच्छेदो म पूर्वावश्यकताओ के रूप म कुछ सामान्य सिद्धातो की तो चर्चा की गई है किन्तु प्रत्येक सेवा से सम्बन्धित कुछ और विशिष्ट निर्देशक तत्त्व होसकते हैं उनकी यहा चर्चा करना कदाचित अनुप युक्त नही होगा। प्रथम हम वयक्तिक सूचना सेवा के सगठन सचालन

में समय जो बिन्दु ध्यान म रखने योग्य हैं उनकी चर्चा करेंगे तत्पश्चात् पर्यावर्णीय सूचना सेवा स सम्बन्धित बिन्दुओं का उल्लेख करेंगे।

(क) सचित अभिलेख पद्धति का उपयोग—जसाकि पहले हम उल्लेख कर चुके हैं निर्देशन सेवाओं का निर्माण शाला म उपलब्ध साधना सेवाओं के आधार पर होना चाहिए। इसस धन शक्ति एव समय की बचत हो जाती है। साथ ही निर्देशन कार्यक्रम को शाला समुदाय द्वारा स्वीकृति मिलने म सरलता हो सकती है। सचित अभिलेख पद्धति (Cumulative Record System) आजकल प्रत्येक प्रगतिगामी शाला म अपनाई जाति है। बालकों क व्यक्तित्व क विविध आयामों स सम्बन्धित सूचनाए एकत्रित करने की कोई न कोई विधि लगभग सभी शालाओं में पाई जाती है। इसी को आधार बनाकर हम वयक्तिक सचना सवा का निर्माण करना चाहिए। शाला म प्रचलित सचित अभिलेख प्रपत्र म आवश्यकतानुसार सुधार आवश्यक किया जा सकता है।

(ख) सचित अभिलेखों की अनुरक्षण—सचित अभिलेखों के अनुरक्षण क लिए किसी एक शिक्षक को इसका उत्तरदायित्व सौंपना आवश्यक होगा। निर्देशन समिति द्वारा निर्मित वयक्तिक सचना उपसमिति के किसी सदस्य को यह काय दिया जा सकता है। इस शिक्षक को देखना चाहिए कि सम्बन्धित शिक्षक उनम सम्बन्धित बालकों के सचित अभिलेख समय पर पूरे करते हैं या नहीं। यदि किसी बालक का सचित अभिलेख पूरा न हो तो सम्बन्धित अध्यापक स मिलकर उस पूरा करवाना भी इसी सयोजक का उत्तरदायित्व होगा। जब विभिन्न शिक्षक इन सचित अभिलेखों को कई बार काम म लेंगे तो उनकी सुरक्षा की ओर विशेष रूप स ध्यान देना आवश्यक होगा। इन अभिलेखों को सस्ती किन्तु मजबूत फाइलों म रखा जा सकता है ताकि ये उपयोग स फटे न हो तथा सुरक्षित रहें। इन सब फाइल फोल्डर्स को किसी एक निर्धारित सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।

(ग) अध्यापकों का वयक्तिक सूचना सेवा के सगठन में योगदान—भारतीय शालाओं में कक्षाध्यापक पद्धति अथवा दल पद्धति पाई जाती है जिसके अन्तर्गत एक अध्यापक एक कक्षा अथवा एक दल का प्रमुख होता है। इस पद्धति को और अधिक विकसित कर इसका उपयोग निर्देशन कार्यक्रम हेतु किया जा सकता है। प्रत्येक कक्षा अध्यापक अथवा दलपति को उसकी देख रेख म जो बालक हैं उनका वयक्तिक अध्ययन करने को कहा जा सकता है और उसी शिक्षक को उसकी कक्षा अथवा दल के छात्रों के सचित अभिलेख को पूरा करने का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। कक्षा अध्यापक अथवा दलपतियों का कुछ छात्रों से अधिक निकट का सम्बन्ध होता है अत वे इन छात्रों के सचित अभिलेख अधिक अच्छी तरह स भर सकते हैं। माह म एक शनिवार को अन्तिम दो कालाश सचित अभिलेखों की पूर्ति हेतु रखे जा सकते हैं।

(घ) अमानकीकृत साधनों के उपयोग पर बल— हमने अध्याय ६ मे वयक्तिक सूचना सकलन हेतु प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न प्रविधियों एव उपकरणों की चर्चा की है। किन्तु अधिकतर भारतीय विद्यालयों की परिस्थितियों को ध्यान म रखत हुए यदि हम यह कहे कि हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणों पर कम तथा शिक्षक निर्मित अथवा अन्य अमानकीकृत उपकरणों एव प्रविधियों पर अधिक आग्रह रखना चाहिए तो कदाचित अनुचित न होगा। अधिकतर भारतीय विद्यालयों क लिए न तो बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के लिए धन उपलब्ध करना सम्भव होगा न ही हमारे विद्यालयों म इन परीक्षणों क प्रयोग हेतु प्रशिक्षित व्यक्ति मिलेंगे। फिर अनेक क्षेत्रों म तो अभी हमारे देश म अच्छे कोटि के मानकीकृत परीक्षा का अभाव भी पाया जाता है। एसी परिस्थितियों म वयक्तिक सूचना सेवा के सगठन के समय निर्देशन कार्यकर्ताओं को ऐसे अमानकीकृत साधन खोजत रहना चाहिए जिनसे व्यक्ति की प्रतिभाओं–क्षमताओं का पता लग सके। इन साधनों म उपाख्यान वृत्त समाजमिति की साधन निरीक्षण साक्षात्कार आत्मचरित्र वर्णन विशिष्ट घटना वर्णन आदि उल्लेखनीय हैं जिनकी अध्याय ६ म पर्याप्त विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। इनके अतिरिक्त अनिवारीय सभाओं सांस्कृतिक कार्यक्रमों भ्रमणों आदि म बालक के व्यवहारों का अध्ययन कर उनके व्यक्तित्व के विविध आयामों सम्बन्धी सूचनाओं का सकलन किया जा सकता है।

(ङ) वयक्तिक सूचना सेवा का उपयोग —

(अ) शिक्षकों के लिए उपयोगिता— यदि हम हमारे विद्यालयों म वयक्तिक सूचना सेवा की स्थापना कर तो इस सेवा का उपयोग अनेको अवसरों पर किया जा सकता है। अध्यापक छात्र एव अभिभावक सभी इस सेवा का उपयोग कर सकते हैं। इस सेवा म उपलब्ध छात्र से सम्बन्धित सम्पन्न वयक्तिक सूचनाओं का उपयोग छात्रों से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का हल करने हेतु किया जा सकता है। शिक्षक इस सूचना सेवा का उपयोग कक्षा म नए छात्रों की पृष्ठभूमि को समझने हेतु कर सकते है। छात्रों के समस्यात्मक व्यवहारों को समझने म भी वयक्तिक सूचना सेवा महत्वपूर्ण रूप प्रदान कर सकती है। कक्षा म कौन से छात्र प्रतिभावान हैं कौन पिछड़े हुए हैं किन्हे सामाजिक पुनर्स्थापन की आवश्यकता है आदि एसी महत्वपूर्ण सूचनाए है जिनका उपयोग शिक्षक अध्यापन काय मे कर सकते है।

(आ) छात्रों के लिए उपयोगिता—छात्रों की दृष्टि मे तो यह सेवा अत्यन्त महत्वपूर्ण है ही क्योंकि छात्र इस सेवा क अन्तगत अपनी क्षमताओं सीमाओं से परिचित हो सकते हैं। यह ज्ञान उन्हे हर महत्वपूर्ण निर्णय लेने मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विषयों एव व्यवसायों के चयन से पूर्व तो छात्रों को अपनी क्षमताओं अभिरुचियों अभिवृत्तियों एव सीमाओं का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अत आठवीं कक्षा एव दसवीं तथा ग्यारहवीं कक्षा म छात्रों के लिए यह सेवा विशेष रूप

से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। छात्र जब नवमी कक्षा में विषयों का चयन करें तो उपबोधक को उन्हें उनकी क्षमताओं सीमितताओं से अवगत करा देना चाहिए।

(इ) माता पिताओं के लिए उपयोग—माता पिताओं को भी अपने बालकों के विषय में विश्वसनीय एवं सम्पन्न सूचनाएं प्राप्त हो सकें तो इन सूचनाओं का वे अपनी परिस्थितियों में उपयोग कर सकते हैं। समय पर माता पिताओं को यदि अपने बच्चे की दुर्बलताओं का ज्ञान हो जाय तो वे इन दुर्बलताओं को दूर करने के उपाय कर सकते हैं। अनेक बार अभिभावक आपत्ति उठाते हैं कि उन्हें उनके बच्चे की कमजोरियों का आभास समय पर नहीं करवाया जाता केवल वर्ष के अन्त में जब बालक किसी विषय में असफल होता है उसी समय उन्हें अपने बच्चे की सीमाओं का पता लगता है। अतः समय समय पर अभिभावक दिवसों का आयोजन कर अभिभावकों को उनके बच्चों की वैयक्तिक सूचनाओं से अवगत कराया जा सकता है। अभिभावक इन वैयक्तिक सूचनाओं का उपयोग छात्रों को विषय अथवा व्यवसाय चयन में सहायता प्रदान करने हेतु कर सकते हैं।

(२) पर्यावर्णीय सूचना सेवा का भारतीय परिस्थितियों में विशेष स्वरूप

अध्याय पांच में पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन विश्लेषण मिमीलीकरण एवं सचरण के सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। किन्तु भारतीय शालाओं की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस सेवा का क्या स्वरूप हो सकता है अध्याय पांच में वर्णित विधियों में किन पर अधिक आग्रह होना चाहिए आदि बिन्दुओं का स्पष्टीकरण इस अध्याय के कलेवर की दृष्टि से असंगत नहीं होगा।

(क) पुस्तकाध्यक्ष का सहयोग— जैसाकि अध्याय ५ में कहा जा चुका है पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन विश्लेषण एवं मिमीलीकरण का कार्य पुस्तकाध्यक्ष को सौंपना उपादेय होगा। क्योंकि अधिकतर विद्यालयों में अशकालिक निर्देशकों की ही कल्पना की जा सकती है अतः ऐसी परिस्थिति में तो पुस्तकाध्यक्ष के सहयोग की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है। पुस्तकाध्यक्ष को यह कार्य सौंपने से पूर्व उनको इस कार्य के उद्देश्यों एवं प्रकृति से अवगत कराना आवश्यक होगा। निर्देशन कार्यकर्ता को इस अनुस्थापन कार्य का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। पुस्तकाध्यक्ष को उनके उत्तरदायित्वों से पूर्णतया अवगत करा देना चाहिए जिससे इस सेवा का सचालन सुचारु रूप से हो सके। पुस्तकाध्यक्ष के निम्नलिखित उत्तरदायित्व हो सकते हैं —

- निर्देशन कार्यकर्ता द्वारा जो सचना सामग्री की सूची बनाई जाय उसे सम्बन्धित स्रोतों से उपलब्ध करना।
- जैसे ही सामग्री प्राप्त हो उसकी जांच कर उसका निर्धारित रजिस्टर में इन्द्राज करना।
- विद्यालय में उपलब्ध समस्त सूचना सामग्री का वर्गीकरण करना एवं

ऐसी सूची बनाना जिससे आवश्यक सामग्री शीघ्रातिशीघ्र उपलब्ध हो सके।

पुस्तकालय म एक आवश्यक निर्देशन कोण का निर्माण करना।

नई सूचना सामग्री का प्रदशन करना।

अनावश्यक एव पुरानी सूचना सामग्री को छाँटकर अलग करना।

सामग्री के सचरण म सहायता प्रदान करना।

(ख) पर्यावर्णीय सूचनाओ के सकलन का आर्थिक पक्ष— पर्यावर्णीय सूचनाओ के सकलन हेतु सामान्य विद्यालयो म अधिक धनराशि के प्रावधान की अपेक्षा नही की जा सकती। अत निर्देशन कायकर्त्ता को सदव इस बात के लिए प्रयास करना होगा कि कम स कम धनराशि म अधिक से अधिक सूचनाओ का सकलन कसे किया जा सकता है। इस दिशा म निम्नलिखित सुझाव उपादेय सिद्ध हो सकते है —

(अ) ऐसे सूचना स्रोतों का पता लगाना जहाँ से नि श क अथवा कम व्यय म सूचनाए प्राप्त हो सकें— भारतीय शालाओ म काय करने वाले निर्देशन काय कर्त्ताओ को एक बात सदव ध्यान मे रखनी होगी और वह यह कि निर्देशन काय क्रम को कसे कम से कम खर्चीला बनाया जाय। यह बात पर्यावर्णीय सूचना सग्रह के लिए भी लागू होती है। निर्देशन कायकर्त्ता को उन सभी स्रोतो का पता लगा कर उनसे लाभ उठाना चाहिए जहाँ स नि शुल्क अथवा कम खर्चीली सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं। शिक्षा एव समाज कल्याण मन्त्रालय श्रम एव पुनर्वास मन्त्रालय प्रति रक्षा मन्त्रालय केन्द्रीय निर्देशन ब्यूरो (एन सी ई आर एन टी)। राज्य निर्देशन ब्यूरो वाई एम सी ए पब्लिशिंग हाउस कलकत्ता-१६ आदि ऐसे स्रोत हैं जहाँ से कम खच म सूचनाए प्राप्त की जा सकती हैं। मसूर स्टेट ब्यूरो आफ एजूकेशनल एण्ड वोकेशनल गा डेन्स ने कई शक्षिक एव व्यावसायिक क्षेत्रो स सम्ब न्धित सूचनाओ को प्रकाशित किया है जिन्हे नि शुल्क प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार महाराष्ट्र सरकार की बम्बई स्थित इन्स्टीट्यूट आफ वोकेशनल गाइडेन्स ने भी कई पर्यावर्णीय सूचनाओ का प्रकाशन किया है जिन्हे इस सस्था से बिना मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। भारतवष मे किन किन स्थानो से कौन-कौन सी सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं इसकी विस्तृत जानकारी हेतु प्रत्येक निर्देशन कायकर्त्ता को एक पुस्तिका एन० सी ई० आर० टी० से अवश्य मगवा लेनी चाहिए। इस पुस्तिका का नाम ह Hand Book for Career Masters इस पुस्तिका को मसूर सर कार क निर्देशन ब्यूरो ने तयार किया है तथा राष्ट्रीय शक्षिक अनुसन्धान एव प्रशि क्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Trai ning) न प्रकाशित किया है। इसे एन सी ई आर टी के पब्लिकेशन यूनिट ६ इस्टन एविन्यू महारानी बाग न्यू देहली-१४ से प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार स एक और पुस्तिका Practical Hand Book of Guidance in Seco

ndary Schools भारतीय निर्देशन कार्यकर्ताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसका निर्माण डा एम एम मोहसीन ने किया है। और बिहार स्टेट ब्यूरो आफ एजुकेशन गाइडेंस ने इसे प्रकाशित किया है उपरोक्त दोनों पुस्तिकाएं केवल पर्यावर्णीय सूचना सेवा के सगठन में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण निर्देशन कार्यक्रम के सगठन एव सचालन में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

(आ) राज्य गाइडेंस ब्यूरो एव अन्य अभिकरणों से सम्पर्क —पर्यावर्णीय सूचना पर व्यय कम करने हेतु निर्देशन कार्यकर्ता को राज्य गाइडेंस ब्यूरो से निरंतर सम्पर्क बनाए रखना चाहिए एवं वहाँ से जो भी सामग्री नि शुल्क प्राप्त हो सके प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इसी प्रकार स्थानीय नियोजन कार्यालय से सम्पर्क स्थापित कर यहाँ से भी नि शुल्क सामग्री प्राप्त की जा सकती है। स्थानीय एव प्रान्तीय स्तर पर व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा शिक्षण सस्थाओं से भी नि शुल्क सूचना सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

(इ) व्यावसायिक सूचना स्रोतों का निर्माण—व्यावसायिक सर्वेक्षण के आधार पर शाला में ही विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचना पत्रों का निर्माण किया जा सकता है। इसमें छात्रों का भी सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक सूचना पत्र में व्यवसाय के विविध पक्षों से सम्बन्धित सूचनाओं का समावेश होना चाहिए जैसे—व्यवसाय का नाम व्यवसाय के लिए आवश्यक योग्यताएं वेतन उन्नति के अवसर कार्य अपेक्षाएं आदि। इस प्रकार शाला में व्यवसाय सूचना पत्रों के निर्माण से पर्यावर्णीय सूचना सकलन पर व्यय कम किया जा सकता है।

(ग) प्रत्येक शाला के लिए उपयोगी न्यूनतम पर्यावर्णीय सूचनाएं — वैसे तो हमारे पास पर्यावर्णीय सूचनाओं का सचय जितना सम्पन्न होगा व्यक्ति के सम्मुख हम भविष्य योजना हेतु उतने ही विविध विकल्प प्रस्तुत कर सकेंगे। किन्तु वस्तु स्थिति को ध्यान में रखते हुए हमें न्यूनतम अनिवार्य सूचनाओं की सूची बनाकर कम से कम उन्हें एकत्रित करने का प्रयास करना चाहिए। सामान्य रूप से एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के लिए निम्नलिखित सूचनाएं आवश्यक मानी जा सकती हैं।

- शाला में उपलब्ध विषयों से सम्बन्धित उच्च शिक्षण की सुविधाओं सम्बन्धित सूचनाएं।
- विभिन्न विषयों के अध्ययन फलस्वरूप व्यावसायिक सम्भावनाओं से सम्बन्धित सूचनाएं।
- विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएं। विशेषकर उन व्यवसायों की सूचनाएं जो शाला में पढाए जाने वाले विषयों से सम्बन्धित हों।
- स्थानीय पर्यावरण की व्यावसायिक सम्भावनाओं के विषय में सूचनाएं।
- प्रशिक्षण सुविधाओं से सम्बन्धित सूचनाएं।
- निर्धन किन्तु मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों अथवा अन्य शिक्षण

सुविधाओं से सम्बन्धित सूचनाए ।

उपरोक्त सूचनाओं के सकलन के साधन एव प्राप्ति के अभिकरण। का विशद् विवेचन अध्याय ७ म कर दिया गया है अत उसकी यहा पुनरावत्ति नहीं की गई है।

(घ) पर्यावर्णीय सूचनाओ के सचरण के अवसर — जमाकि हम इस अध्याय के प्रारम्भ म कह चुके हैं एक सफल निर्देशन कायकर्त्ता का शाला की विभिन्न प्रवत्तियो का लाभ निर्देशन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु कस उठाया जा सकता है इस ओर सदव चितनशील रहना चाहिए। पर्यावर्णीय सूचनाओं के सचरण म भी यह सिद्धात लागू होता है। शाला की विभिन्न प्रवत्तियो के मा यम स पर्यावर्णीय सूचनाओं का सचरण अधिक से अधिक करन स एक तो समय की बचत होगी तथा निर्देशन कायक्रम शाला के अन्य कायक्रमो का एक अविभाज्य अग बन जायगा। अनिवारीय सभाए शाला का वार्षिकोत्सव शाला पत्रिका शिक्षक अभिभावक सम्मेलन आदि कुछ ऐसी प्रवत्तिया हैं जो सामान्यतया प्रत्येक भारतीय शाला म पाई जाती हैं। इन अवसरों अथवा प्रवत्तियो का लाभ उठाकर व्यावसायिक वार्ताओं व्यावसायिक सम्मेलनो व्यावसायिक प्रदर्शनियो आदि के माध्यम से पर्यावर्णीय सूचनाओं का सचरण किया जा सकता है। शाला पत्रिका के कुछ सामयिक निर्देशन विशेषांक निकाल कर उनम पर्यावरणीय सचनाए प्रसारित की जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप सत्र के प्रारम्भ मे नए छात्रो के लिए शाला के नियमो परम्पराओ सुविधा सेवाओ के सम्बन्ध म सचनाए दी जा सकती हैं तथा नवमी कक्षा के छात्रो के लिए विषय चयन से सम्बन्धित कुछ उपयोगी जानकारी प्रकाशित की जा सकती है। सत्र के मध्य म अध्ययन आदतो से सम्बन्धित सूचनाए छात्रो के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। परीक्षा से पूव परीक्षा की तयारी से सम्बन्धित कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसी प्रकार सत्रान्त म उच्च शिक्षा की सुविधाओ शिक्षण सस्थाओ म प्रवेश प्राप्ति कि विधिया व्यावसायिक अवसरो आदि पर प्रकाश डाला जा सकता है।

यदि शाला म सुविधा हो तो इस काय के लिए निर्देशन केन्द्र म एक निर्देशन प्रकाशन विभाग अलग से प्रारम्भ किया जा सकता है जो समय समय पर सचना बुलेटिन प्रसारित करने का उत्तरदायित्व सम्भाल सकता है।

सचनाओ की सचरण विधियो की विषयक चर्चा अध्याय ७ म की जा चुकी है अत उनका यहा पुन वणन करना अनावश्यक होगा।

शाला निर्देशन कायकर्त्ता के उत्तरदायित्व —

निर्देशन कायकर्त्ता वसे तो समस्त निर्देशन कायक्रम के सफल सगठन एव सचालन के लिए उत्तरदायी होता है। किन्तु विशेष रूप से एक सत्र मे उसे कौन कौन से प्रमुख उत्तरदायित्वो को निभाना है इसका यदि उसे आभास हो तो वह

अपने काय को अधिक कुशलता स निभा सकता है। इन उत्तरदायि त्वों के स्पष्ट विव के आधार पर वह प्रधानाध्यापक को भी इस बात का आभास करवा सकता है कि इन उत्तरदायित्वों की सफलता स निभाने हेतु उसे शाला के अन्य कार्यों स यथा सम्भव अधिक स अधिक मुक्त रखना आवश्यक है। अतएव इस अध्याय म एक करियर मास्टर एव शिक्षक उपबोधक (अल्पकालिक निर्देशन कार्यकर्त्ता) के उत्तर दायित्वों की चर्चा करना आवश्यक समझा गया है।

(१) सत्र के कायक्रम की योजना

निदशन कायक्रम के सफल सचालन हेतु यह आवश्यक है कि निर्देशन काय कर्त्ता को पूरे वष भर के कायक्रमों की एक योजना बना लेनी चाहिए। इस योजना से प्रत्यक प्रवत्ति का आयोजन प्रभावोत्पादक ढग से किया जा सकता है। वार्षिक योजना बनाते समय शाला की अन्य प्रवत्तियो अवकाशो परीक्षाओं आदि का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए। ताकि निर्देशन कायक्रमो के आयोजन म कोई बाधा उपस्थित न हो। यह वार्षिक योजना सत्रारम्भ के पर्याप्त समय पूव बन जानी चाहिए। यदि ग्रीष्मावकाश के पूव यह योजना बन सके तो बहुत ही उत्तम होगा। जिसके फलस्वरूप ग्रीष्मावकाश म निर्धारित कायक्रमो की तयारी की जा सकती है। व्यावसायिक वार्ताकारो स सम्पक स्थापित करना व्यापारिक एव औद्योगिक प्रति ष्ठानों को भट के लिए उनकी अनुमति लेना सूचना सामग्री सकलन के लिए सम्ब न्धित अधिकरणो को लिखना फिल्मो तथा फिल्मस्ट्रिप्स की पूव समीक्षा करना आदि कार्य यदि ग्रीष्मावकाश मे कर लिए जाए तो सत्र के व्यस्त कायक्रम म निर्देशन कार्यक्रम को क्रियान्वित करने म पूण शक्ति एव समय लगाया जा सकता है। यह वार्षिक योजना निर्देशन समिति के परामश से बनाई जाना उपादेय होगा। इस समिति म सामान्यतया प्रधानाध्यापक एव अन्य वरिष्ठ प्र ध्यापक होते हैं अत उनकी अनुमति से बन हुए कायक्रम के सचालन म कम स कम बाधाए उपस्थित होने की आशका रहेगी।

(२) निर्देशन उपसमितियो के काय का समन्वयन

यद्यपि वयक्तिक सूचना सेवा पयावर्णीय सूचना सेवा निर्देशन प्रकाशन आदि के सचालन के लिए उपसमितियो का निर्माण किया जाना चाहिए, फिर भी इन समितियों को उचित माग दशन देना एव इनके कार्यों के समन्वयन का उत्तर दायित्व निर्देशन कायकर्त्ता का ही होता है। समय समय पर इन उपसमितियो की बठकें बुलाकर इनके काय का सिंहावलोकन किया जा सकता है भविष्य की योज नाओ पर विचार किया जा सकता है तथा कठिनाइयो के हल ढूढने का प्रयास किया जा सकता है।

( ) अनुस्थापन काय

जसाकि अध्याय के प्रारम्भ म कहा गया है कि निर्देशन कायक्रम की सफ

सत्ता के लिए इस कार्यक्रम से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का यथोचित अनुस्थापन होना आवश्यक है। यह काय निर्देशन कायकर्त्ता के अतिरिक्त और कोइ भी व्यक्ति नही कर सकता। अत निर्देशन कायकर्त्ता का यह भी एक महत्त्वपूए उत्तरदायित्व है। उसे प्रधानाध्यापक शिक्षकों छात्रों एव अभिभावको का अनुस्थापन उचित अव सरों एव उपयुक्त विधिया से करना चाहिए। प्रधानाध्यापक का अनुस्थापन चर्चा द्वारा शिक्षकों का अनुस्थापन अध्यापक मण्डल की बठकों म अनुस्थापन वार्ताम्रो द्वारा छात्रों का अनुस्थापन सत्रारम्भ मे अनुस्थापन वार्ताओं द्वारा तथा अभिभा वकों का अनुस्थापन अभिभावक सम्मेलनों के अवसर पर श्रव्य दृश्य विधियों तथा चर्चाओं के माध्यम स किया जा सकता है।

(४) व्यावसायिक वार्ताओं व्यावसायिक सम्मेलनों एव निर्देशन दिवसों का आयोजन

निर्देशन कायकर्त्ता का एक महत्त्वपूए उत्तरदायित्व है निर्देशन कायक्रम को लोकप्रिय बनाना एव सूचनाओं का प्रभावोत्पादक विधियों मे सचरए करना। इसके लिए निर्देशन कायकर्त्ता विभिन्न कायक्रमों का आयोजन कर सकता है। इनमे व्याव सायिक वार्ताए व्यावसायिक सम्मेलन निर्देशन दिवस निर्देशन प्रदर्शनियाँ प्रमुख हैं। इन सब प्रवृत्तियों के आयोजन की विधियों की चर्चा अध्याय ७ म की जा चुकी है।

(५) नए छात्रों का अनुस्थापन

अनुच्छेद म हमने छात्रों के निर्देशन कायक्रम के प्रति अनुस्थापन की आव श्यकता पर बल दिया है। यहाँ हम निर्देशन कायकर्त्ता के एक और उत्तरदायित्व की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। प्रत्येक शाला म प्रतिवर्ष कुछ नए छात्र प्रवेश प्राप्त करते हैं उन्हे जितने शीघ्र शाला जीवन की विशेषताओं से अवगत कराया जाएगा उन्हे शाला के वातावरण म समन्जन म उतनी ही सुविधा होगी। शाला भवन शाला की सेवाओं सुविधाओं परम्पराओं अपेक्षाओं आदि से अवगत कराने का काय निर्देशन कायकर्त्ता को सौंपा जा सकता है।

(६) अध्ययन आदतों के विषय म मार्गदर्शन

शाला विषयों म उच्च उपलब्धि हेतु उचित अध्ययन आदतों एव कुशलताओं के विकास की आवश्यकता सर्वविदित है। दुर्भाग्यवश इस ओर हमारी शालाओं म कम ध्यान दिया जाता है। वसे तो प्रत्येक विषय अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने छात्रों म विषय से सम्बन्धित उचित अध्ययन आदतों का विकास करे। फिर भी निर्देशन कायकर्त्ता सामान्य अध्ययन आदतों के सम्बन्ध म छात्रों का मार्ग दर्शन कर सकता है।

(७) विषयों के चयन म सहायता

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों म सबस बडी निर्देशन सेवा हो सकती है

नवमी कक्षा के छात्रों को विषय चयन में सहायता प्रदान करने की। शाला में उपलब्ध विभिन्न विषयों की जानकारी देना विभिन्न विषयों की क्या व्यावसायिक सम्भावनाएं हो सकती हैं इन विषयों में किस प्रकार की उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षण की सम्भावनाएं हो सकती हैं आदि विषयों से छात्रों को अवगत कराया जा सकता है। विषयों एवं वयक्तिक योग्यताओं के सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। छात्रों के साथ उनके अभिभावकों को भी इन सब पहलुओं से अवगत कराना आवश्यक है क्योंकि भारतीय परिस्थितियों में विषय चयन में माता पिताओं की इच्छाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

(८) व्यवसायों के चयन में सहायता

प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में कुछ छात्र ऐसे भी होंगे जो कि आगे शिक्षा चालू न रख जीविकोपार्जन के साधन ढूंढना चाहेंगे। निर्देशन कार्यकर्त्ता ऐसे छात्रों की सहायता कर सकते हैं। उनकी योग्यतानुसार कौन से व्यवसायों में प्रवेश मिल सकता है अथवा कौनसी प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं आदि विषयों से छात्रों को परिचित कराया जा सकता है। इस कार्य के लिए नियोजन कार्यालयों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों आदि से सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(९) छात्रों को महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने में सहायता

हमारे छात्र महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्ति की सामान्य छोटी मोटी औपचारिकताओं से भी अनभिज्ञ होते हैं। प्रवेश आवेदन पत्र कैसे प्राप्त किए जाते हैं उनकी पूर्ति कैसे की जाती है आदि कार्यों में छात्रों की सहायता करने से उनकी अनेकों उलझनें दूर हो सकती हैं। उच्च शिक्षा की सुविधाओं की सूचनाएं तो ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों को पहले ही दी जानी चाहिए ताकि वे समय पर यह निर्णय ले सकें कि उन्हें किस महाविद्यालय में प्रवेश लेना है।

(१०) औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों, महाविद्यालयों आदि से भेंट का आयोजन

छात्रों को व्यावसायिक जगत तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं के जीवन से परिचित करवाने हेतु निर्देशन कार्यकर्त्ता को समय-समय पर औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा शैक्षणिक संस्थाओं से भेंट की व्यवस्था करनी चाहिए। इन भेंटों के आयोजन की विशद् रूपरेखा अध्याय ७ में प्रस्तुत की गई है।

(११) प्रकाशन कार्य

निर्देशन गतिविधियों के उचित प्रचार हेतु निर्देशन कार्यकर्त्ता को कुछ प्रकाशन कार्य का भी उत्तरदायित्व सम्भालना होगा। शाला पत्रिकाओं में अथवा अन्यत्र से निर्देशन समाचारों अथवा स्तम्भों का प्रकाशन निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार व्यावसायिक सूचना पत्रों के निर्माण का भी कार्य निर्देशन कार्यक्रम को कम खर्चीला बनाने में सहायक हो सकता है।

इसके अतिरिक्त शाला के कला अध्यापक एव छात्रा की सहायता से कुछ अन्य दृश्य सामग्री का भी निर्माण किया जा सकता है जिससे निर्देशन की विभिन्न सेवाग्रा की गतिविधियां प्रभावोत्पादक ढग से प्रस्तुत की जा सकें।

(१२) अभिभावक शिक्षक सगमों का सचालन

निर्देशन कायक्रम की प्रत्येक सेवा म पद पद पर अभिभावकों के सहयोग की आवश्यकता होती है। अत निर्देशन कायकर्त्ता को अभिभावकों से निकट सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। इसका एक माध्यम अभिभावक शिक्षक सगम है। प्रत्येक शाला म निर्देशन कायकर्त्ता को इस प्रकार के सगमों की स्थापना एव सचालन का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। इन सगमा स शाला और अभिभावकों के बीच की दूरी कम हो सकती है तथा अभिभावक शाला की प्रत्येक प्रवृत्ति म अधिक रुचि लेने की सम्भावना बन सकती है। इन सगमा को सुदृढ बनाने हेतु समय-समय पर अभिभावक सम्मेलनों का आयोजन किया जा सकता है। इन सम्मेलनों के अतिरिक्त शिक्षक अभिभावकों से समय समय पर घर पर जाकर भी सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं तथा पत्र व्यवहार द्वारा भी अभिभावकों के साथ निकट के सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं। शिक्षक अभिभावक सगमों को सुदृढ बनाने का उत्तरदायित्व निर्देशन कायकर्त्ता का ही है। अभिभावक सम्मेलनों का अनुस्थापन कायक्रम तथा सूचना सचरण हेतु किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है इसकी चर्चा पहले ही कई बार की जा चुकी है।

प्रधानाध्यापकों एव शिक्षकों को यदि निर्देशन कार्यकर्त्ता के उपरोक्त वर्णित उत्तरदायित्वों का स्पष्ट ज्ञान हो तो वे निस्सन्देह उसे शाला के उत्तरदायित्वों से मुक्त रख सकते हैं।

उपसहारात्मक कथन

इस सम्पूर्ण पुस्तक म निर्देशन कायक्रम के आधुनिकतम सिद्धान्तों एव कायविधाग्रा की चर्चा करते हुए अत मे भारतीय विद्यालयों के लिए एक न्यूनतम आवश्यक निर्देशन कायक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रथम नौ अध्यायों म आदर्श परिस्थितियों म निर्देशन सेवाग्रा का क्या स्वरूप होना चाहिए इसकी चर्चा की गई है जबकि इस अन्तिम अध्याय मे एक सामान्य भारतीय विद्यालय मे कौनसी न्यूनतम निर्देशन सेवाए प्रारम्भ की जा सकती हैं इस ओर सकेत किया गया है। इस न्यूनतम आवश्यक कायक्रम की रूपरेखा को प्रस्तावित करते समय हमारे अधिकाश विद्यालयों की भौतिक एव आर्थिक सीमाओं का पूर्ण रूपेण ध्यान रखा गया है। इस न्यूनतम कायक्रम के अन्तर्गत कुछ आवश्यक निर्देशन प्रवृत्तियों को सुझाया गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि जिन शालाओं मे अधिक साधन सुविधाए उपलब्ध हो वे अन्य सेवाए न प्रारम्भ करें। फिर इस अध्याय म जो रूपरेखा है जिसम प्रत्येक शाला की एकक आवश्यकताओं साधन

सीमाओं को ध्यान में रखते हुए आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं।

इस न्यूनतम कार्यक्रम की रूपरेखा में स्थान-स्थान पर इस बात पर बल दिया गया है कि जहाँ तक हो सके निर्देशन कार्यक्रम की किसी भी प्रवृत्ति में शाला की उपलब्ध सुविधाओं साधनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाना चाहिए ताकि निर्देशन कार्यक्रम शाला पर एक अतिरिक्त भार के रूप में प्रतीत न हो। शाला की अन्य प्रवृत्तियों के साथ इस कार्यक्रम को जितना समन्वित किया जाएगा उतनी ही शीघ्रता से अध्यापक छात्र एवं प्रधानाध्यापक इस कार्यक्रम को स्वीकार करेंगे।

इस अध्याय में न्यूनतम कार्यक्रम प्रारम्भ करने की कुछ पूर्वावश्यकताओं का उल्लेख किया गया है जिनकी पूर्ति के बिना निर्देशन कार्यक्रम सफलता से सचालित नहीं किया जा सकता।

सामान्य रूप से प्रत्येक भारतीय शाला में कम से कम वैयक्तिक सूचना सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा की स्थापना की जानी चाहिए। इन सेवाओं का भारतीय शालाओं में क्या विशेष स्वरूप हो सकता है इसकी भी इस अध्याय में चर्चा की गई है।

अन्त में एक अशकालिक शाला निर्देशक के क्या प्रमुख उत्तरदायित्व हो सकते हैं इस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। अपने उत्तरदायित्व की पूर्ण जानकारी के बिना कोई भी व्यक्ति प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकता।

शब्दावली

-अ-

अग्रदर्शी	*Forward looking*
अतिक्रमी	Intruder
अतिरिक्त निर्देशन सेवा	Referral Service
अधिकार पत्र	Bill of Rights
अधिशष	*Surplus*
अनियन्त्रित प्रेक्षण	Uncontrolled Observation
अनुकूलन	Adaptation
अनुगमन	Follow Up
अनु मिति	Corollary
अनुरक्षण	Maintenance
अनुशस्ति	Sanction
अनुस्थापन	Orientation
अनुस्थापन वार्ताएं	Orientation Talks
अनुज्ञात्मक	*Permissive*
अभिग्रहण	Assumption
अभिदर्शन	Exposure
अभिदर्शित	Exposed
अभिनति	Bias
अभिनिर्धारणान्त	Identification data
अभिप्रेत अर्थ	Implications
अभिमुख-संवाद	Interview
अभिरुचि	Interest
अभिवृत्ति	Attitude
अभिवृत्ति मापनी	Attitude Scale
अभिक्षमता	Aptitude
अभिज्ञान	*Identity*
अभ्युपगम	*Assumption*
अमानकीकृत	Non Standardized
अपक्रिया	Malfunctioning

अशाब्दिक	Non Verbal
असंरचित साक्षात्कार	Unstructured Interview
अहंमान	Dominance Feeling
अंकन	Scoring
अंशकालिक	Part Time
अंतग्रस्त	Involve
अंतर्वस्तु	Content
अंतर्संचरण	Inter Communication
अन्योन्य क्रिया	Interaction
अर्धप्रक्षेपी प्रविधियाँ	Semi Perjective Techniques
-आ-	
आपद	Hazards
आत्मसिद्धि	Self realization
आत्म विवरणात्मक	Self reporting
आयात	Import
आशंसन	Appreciation
आशावाद	Optimism
-ए-	
एक-एक सम्बन्ध	One to one Relationship
एकाकी	Isolate
एकात्मक	Unitary
एकल	Unique
-उ-	
उपलब्धि परीक्षण	Achievement Test
उपसिद्धान्त	Corollary
उपाख्यानवृत्त	Anecdotal Record
उपप्रमेय	Corollary
-क-	
कार्मिक	Personnel
कार्य-कृत्यक	Job-Tasks
-ग-	
गुट	Cliques

–च–

चिह्नांकन सूची	Check List

–त–

तकनीशन	Technician
तात्विक	Metaphysical
तथ्यिक	Factual
तिरस्कृत	Rejected

–द–

द्वन्द्व	Conflicts

–न–

निदानात्मक परीक्षण	Diagnostic Test
नियम पुस्तिका	Manual
नियोजन कार्यालय	Employment Exchange
निराशावाद	Passimism
निर्देश-तन्त्र	Frame of reference
निर्धारणमापनी	Rating Scale
निभ्रम	Unequivocal
नियन्त्रित प्रेक्षण	Controlled Observation
निर्वचन	Interpretation

–प–

परस्पर व्यापिता	Overlapping
परास	Range
परीक्षण	Test

–प्र–

प्रकार्यात्मक	Functional
प्रबुद्ध	Enlightened
प्रावस्थाकरण	Phasing
प्रविधि	Technique
प्रश्नावली	Questionnaire
प्रशान्तता	Serenity
प्रशासन	Administration

प्रक्षपण	Projection
प्रक्षपीप्रविधियां	Projective Techniques
प्राप्तांक	Scores

-प-

पुस्तकाध्यक्ष	Librarian

-पू-

पूर्णकालिक	Full Time
पूर्व परीक्षण	Tryout

-बु-

बुद्धि वभव	Talent

-भ-

भाग ग्रग्राही प्रेक्षण	Non Participant Observation
भागग्राही	Participant
भागग्राही प्रक्षण	Participant Observation

-म-

मणिमप्राजलता	Crystal Clarity
मार्ग दर्शन	Refrral
मानकीकृत	Standardised
मिसीनीकरण	Filing
मत	Concrete

-स-

सत्तावादी	Authoritarian
समग्रायुसाथी	Peer Group
समानुपाती	Proportionate
समसामू	Peer Group
समाजमितिक स्तर	Sociometric status
समाजमिति	Sociometry
समादर-सूची	Honours List
समन्वित	Consolidated

स्वरक	Tone
स्वय आग्रह	Volunteer
स्व वास्तवीकरण	*Self actualization*
सर्वाधिकारी	Totalitarian
सहकालिक	Simultaneous
साधन	Tools
साधन सम्पन्नता	Resourcefulness
साक्षात्कृत	Interviewee
साक्षात्कार	Interview
साक्षात्कारकर्त्ता	Interviewer
सांख्यिक	Numerical
सांस्कृतिक प्रतीप पश्चता	Cultural Lac
सांस्कृतिक आघात	Shock
स्वीकार्य	Acceptable
सूचकांक	Index
सूची	Inventory
सूचीकरण	Indexing
सचरण	Dissemination
सचित अभिलेख	Cumulative Record
सभरण	Supply
सरचित साक्षात्कार	Structured Interview
सरक्षण	Conservation
सस्कृति मुक्त	Cultural Free
सचारण योग्यता	Communicative Ability
यान्त्रिक	Mechanical
न्यून पार्श्वी	Lopsided
लोकप्रिय	Popular

–व–

वरण	Choices
वास्तववादी	Realistic
वास्तविकता अभिविन्यास	Reality Orientation
विभेदक	Differential
विरुचि	Disgust
विषयी	Subject

व्यावसायिक सर्वेक्षण	Occupational Survey
व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन	Career Conference

–श–

शाब्दिक	Verbal
शीलगुण	Traits
शुभाशायी	Well Intentioned

–क्ष–

क्षतिभय	Risk
क्षत्रकाय	Field Work

शुद्धि पत्र

पृ० सं०	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	१३	निव्यांखी	नि र्याखी
३	२	८	वभिन्नय	वभिन्य
५	२	८	राशि के ?	राशि के प्रेषण
६	४	४	क्षतिमय	क्षतिमय
७	३	४	न्धिात्व	द्विधात्व
९		२	ध्येया के	शिक्षा के ध्येया का
१५	२	३	असमय हो	असमय होता जा रहा है ।
१६	१	४	व्यवहार को	व्यवहार के
१६	२	४	कार्यात्मिक	प्रकार्यात्मक
१७	३	५	क्षतिमय	क्षतिमय
१९	५	५	कर	के
२	२	१	लोक-हृतषी	लोक हितषी
२१	४	१	बजाकुरो	बीजाकुरो
२४	२	६	सिनसिनोटी	सिनसिनेटी
२५	३	३	हृमन	ट्र मन
२६	३	२	"यक्ति न	व्यक्ति का न
३४	२	८	को	की
३६	४	७	निश्चिय	निश्चय
३७	१	१	दी जाती थी	दिया जाता था
३७	२	२	तब	तथा
३८	४	२	श ब्दावलियाँ	शब्द
३८	४	२	दोनों ही पद शब्द	ये दोनो ही शब्द
४१	४	२	हम खीच सके	खीचने का हमने प्रयास किया।
४१	४	२	अभिक्षमाओ	अभिक्षमताओ
४१	४	५	द्विधात्व	द्विधात्व
५७	३	११	न्धिात्व	द्विधात्व
६१	२	५	परिमाणस्वरूप	परिणामस्वरूप
६२	१	१७	कुछ मुई	छुईमुई
६७	१	९	पर्याण	पर्याप्त

पृ० सं०	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	१	२	सम सामग्री	सम्बन्धित सामग्री
८८	२	१	अनुमिनत	अनभिनत
१ ९	५	३	विशिष्ट में	विशिष्ट संदर्भ में
१ ९	४	२	कार्यआयोजन	कार्य के आयोजन
११९	३	३	क्षतिमय	क्षतिमय
१२७	५	६	मणिम	मणिम
१३९	१	१	असवाय	वातावरण
१३९	३	१	होकर	होना
१५६	२	८	निष्कर्षों से विश्वसनीय	निष्कर्षों से कम विश्वसनीय
१७२	१	१	हम प्रमुख	हम तीन प्रमुख
१७४	४	७	स्तरों	उत्तरों
१८८	४	५	I E	C I E
१९९	१	५	प्रतिष्ठानों में	प्रतिष्ठानों एवं अन्य संस्थाओं में
२३२	५	४	सम्पत्ति	सम्मति
२३६	२	११	परिस्थितियों में क्या	परिस्थितियों में निर्देशन कार्य क्रम का स्वरूप क्या
२४३	२	२	कुलेटिन	बुलेटिन
२४५	१	४	कस	कम
२४८	३	१	स्रोतों	पत्रों
२५	२	११	अधिकरणों	अभिकरणों
२५९	–	३१	Shock	Cultural Shock